ॐ तत्सत्

'सत्यं वद ! धर्मं चर !!'

'शम एव जयते !' "भगवत् कृपा हि केवलम्-Only the Mercy of GOD- بسم الله الرحمن الرحيم" 'सत्यमेव विजयते !!'

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ! (ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !)- No Salvatioln without KNOWLEDGE

"विद्यातत्त्वम् पद्धति"

(पुष्पिका-१४)

अध्यापक एवं विद्यार्थी बन्धुओं के लिये विशेष

'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या वही है जिससे मुक्ति मिलें ।

शरीर-जीव-ईश्वर-परमेश्वर यथार्थतः ये चार हैं । चारों को दिखलाने और मुक्ति-अमरता देने हेतु भगवान् लेते अवतार हैं

ॐ-सोऽहँ-हँसो-शिव-ज्योति भी भगवान् नहीं, भगवान् परमतत्त्वम् है ।

स्वाध्याय, अध्यात्म ही ज्ञान नहीं, ज्ञान 'तत्त्वज्ञान' है ।

कण-कण में भगवान्--यह घोर है अज्ञान । सबमें है भगवान्-- मूर्खता पूर्ण है यह ज्ञान ।
कण-कण में शक्ति, शरीरों में जीवात्मा, आकाश में है आत्मा और परम आकाश रूप परमधाम में सदा रहते हैं परमात्मा, सिवाय अवतार बेला में एकमेव एक अवतारी शरीर मात्र के ।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

'सत्यं वद् !
'श्रम एव जयते !

ॐ तत्सत्
"भगवत् कृपा हि केवलम्-Only the Mercy of GOD"

धर्मं चर !!'
सत्यमेव विजयते !!'

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ! (ज्ञान के विना मुक्ति नहीं !) --No Salvation without KNOWLEDGE

अन्यथा परमतत्त्वं जनाः क्लिश्यन्ति चाऽऽन्यथा ।
अन्यथा शास्त्रसद्भावो व्याख्या कुर्वन्ति चाऽन्यथा।।

(गरुड पुराण १६/७६)

'परमतत्त्वं तो अन्यथा (और ही प्रकार से) होता है, उसके सत्य रूप को न जानकर लोग उसके विषय में अन्यथा कुतर्क कर करके क्लेश पाते रहते हैं; उसी प्रकार शास्त्रा का सद्भाव दूसरा ही है और उसकी व्याख्या लोग दूसरे प्रकार से करते रहते हैं ।'

पठन्ति वेद शास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम् ।
न जानन्ति परमतत्त्वं दर्वीपाकरसं यथा ।।

(गरुड पुराण १६/७८)

'लोग वेद और शास्त्रों को पढ़ते रहते हैं तथा आपस में समझते-समझाते भी रहते हैं ; किन्तु इतने पर भी वे परमतत्त्वं को नहीं जान पाते हैं । जैसे करछुलि (चमचा) दाल (पाक) रस को नहीं जान सकती है ।'

प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम् ।
अतः प्रज्ञावतां शास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य लक्षणम्।।

(गरुड पुराण १६/८२)

'ज्ञानहीन पुरुष का पढ़ना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार कि अन्धे का दर्पण देखना है । इसीलिए ज्ञान से युक्त सद्ग्रन्थों को तत्त्वज्ञान का लक्षण होता है, ऐसा समझना चाहिये।'

तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थिति संयमात्मशक्तिम्।
द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि।।(भा० म० पु० १२/१२/६६)

"वे जन्म-मृत्यु आदि विकारों से रहित, देशकालादिकृत परिच्छेदों से मुक्त एवं स्वयं आत्मतत्त्वम् (भगवत्तत्त्वम्) ही हैं। जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करने वाली शक्तियाँ भी उनकी स्वरूपभूत ही हैं, भिन्न नहीं। ब्रम्हा, इन्द्र, शंकर आदि लोकपाल भी उनकी स्तुति करना लेशमात्र भी नहीं जानते। उन्हीं एकरस सच्चिदानन्दघन रूप परमात्मा-परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।"

आप उसी सच्चिदानन्द रूप परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् का ऋग्वेद मं०१ सू०१६४ मन्त्र, श्वेता०२/१४-१५; भा०म०पु०१२/१२/६६; बाइबिल १/१-यूहन्ना ३६गीता (१३/११-१२-१३) वाले ही विराट पुरुष सहित बात-चीत सहित साक्षात् दर्शन-परख-पहचान मुझसे प्राप्त कर सकते हैं ।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

सत्यं वद् ! धर्मं चर !!

'श्रम एव जयते ! ॐ तत्सत् सत्यमेव विजयते !!'

"भगवत् कृपा हि केवलम्--Only the Mercy of GOD"

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः --- ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !

सदानन्द 'मत' देखें (पुष्पिका-१४)

विद्यातत्त्वम् पद्धति

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई, शरीर से उठकर देखो भाई ।
नूर-सोल और ज्योति भाव में, देते हैं सब एक दिखलाई ।।
इससे भी ऊपर उठकर देखो, खुदा-गॉड-परमेश्वर है ।
वही सभी का परमपिता और वही एक भुवनेश्वर है ।।
रूह-नूर और काल-अलम् ही , अहँ-सः और परमतत्त्व है।
सेल्फ-सोल एण्ड सुप्रिम गॉडही, सन्त ज्ञानेश्वर का स्पष्ट मत है।
बहनों-बन्धुओं आगे आओ, आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड मिटाओ
धर्म-धर्मात्मा-धरती के रक्षा हेतु, अब सत्य-धर्म ही अपनाओ
विश्व विनाश के मुख में है, धरती वासी सब दुःख में हैं ।
विश्व विनाश के रक्षा हेतु 'हम' आप सभी के रुख में हैं ।।
देर करने में पछताना है, अपना अस्तित्त्व गँवाना है ।
जब सारा विश्व रहेगा ही नहीं, तो घर-परिवार क्या सजाना है ?
अगर अपना अस्तित्त्व बचाना होगा, और घर-परिवार भी सजाना होगा
तो विश्व विनाश से रक्षा हेतु, अब परम प्रभु के शरण में आना होगा ।।
सच 'एक है, 'एक' रहेगा, शेष सब बकवास है ।
सच 'एक' अवतरित हुआ है, बकवासों का अब नाश है ।

सन्त ज्ञानेश्वर

स्वामी सदानन्द जी परमहंस

महात्मा दिपक 9803584349 मो. 9741143443

ग्रन्थ का नाम : "विद्यातत्त्वम् पद्धति"

विरचित : सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

प्रकाशक : ठाकुर राम सहाय सिंह (प्रधान सचिव)

'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्'

पुरुषोत्तम धाम आश्रम, पुरुषोत्तम नगर- सिद्धौर

बाराबंकी-२२५ ४१३ उ० प्र० (भारत)

दूरभाष : ०५२४४-२२२३२७, फैक्स : २२२५४६

इन्टरनेट Web Sites to visit ::

http://www.BhagwadavatariSadanandji.net

http://www.SabkiVastvikta.net

http://www.MereSadgurudev.net

Official Email : Sadanandtp@Paramdham.net

Administrative Email : Admin@Amarlok.net

प्रतिभा शर्मा - 9854125429

(c) सर्वाधिकार लेखक एवं प्रकाशकाधीन

प्रथम आवृत्ति--१५०० (मई २००४)

द्वितीय आवृत्ति--२०००(फरवरी २००५)

मुद्रक : कमल जी

मुद्रणालय :

'ज्ञानेश्वर प्रेस, 'तत्त्वज्ञानदाता धाम आश्रम',

सी-१७, न्यू आचार्य कृपलानी मार्ग, आदर्श नगर,

नई दिल्ली-३३, दूरभाष : ०११-२७६७८७६०

प्रकाशन निरन्तरार्थ सेवा शुल्क : रु० २०.००

डाक खर्च सहित रु० २५.००

सत्यं बद् ! ॐ तत्सत् धर्मं चर !!

'श्रम एव जयते ! "भगवत् कृपा हि केवलम्" सत्यमेव विजयते !!

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः -- ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !

विषय - सूची

(१) सृष्टि चक्र.....५
(२) चतुर्युगीन पूर्णावतार का फोटो.....६
(३) प्रार्थना.....७
(४) अध्ययन-अध्यापन का ढंग.....९
(५) विद्यातत्त्वम् वाला चार्ट.....११
(६) गुरुजनों बन्धुओं से.....१२
(७) अशिष्टों से शिष्ट असम्भव.....१४
(८) मर्यादा और महत्ता हेतु शिष्टता अनिवार्य.....१४
(९) स्वार्थ सर्वथा त्याज्य १५
(१०) अपना 'कर्त्तव्य' देखें, 'अधिकार' नहीं.....१७
(११) 'अधिकार' और 'कर्त्तव्य' की वास्तविक स्थिति.....२०
(१२) दोषों का दायित्त्व अपने पर लेना सर्वथा लाभप्रद ही.....२२
(१३) विश्व विनाश के कगार पर मगर भगवत् कृपा विशेष.....२३
(१४) जिससे और जिसकी दुनियां, उसी की उपेक्षाः.....२५
(१५) 'अब करो कम और भोगो अधिकाधिक' ही अपेक्षितः.....२७
(१६) विद्यार्थियों से.....२९
(१७) विद्यार्थियों हेतु अनिवार्यतः ग्रहणीय बातें.....३३
(१८) दोषों से बचना-बचाये रखना अनिवार्य.....३६
(१९) सुख और विद्या के यथार्थ स्थिति को जानें-देखें-अपनावें.....३८
(२०) विद्याविहीन जीवन पशुवत् स्थिति.....३९
(२१) सांसारिक अध्यापकों द्वारा सांसारिक शिक्षा.....४०
(२२) आत्मिक जीव को शारीरिक बनाना.....४१
(२३) मात-पिता की जिम्मेदारियाँ.....४५
(२४) माता-पिता या संरक्षक दायित्व से बरी नहीं.....४६
(२५) शिशुओं के प्रति सरकार का दायित्व.....४८
(२६) शिशु ही सुदृढ़ सामाजिक संरचना का आधार.....४९
(२७) शिशुओं को शिक्षा-दीक्षा संस्कृति-परक.....४९
(२८) शिशुओं में माँ-बहनों का भाव जरूरी.....५०
(२९) शिशुओं की शिक्षा-दीक्षा पारिवारिक सम्पर्क से दूर.....५१
(३०) शिशुओं को 'आत्म' परिचय बहुत ही सावधानी से ५१
(३१) पतनोन्मुखी सोऽहँ.....५६
(३२) ऊर्ध्वमुखी हँसो.....५८
(३३) भाग्यशाली होने पर भी अभागपन.....५९

विद्यातत्त्वम् पद्धति

(३४) 'तात्त्विक' परिचय 'तत्त्वज्ञान' से.....६०
(३५) 'आत्मा' और तत्.....६४
(३६) चेतन सत्ता 'आत्म' की जढ़ता.....६६
(३७) तथाकथित अपनों द्वारा शोषित 'अहम्'.....६७
(३८) परमप्रभु द्वारा भरपूर 'तत्-ज्योतिर्मय सः.....६८
(३९) 'तत्' से प्राप्त क्षमता का दुरुपयोग.....७०
(४०) मिथ्याहंकारवश अवतारी.....७२
(४१) 'त्वम्' या 'तुम'.....७४
(४२) 'मैं' और 'तुम' का प्रभाव.....७६
(४३) जीव का आवागमन और मोक्ष.....७८
(४४) जीव का कार्यक्षेत्र.....७९
(४५) 'विद्यातत्त्वम् में क्रमशः चार श्रेणियाँ.....८२
(४६) व्यक्ति के क्षेत्र-स्थिति और उपलब्धि की यथार्थ पहचान.....८५
(४७) शिक्षा.....८६
(४८) स्वाध्याय.....९६
(४९) स्वाध्याय एक अद्भुत कारखाना.....९७
(५०) स्वाध्याय की महत्ता.....१००
(५१) मायामुक्त-आनन्दयुक्त जीवन का प्रारम्भ यही से.....१००
(५२) अध्यात्म.....१०२
(५३) सृष्टि की उत्पत्ति और लय-प्रलय.....१०५
(५४) आध्यात्मिक सन्तुलन बिगड़ने से पतन और विनाश भी.....१०६
(५५) आध्यात्मिक धर्मोपदेशक का मिथ्याज्ञानाभिमान.....१०७
(५६) तत्त्वज्ञान.....१११
(५७) विद्या भेदभाव रहित हो.....१२४
(५८) प्रारम्भिक पाँच साल तक की शिक्षा-दीक्षा.....१२६
(५९) अति विशिष्ट ग्रहणीय तथ्य--उपसंहार.....१३०
(६०) विद्यार्थी सदा गुणग्राही बनें.....१३१
(६१) मोह पाश काट, महापुरुषत्त्व-सत्पुरुषत्त्व साट.....१३४
(६२) महापुरुषत्त्व-सत्पुरुषत्त्व हेतु युवको का आह्वान १३६
(६३) महापुरुष-सत्पुरुष दोनों के अन्तर जानें.....१४४
(६४) गायत्री वालों से मुझे कहना है कि.....१४६
(६५) सोऽहँ और सोऽहँ वाले.....१४६
(६६) वर्तमान में पूरे भू-मण्डल पर ही असल तत्त्वज्ञानदाता कौन.....१५०
(६७) सबको रहे सन्देश सुनाय 'तत्त्व' को देख-परख लीजै.....१५३
(६८) धर्म ग्रन्थों की सूची.....१५४
(६९) 'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्' के आश्रमों का पता.....१५५

'सत्यं वद् !' ॐ तत्सत् धर्मं चर !!'

'श्रममेव जयते ! "भगवत् कृपा हि केवलम्-Only the Mercy of GOD" सत्यमेव विजयते !!'

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ! (ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !) --No Salvation without KNOWLEDGE

संसार–शरीर–जीव–ईश्वर–परमेश्वर यथार्थतः ये पाँच हैं ! नाम– रूप– स्थान–लक्षण–कार्य–उपलब्धि में ये पाँचों ही हर प्रकार से पृथक्–पृथक् हैं ।

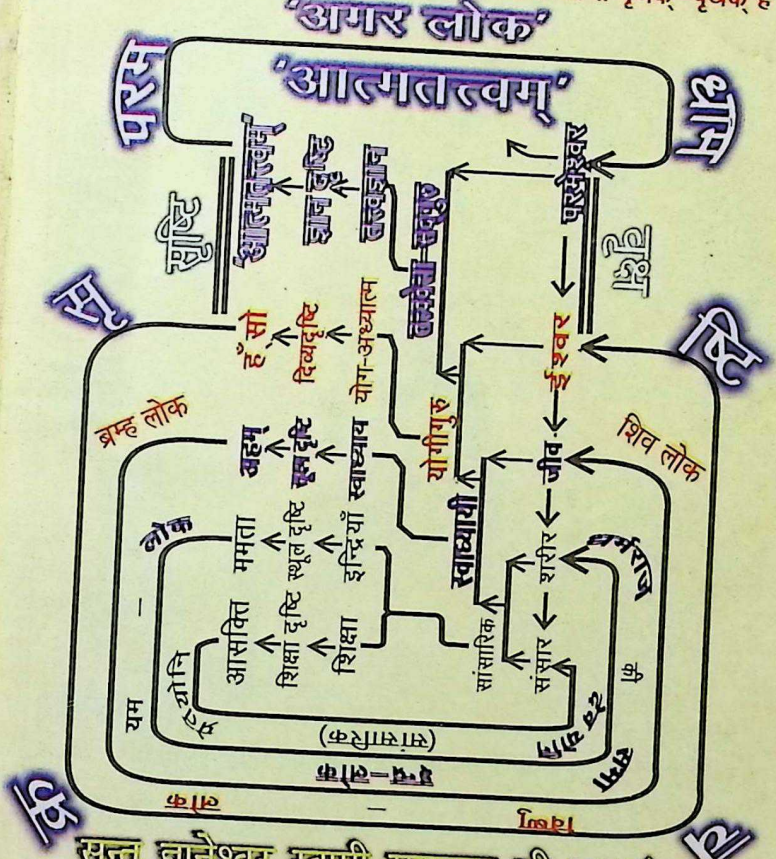

सत्यं वद !
'श्रम एव जयते !

ॐ तत्सत्

"भगवत् कृपा हि केवलम्-Only the Mercy of GOD-

सत्यमेव विजयते !!'
धर्म चर !!'

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ! (ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !) - No Salvatioln without KNOWLEDGE

शरीर-जीव-ईश्वर-परमेश्वर यथार्थतः ये चार हैं। चारों को दिखलाने और मुक्ति-अमरता देने हेतु भगवान् ने ही अवतार लिया।

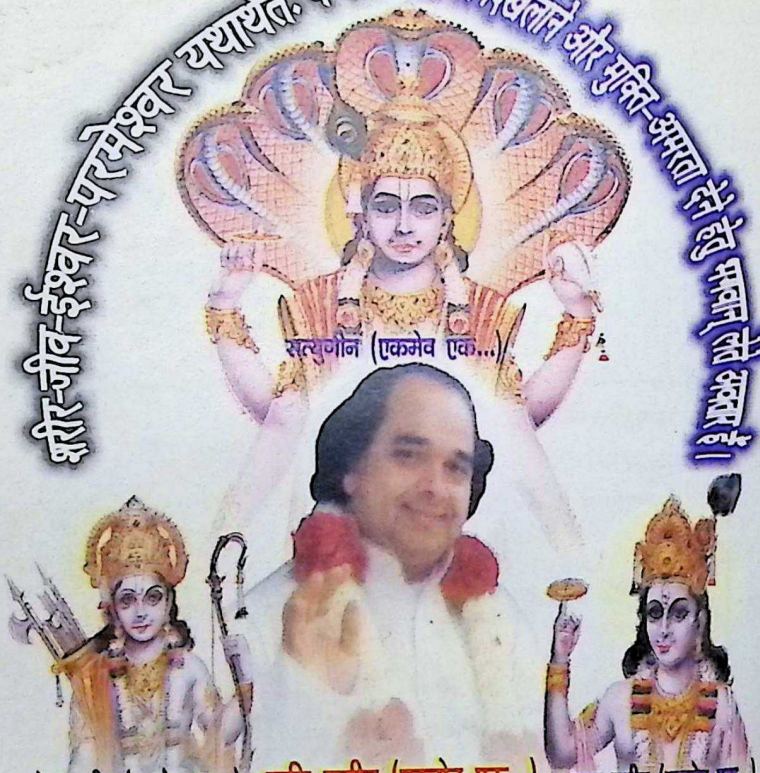

परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम्-गॉड-अल्लम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् के चतुर्युगीन पूर्णावतार

कण-कण में भगवान्--यह घोर है अज्ञान। सबमें है भगवान्-- मूर्खता पूर्ण है यह ज्ञान।
कण-कण में शक्ति, शरीरों में जीवात्मा, आकाश में है आत्मा और परम आकाश रूप
परमधाम में सदा रहते हैं परमात्मा, सिवाय अवतार बेला में एकमेव एक अवतारी शरीर मात्र के।

सत्यं वद् ! ॐ तत्सत् धर्मं चर !!

'श्रम एव जयते ! 'भगवत् कृपा हि केवलम्--Only the Mercy of GOD' सत्यमेव विजयते !!

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'--ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !

असत्य नहीं, सत्य की ओर चलें (कर्म का अभीष्ट)!

मोह-अन्धकार नहीं, दिव्य-ज्योति की ओर चलें (योग या अध्यात्म का अभीष्ट) !!

मृत्यु नहीं, अमरता की ओर चलें (ज्ञान का अभीष्ट) !!!

प्रार्थना

तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थिति संयमात्मशक्तिम्।
द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ।।

(श्रीमद्भागवत् महापुराण १२/१२/६६)

''वे जन्म-मृत्यु आदि विकारों से रहित, देशकालादिकृत परिच्छेदों से मुक्त एवं स्वयं 'आत्मतत्त्वम् (भगवत्तत्त्वम्)' ही हैं। जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करने वाली शक्तियाँ भी उनकी स्वरूपभूत ही हैं, भिन्न नहीं। ब्रम्हा, इन्द्र, शंकर आदि लोकपाल भी उनकी स्तुति करना लेशमात्र भी नहीं जानते। उन्हीं एकरस सच्चिदानन्दघन रूप परमात्मा परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।''

मंगलमय कामना करूँ 'आत्मतत्त्वम्' प्रभु आप से ।
मुक्ति अमरता और सदबुद्धि दो, सदा बचाओ पाप से ।।

वास्तविकता

'परमतत्त्वम्' था परमभावमय रहे सदा निर्भयता ।
'मैं' जीव आत्मा आप का रहे सदा तन्मयता ।।
सर्वप्रथम में 'आत्मतत्त्वम्' था शब्द रूप में एक ।
उसी 'तत्त्व' के कृत संकल्प से सृष्टि भई अनेक ।।
'परमतत्त्वम्' से आत्म निकल फिर लिया चेतन रूप ।
उसी आत्म से सृष्टि भई यह जड़ चेतन भवरूप ।।
'आत्मतत्त्वम्' अद्वैत् रूप था, अद्वैत् का ही खेल यह ।
धर्म-कर्म और कर्म-धर्म का विचित्र रचाया मेल वह ।।
'तत्त्व' से आत्म, आत्म ही चेत - चेतन से जड़ रूप ।

विद्यातत्त्वम् पद्धति

चेतन-आत्म निकल 'तत्त्व' से लिया प्रचण्ड ज्योतिर्मय रूप ।।
ब्रम्ह-ज्योति और दिव्य-ज्योति, सब आत्मा का ही रूप ।
ज्योति मात्र को 'तत्त्व' न मानो, ज्योति से श्रेष्ठ 'तत्त्व' को जानो।
'तत्त्व' से आत्म, आत्म से हँ इन तीनों को पहचानो ।।
'तत्त्व' एक है आत्म अनेक, हँ तो भया हर तन का टेक ।।
तन से पृथक् हँ को मानो, हँ से पृथक् सः को जानो ।
ह॒ँस जीवात्मा से पृथक् उस 'आत्मतत्त्वम्' को पहचानो ।।
तन है देह, जीव है हँ, ह॒ँस का पतन रूप है सोऽहँ ।
आत्मा का ही गुण दोषमय रूप हुआ है हँ ।।
हँ को कायम रखने हेतु ही आता 'तत्त्व' से सः ।
सः बना हँ पतितमय सोऽहँ, उर्ध्वमुखी क्रिया है ह॒ँस ।।
सोऽहँ रूप है आत्मा जीवमय, ह॒ँसो है जीवात्मा ।
सोऽहँ-ह॒ँस से पृथक् 'तत्त्व' है 'आत्मतत्त्वम्' परमात्मा ।।
आत्म-ज्योति ही तन-प्रवेश कर हो जाता हँ रूप ।
आत्म-ज्योति जैसा ही सः भी होता रहता है हँ रूप ।।
सोऽहँ मय सब प्राणी मात्र हैं, ह॒ँसोमय योगी साधक ।
जो कोई कहता दोनों एक हैं, वह है योग अध्यात्म का बाधक ।।
सोऽहँ सः का पतन रूप है, ह॒ँस है हँ सहित सः रूप ।
'आत्मतत्त्वम्' तो सोऽहँ-ह॒ँस का उद्गम-विलय रूप-अनूप ।।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

पुरुषोत्तम धाम आश्रम, पुरुषोत्तम नगर- सिद्धौर
बाराबंकी -२२५ ४१३ उ० प्र० (भारत)
दूरभाष : ०५२४४-२२२३२७ फैक्स : ०५२४४-२२२५४९
ईमेल : Sadanandtp@Paramdham.net

'श्रीहरि द्वार आश्रम', रानीपुर मोड़, रेलवे क्रासिंग से उत्तर समीप ही,
हिल बाई पास रोड, हरिद्वार पिन- २४९ ४०१
(भारत) दूरभाष : ०१३३४-२२४५८०

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः -- ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !

असत्य नहीं, सत्य की ओर चलें (कर्म का अभीष्ट)!

मोह-अन्धकार नहीं, दिव्य-ज्योति की ओर चलें (योग या अध्यात्म का अभीष्ट) !!

मृत्यु नहीं, अमरता की ओर चलें (ज्ञान का अभीष्ट) !!!

अध्ययन-अध्यापन का ढंग

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! अध्ययन-अध्यापन और 'ज्ञान' समाज सुधार और समाजोद्धार तथा सुखी-सम्पन्न समाज हेतु सर्वप्रथम सबसे महत्त्वपूर्ण एवं सभी के लिए ही एक अनिवार्यतः आवश्यक विधान है। अध्ययन-अध्यापन पर ही समाज का पूरा भविष्य आधारित है। इस प्रकार सामाजिक सुधार हेतु, यदि किसी की जिम्मेदारी है तो वह सर्वप्रथम एवं सर्वोच्च जिम्मेदारी गुरुजन बन्धुओं पर ही है। समाज में सबसे अधिक महत्त्व एवं साधन सुविधायें, यदि किसी को दिया जाता है तो उसमें सबसे प्रमुख एवं सबसे अधिक हमारे गुरुजन बन्धुओं को ही मिलनी चाहिये ताकि उनका मस्तिष्क सदा ही निश्चिन्तता पूर्वक अध्यापन में ही लगा रहे।

विद्यार्थियों का समुचित विकास किस प्रकार हो, यह पूरी जिम्मेदारी गुरुजन बन्धुओं पर ही होना चाहिये । इसके साथ ही किसी भी पारिवारिक व्यक्ति को गुरुजन बन्धुओं के अनुशासन में दखल नहीं देना चाहिये। सुधारात्मक अनुशासन विद्यार्थियों पर बराबर रहना चाहिये। विद्यार्थी ही भावी समाज का आधार होता है। यह यादगारी गुरुजन बन्धुओं को सदा ही अपने मस्तिष्क में रखना चाहिये । प्रत्येक समाज में अध्यापक बन्धुओं को आदर एवं सम्मान दिया जाना चाहिये। अपने पुत्र-पुत्रियों को गुरुजन बन्धुओं के निर्देशन में ही सदा रखना चाहिये । अध्ययन-अध्यापन शिष्टाचारिक और व्यावहारिक हो। विद्या को कभी भी व्यावसायिक नहीं अपितु लक्ष्यमूलक व्यावहारिक ही होना चाहिए । यह तब ही सम्भव है जब कि 'पिण्ड और ब्रम्हाण्ड' की यथार्थतः जानकारी के साथ ही दोनों में आपस में ताल-मेल सन्तुलन बने रहने वाला ही हो ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! गुरुजन बन्धुओं को चाहिए कि सबसे पहले विद्यार्थियों को शिष्टाचार का व्यावहारिक पहलू मजबूत करें ! 'सत्यं बद; धर्मं चर! (सत्य बोलें और धर्म पर रहें-चलें !)' अध्ययन का मूलमन्त्र होना चाहिये। इसकी व्यावहारिकता पर सबसे कड़ी दृष्टि होनी चाहिये । विद्यार्थियों में सर्वप्रथम शिष्टता एवं सदाचारिता ही कूट-कूट कर भरनी चाहिये। विद्यार्थियों के नैतिक और चारित्रिक विकास से सम्बन्धित ही विषय-वस्तुयें होनी चाहिये। वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता, पुराण, बाइबिल, कुर्आन आदि का समन्वयवादी भाव और ज्ञान विद्यार्थियों में प्रविष्ट करना चाहिये जिसमें विद्यार्थियों को किसी भी वर्ग-जाति-सम्प्रदाय से ऊपर उठाकर भेद रहित भाव भरना सबसे प्रमुख उद्देश्य रखना चाहिये । वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता, पुराण

विद्यातत्त्वम् पद्धति

बाइबिल, कुर्आन को विभिन्न भाषाओं के 'अन्तर्गत एक ही धर्म की शिक्षा-दीक्षा है'-- ऐसा ही भाव भरना सभी के लिये अनिवार्य है। जाति एवं सम्प्रदाय को कुछ तुच्छ स्वार्थियों एवं संकुचित विचार धाराओं वाले नासमझ व्यक्तियों से उत्पन्न एवं संचालित समाज विरोधी घृणित कार्य मानना चाहिये। विद्या यानी 'शिक्षा-दीक्षा' का क्षेत्र सदा ही नीच-ऊँच, गरीब-अमीर, लिंग-जाति-वर्ग-सम्प्रदाय आदि भेद मूलक दूषित विधान से सर्वथा रहित तथा सद्भाव, सद्विचार, सद्व्यवहार और सत्कार्यरूप विधानों से युक्त होना चाहिये। गुरुजन बन्धुओं को इस तरफ सतत प्रयत्नशील होना-रहना चाहिये कि किसी भी विद्यार्थी के अन्दर किसी भी विषय-वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति आपस में राग-द्वेष नामक सामाजिक कोढ़ न उत्पन्न होने पावे। राग-द्वेष दोनों ही समाज के लिये कोढ़ हैं जिससे हर किसी को ही सदा ही बचना-बचाना चाहिये अन्यथा समाज कुकृत्य से ग्रसित हो भ्रष्टाचार से गुजरता हुआ तहस-नहस को प्राप्त हो जाता करता है-करेगा ही।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

परम प्रभु की है ये वाणी.... (भजन)

परम प्रभु की है ये वाणी जल्दी ही सतयुग आयेगा।
सत्पुरुषों का राज्य बनेगा, पापी नहीं बच पायेगा।।
धर्मयुद्ध का बिगुल बज गया नहीं चलेगी मनमानी।
कुरूक्षेत्र अब बनेगी धरती, नहीं बचेंगें अभिमानी।।
सत्य की डोरी जो पकड़ेगा वही यहाँ रह पायेगा... सत्पुरुषो...
परम प्रभु की है ये वाणी....
सत्य-असत्य के बीच हो रहा, इस धरती पर युद्ध महान।
प्रभु शरण में आना होगा, जो चाहो अपना कल्याण।।
पापियों कान खोलकर सुनलो-कलयुग तेरा जायेगा...
परम प्रभु की है ये वाणी....
कलयुग की रात गयी सतयुग शुरूआत भयी
भक्तों के भाग्य अब जागे ही जागे
सोऽहँ कोई ज्ञान नहीं, ढोंगी भगवान् नहीं
पापी के संग पाप जागे ही जागे रे भाई....
कहता हूँ मान लो सत्य को जान लो
श्री सदानन्द प्रभु जी से गीतावाला ज्ञान लो।
कण-कण में भगवान् नहीं, घट-घट में भगवान् नहीं
प्रभु सदानन्द जी से जानो रे देखो रे भाई....
अब भी अगर नहीं जानेगा तो पीछे पछतायेगा।
सतपुरुषों का राज्य बनेगा पापी नहीं बच पायेगा।
परम प्रभु की है ये वाणी जल्दी ही सतयुग आयेगा।
सतपुरुषो का राज्य बनेगा पापी नहीं बच पायेगा।।
बोलिये परमप्रभु परमेश्वर की जय!

सत्यं वद् ! धर्मं चर !!

'श्रम एव जयते ! ॐ तत्सत् सत्यमेव विजयते !!'

"भगवत् कृपा हि केवलम्--**Only the Mercy of GOD"**

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः --- ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !

परम विद्या
अथवा विद्यातत्त्वम्
अथवा तत्त्वज्ञान विधान

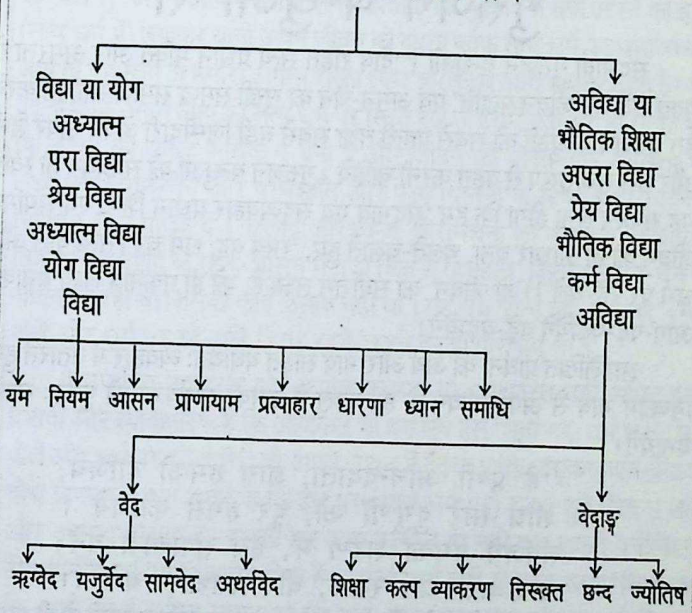

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

श्रीहरि द्वार आश्रम, रानीपुर मोड़ रेलवे फाटक से

उत्तर-हिलरोड़, हरिद्वार-उत्तराञ्चल,

दूरभाषः०१३३४-२२४५८०

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः -- ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !

असत्य नहीं, सत्य की ओर चलें (कर्म का अभीष्ट)!

मोह-अन्धकार नहीं, दिव्य-ज्योति की ओर चलें (योग या अध्यात्म का अभीष्ट) !!

मृत्यु नहीं, अमरता की ओर चलें (ज्ञान का अभीष्ट) !!!

गुरुजन बन्धुओं से

सद्भावी गुरुजन बन्धुओं ! 'दोष रहित सत्य प्रधान मुक्ति और अमरता से युक्त सर्वोत्तम जीवन पद्धति' एवं अमन-चैन का सुखी समृद्ध समाज स्थापित करने हेतु गुरुजन बन्धुओं को सबसे पहली तथा सबसे बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी और उसे सुचारुरूप से वहन करनी चाहिये । गुरुजन बन्धुओं को सर्वप्रथम तो स्वतः यह संकल्प लेना होगा कि हम 'सद्भाव एवं सद्व्यवहार प्रधान शिष्ट एवं संयमित जीवन को ही आधार बना, चलते-चलाते हुए, 'सत्यं बद्, धर्मं चर'(सत्य बोलें और धर्म पर रहें-चलें !) जो जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है, को ही एकमात्र लक्ष्य बनाकर आग-पढ़े-पढ़ायेंगे बढ़ें-बढ़ायेंगे।

अग्रलिखित प्रार्थना को अर्थ और भाव सहित यथार्थतः व्यवहार में उतारते हुए, निष्काम भाव से अपने जीवन के हर पहलू में उसकी सार्थकता को पूर्णतः सफल बनायेंगे।

''हे प्रभो आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिये;
शीघ्र सारे दुर्गुणों को, दूर हमसे कीजिये ।
लीजिये हमको शरण में, हम सदाचारी बनें;
ब्रम्हचारी धर्म रक्षक, वीर ब्रतधारी बनें ।।

इस प्रकार इस प्रार्थना को आँख बन्दकर, ध्यान मुद्रा में मात्र गाने से ही इसकी सार्थकता साबित (प्रमाणित) नहीं होगी बल्कि इसके अन्तर्गत क्या अर्थ-भाव है ? यथार्थतः उस अर्थ-भाव को जीवन-व्यवहार में कैसे लाया जाय ? अपने जीवन में इसको किस प्रकार पूर्णतः सार्थक बनाया जाय आदि-आदि बातों को दृढ़ता एवं गम्भीरता के साथ मनन-चिन्तन करते हुये, अपने जीवन में इसको तथा अपने जीवन को इसमें पूर्णतः एकरूपता का रूप देनी होगी । तब जाकर सर्वत्र 'दोष रहित सत्य

प्रधान उन्मुक्तता और अमरता से युक्त सर्वोत्तम जीवन विधान' वाला अमन-चैन से युक्त समाज स्पष्टतः दिखलाई देगा। प्रायः सभी ही अपनाने और उसीपर ही रहने-चलने लगेंगे और मोक्ष सहित जीवन का सच्चा आनन्द भी पाने लगेंगे । ऐसे ही उन्मुक्तता-अमरता सहित समृद्धि सम्पन्नता वाला अमर-चैन (शान्ति-आनन्द) वाला समाज हो जायेगा ।

सद्भावी गुरुजन बन्धुओं ! 'सत्यं बद्, धर्मं चर (सत्य बोलें और धर्म पर रहें-चलें !)' अपने आप में इतना समर्थ होता है कि कुछ दिनों तक अपने को इसमें (सत्य धर्म में) लगाकर यानी अपने जीवन को दृढ़ता पूर्वक सत्य धर्म पर चला-चलाया जाय तो यह स्वयं ही हमारा अगला रास्ता स्पष्ट करते हुये आगे बढ़ाता जाता है। यदि दृढ़ता पूर्वक अपने आप को सत्य धर्म पर स्थित रखें तो इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि जीवन को सफल-सार्थक न बना दे और जीवन को मुक्ति और अमरता रूप लक्ष्य तक अमन-चैन और परमशांति और परम आनन्द के साथ ही परमपद तक निश्चित ही न पहुँचा दे । प्रह्लाद, हरिश्चन्द, श्रीरामचन्द्र जी महाराज, युधिष्ठिर, विक्रमादित्य आदि के राज्य-शासन में प्रजा कितनी खुशहाल, कितना अमन-चैन का जीवन जी रही थी जिसका कोई हिसाब नहीं था । यह सब 'सत्यं बद्, धर्म चर' (सत्य बोलें और धर्म पर रहें-चलें !) पर रहने-चलने का ही परिणाम था ।

ये उपर्युक्त उदाहरण कोई कपोल-कल्पना पर आधारित नहीं अपितु इतने प्रभावी और व्यावहारिक हैं कि आजकल भी हम सब इस 'सत्यं बद्-धर्मं चर' (सत्य बोलें और धर्म पर रहें-चलें!) को अपने जीवन में दृढ़ता पूर्वक लागूकर जान-देखकर बोध प्राप्त कर-करा सकते हैं कि इस पर (सत्य धर्म पर) चलते हुये कितना शांति और आनन्द मिलता है--इसकी हम आप कल्पना ही नहीं कर सकते क्योंकि यह अकल्पनीय एवं अनिर्वचनीय होता है। इसका अर्थ इसी से जान-समझ लिया जाय कि इससे युक्त व्यक्ति सम्राट का पद क्या, इन्द्र-ब्रम्हा-शंकरजी का पद भी इसके बदले नहीं चाहता !

हम तो भगवत् कृपा से प्राप्त तत्त्वज्ञान और अपने व्यावहारिक अनुभव और बोध के आधार पर आदरणीय गुरुजन बन्धुओं से बार-बार साग्रह निवेदन करते हुये कहेंगे कि शिष्ट एवं संयमित गुरुजन ही शिष्ट एवं संयमित- अनुशासित अमन-चैन का विद्यार्थी और समाज भी स्थापित कर-करा सकते हैं ।

अशिष्ट से शिष्ट समाज असम्भव

जो स्वतः शिष्ट और संयमित न हो उससे शिष्ट एवं संयमित समाज की आशा की ही नहीं जा सकती है । जो स्वतः अनुशासित न हो, उससे अनुशासित समाज की कल्पना करना भी अपने आप को भ्रम में रखना तथा समय और श्रम को व्यर्थ गवाँना है। जो स्वयं सत्यवादी न हो, उससे सत्यवादी समाज की आशा ही बेकार है। जो स्वयं ही धार्मिक नहीं है, उससे धार्मिक समाज की स्थापना सोचा ही नहीं जा सकता है।जो निष्काम, शान्त एवं आनन्द से युक्त न हो, उससे निष्काम, शान्त एवं आनन्दित समाज की स्थापना का विचार करना ही अपने नासमझदारी का परिचय देना है । इस प्रकार इन बातों को मद्देनजर रखते हुए सर्वप्रथम अपने जीवन को शिष्टता, संयमितता और अनुशासनिकता से युक्त करें तत्पश्चात् अध्यापन कार्य करें क्योंकि विद्यार्थी पर सबसे अधिक प्रभाव उसके विद्यादाता अध्यापक का ही पड़ता है ।

एक अशिष्ट एवं असंयमित और अनुशासनहीन अध्यापक अध्ययनशील हजारों हजार विद्यार्थियों को अशिष्ट, असंयमित और अनुशासनहीन बना देगा जिससे कि समाज तथा सामाजिक व्यवस्था पर इतना बुरा प्रभाव पड़ेगा कि बाद में उसे ठीक करना यानी सुधारना एक असाध्य नहीं तो दुःसाध्य कार्य तो निश्चित ही हो जायेगा। इसलिए सुव्यवस्थित अमन-चैन के समाज हेतु सर्वप्रथम गुरुजन बन्धुओं को स्वयं ठीक (शिष्ट एवं संयमित) होना-रहना पड़ेगा, अन्यथा प्रशासन का यह प्रथम कर्तव्य होना चाहिये कि ऐसे अशिष्ट, असंयमित और अनुशासनहीन गुरुजन को पद पर या तो नियुक्ति ही न करें और नियुक्ति करना जरूरी हो तो उन्हें ठीक राह पर सुधार कर ला देवे अन्यथा बिना किसी हिचकिचाहट के उन्हें उक्त कार्य से मुक्त कर दे । ऐसा करने में थोड़ी भी एहसान या मरौवत की आवश्कता नहीं है । ऐसे में कुछ गुरुजनवृन्द पर एहसान का अर्थ उनसे सम्बन्धित समस्त विद्यार्थीजन के जीवन के साथ खिलवाड़ करना, घात करना अथवा उन्हें बर्बाद करना होगा ।

मर्यादा और महत्ता हेतु शिष्टता अनिवार्य

सद्भावी गुरुजन बन्धुओं ! आपके सम्बन्ध में अधिक क्या कहूँ या लिखूँ, क्योंकि आप लोग तो स्वतः ही विद्वान् जानकार एवं समझदार हैं । फिर भी अन्ततः एक बात और तो कह ही देना चाहूँगा कि आपकी मर्यादा एवं महत्ता भी श्रेष्ठतर इसी में है कि शिष्ट, संयमित और अनुशासित विद्यार्थी एवं समाज की रचना करें, क्योंकि शिष्ट, संयमित और

अनुशासित विद्यार्थी एवं समाज ही किसी के मर्यादा एवं महत्ता को भी जान-समझ एवं व्यवहारित कर सकता है और जब वह किसी की भी मर्यादा और महत्ता जानने-समझने देने-करने लगेगा तो फिर अपने विद्यादाता गुरु की कितनी मर्यादा और महत्ता देगा--यह स्वतः ही समझने योग्य बात है।

जो अशिष्ट, असंयमित और अनुशासनहीन होगा वह किसी के मर्यादा एवं महत्ता को जानने-समझने की कोशिश ही नहीं करेगा। करना भी चाहे तो आता ही नहीं । वह तो सदा अपने ही मर्यादा एवं महत्ता के चक्कर में पड़ा रहता है । उसे तो यह कदापि समझ में नहीं आता है कि मर्यादा एवं महत्ता पाने हेतु मर्यादा एवं महत्ता देना अनिवार्यत होता है क्योंकि किसी के लिये भी किसी व्यक्ति या समाज को मर्यादा दिये वगैर उस व्यक्ति या समाज से मर्यादा या महत्ता को पाना बिल्कुल ही असम्भव बात है क्योंकि जो बीज बोया जायेगा, फसल और पौध-फल भी वही होगा यानी मर्यादा स्थापित करने से ही मर्यादा मिलेगी ।

मर्यादा एवं महत्ता और समझ अपने आप में एक उत्तम गुण है और किसी उत्तम गुण हेतु शिष्टता एवं संयमितता और अनुशासनिकता एक अनिवार्य पहलू है ।

अतः बार-बार, अनेकानेक बार पुनः गुरुजन बन्धुओं से साग्रह निवेदन पूर्वक कहूँगा कि शिष्ट, संयमित और अनुशासित समाज के रचना का पूरा-पूरा भार एक मात्र गुरुजन बन्धुओं को ही अपने पर ही लेना और सहर्ष उसे निभाना भी चाहिये। समाज की समुचित रचना आप ही बन्धुओं से सम्भव है । यदि आप संभल जायें तो सारा समाज संभल जाय । आज समाज जो भ्रष्टता के अंतिम रूप में पहुँच गया है, उसकी जिम्मेदारी गुरुजनवृन्द एवं शासन व्यवस्था की ही है । इसे गुरुजनवृन्द एवं सरकार स्वीकार कर सत्यता पूर्वक अपने जिम्मेदारी को समझ-बूझ कर अपने कर्त्तव्य पालन में समुचित रूप से लग जायें तो निःसंदेह दोष रहित सत्य प्रधान मुक्ति-अमरता सहित अमन-चैन का सुख-समृद्धि से युक्त समाज स्थित हो जाये । चारो तरफ ही खुशियाली हो ही जायेगी । प्रायः सब ही अपने आप को कृत-कृत्य ही देखने लगेंगे।

स्वार्थ-सर्वथा त्याज्य

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! आज समाज में चोरी-डकैती, लूट-अपहरण, हत्या-अत्याचार-भ्रष्टाचार जोर जुल्म और आतंक का जो वातावरण चारो तरफ उग्रतम रूप लेकर छाया हुआ है । इसके मूल में एकमात्र स्वार्थ ही है जो आज समाज को ऐसे विकृत स्तर तक पहुँचा दिया है । स्वार्थ के कारण ही आज शासन के अन्तर्गत

शुरू से अन्त तक घूस रूपी घोर घृणित भ्रष्टाचार छाया हुआ है । आज प्रायः कोई कर्मचारी, अधिकारी, एम् एल् ए, एम् पी ,यहाँ तक कि मंत्रीगण भी बिना घूस या कमीशन (आंशिक प्राप्ति) के कोई कार्य करता ही नहीं । घूस तो अब इन लोगों के जुबान पर घूस न रहकर सुविधा शुल्क कहलाने लगा है । एम् एल् ए, एम् पी, मन्त्री जी लोगों के लिये इसका सुधारात्मक नाम चन्दा पड़ गया है जो एक प्रकार का अग्रिम घूस ही होता है जिसका दुस्परिणाम वस्तुओं की महँगायी आदि-आदि जनमानस को झेलना पड़ता है । यही कारण है कि समाज में अनुशासन व व्यवस्था नाम की चीज तो सुनने को ही नहीं मिल रही है, देखना तो दूर रहा।

इस प्रकार के स्वार्थी समाज की देन भी गुरुजन बन्धुओं की ही है। यह एक अनिवार्यतः सत्य सिद्धान्त है कि स्वार्थी व्यक्ति को कदापि गुरु नहीं बनना चाहिये अथवा प्रशासन को चाहिए कि स्वार्थ प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को अध्यापन हेतु कदापि नियुक्त न करे, क्योंकि स्वार्थी प्रवृत्ति वाले गुरु से परमार्थिक समाज कदापि स्थापित नहीं हो सकता और जब तक गुरुजन वर्ग परमार्थिक प्रवृत्ति का नहीं होगा, तब तक समाज सुधार और जीवोद्धार की आशा एक कोरी कल्पना मात्र बनकर ही रह जायेगी । 'शिष्ट, संयमित, अनुशासित और एक दूसरे के सहायक- सहयोगी रूप समाज की स्थापना हेतु निःस्वार्थी गुरुजन तथा निष्काम सेवा और परमार्थी प्रवृत्ति वाला ही अध्यापक अनिवार्य है।'

सद्भावी गुरुजन बन्धुओं ! आप गुरुजन बन्धुओं को चाहिये कि विद्यार्थी के अन्तर्गत स्वार्थ और भेदभाव रहित परमार्थ की ही शिक्षा-दीक्षा दिया जाय। जैसी जानकारी होती रहती है, वैसा ही कार्य भी होता रहता है। हर कार्य का आधार 'ज्ञान' (जानकारी) ही होता है तथा होना भी यही चाहिये।

गुरुजन बन्धुओं ! कम से कम थोड़ा भी तो मनन-चिन्तन करके जानते-देखते हुए समझने की कोशिश करें कि समाज को बर्बाद करने से क्या आपको शांति और आनन्द की अनुभूति अथवा सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति हो रही है ? यदि इस पर थोड़ा भी मनन-चिन्तन करेंगे तो पायेंगे कि आपको भी सामाजिक विकृति-विघटन का शिकार होना पड़ रहा है, जिससे आप स्वयं काफी अशान्त, चिन्तित और दुःखित हैं, असन्तुष्ट हैं । अपने और अपने विद्यार्थी मण्डल के सुधार हेतु प्रयत्न करने-कराने को कभी-कभार सोचते भी हैं तो असंयमित आचरण, व्यवहार एवं स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण उस पर चल ही नहीं पाते हैं । चलने का भी प्रयत्न करते हैं तो अपने अगल-बगल अशिष्ट-असंयमित और अनुशासनहीन व्यक्तियों के असहयोग एंव बाधा के कारण उस पर टिक (स्थिर) ठहर ही नहीं पाते हैं, क्योंकि आपके अन्दर न तो विश्वास रह गया है

और न साहस ही । विश्वास और साहस तो सन्देह और स्वार्थ रूप छिद्र से आपके अन्तःकरण से बह-निकल कर बाहरी वातावतण में विलीन हो गया है जिसको पुनः वापस अन्तःकरण में लाना भी कुछ तो योग-साधना या आध्यात्मिक साधना अथवा साधनात्मक क्रिया से और पूर्णतः ठीक-ठीक रूप में तत्त्वज्ञान रूप सत्यज्ञान पद्धति से परमप्रभु रूप भगवत् कृपा से ही सम्भव है, अन्यथा ठीक होना कदापि सम्भव नहीं है । आप सब समाज के सबसे जिम्मेदार व्यक्ति हैं। जरा सोचें तो सहीं कि क्या ये बातें सही ही नहीं हैं ?

सद्भावी गुरुजन बन्धुओं ! यथार्थता यानी वास्तविकता के साथ देखा जाय तो यह स्पष्ट (खुलासा) होते देर नहीं लगेगी कि स्वार्थ ही एक मात्र सभी बुराइयों, अत्याचारों, भ्रष्टाचारों, जोर-जुल्मों आदि में मुख्य रूप से मूलतः निहित है। स्वार्थ के कारण ही अशिष्टता, असंयम, अनुशासनहीनता, मर्यादाहीनता, अभिमान-अहंकारिता आदि विघटनकारी गड़बड़ियाँ उत्पन्न होती और फैलती हैं । इसके (स्वार्थ के) समूल सफाया हेतु सर्वप्रथम, अध्ययन- अध्यापन के अन्तर्गत ही भेद-भाव रहित परमार्थपरक शिक्षा-दीक्षा को ही गुरुजन बन्धुओं द्वारा अपनाना होगा जिसके लिये पहले-पहल तो गुरुजन बन्धुगण को ही स्वार्थी मनोवृत्ति को घृणित जैसा त्याग करते हुए अपने-अपने विद्यार्थी समाज में भी स्वार्थ के प्रति घृणा भाव उत्पन्न करना । साथ-साथ निष्काम एवं परमार्थी प्रवृत्ति को स्वतः अपनाते हुये उन्हें भी अपनाने हेतु उत्प्रेरित तथा स्पष्ट और पुष्ट शास्त्रीय-प्रमाणों से जनाते-समझाते हुये उनके दिल व दिमाग में बैठा देना होगा ताकि वे भी स्वतः ही स्वार्थ से घृणा और परमार्थ से प्रेम करने लगें तथा व्यवहार में लानें और अपने जीवन में अपनाने लगें । परमार्थ समाज हेतु स्वार्थ का त्याग अनिवार्य है । स्वार्थ ही तो पतन और विनाश का बीज और परिवार ही उसका हरा-भरा वृक्ष होता है ।

अपना 'कर्तव्य' देखें, 'अधिकार' नहीं

सद्भावी मानव बन्धुओं ! आजकल यत्र-तत्र-सर्वत्र यही देखा जा रहा है कि सभी कर्मचारी, अधिकारी, सामाजिक संस्थायें, राजनीतिक नेता गण आदि आदि प्रायः सभी के सभी ही अपने अधिकारों के माँग में ही लगे हैं । कोई सभा कर रहा है तो कोई जुलूस निकाल रहा है। कोई सांकेतिक और कलम बंद हड़ताल कर रहा है तो कोई पूर्ण हड़ताल ही करने-कराने में लगा है । कोई 'जेल भरो अभियान' में लगा है, तो कोई विरोध, घेराव, एवं तोड़-फोड़ में ही लगा हुआ है। यहाँ तक कि समाज में

उग्रता-आतंक एवं अराजकता (आदि) सामाजिक विघटन रूपी खतरा अब विनाश के बहुत करीबतर पहुँच गया है । इन सभी गड़बड़ियों के मूल में एक ही बात छिपी है, वह है 'अधूरी और प्रतिकूल शिक्षा पद्धति'। जब तक सत्य-धर्म रूप क्रमशः ऊपरसे नीचे को तात्त्विकता, आध्यात्मिकता नैतिकता, और सांसारिकता और नीचे से ऊपर को सांसारिकता-नौतिकता-आध्यात्मिकता और तात्त्विकता(परमसत्यता) रूप चारों अंशों से युक्त 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' समाज में प्रभावी रूप से लागू नहीं होगी और विद्यातत्त्वम् (तत्त्वज्ञान) प्रधान होने-रहने वाला विद्यादाता गुरु द्वारा शिक्षा-दाता शिक्षक का स्थान ग्रहण कर हर स्तर की परमार्थ परक यथार्थतः शिक्षा आपसी मेल-मिलाप, नीति-वैराग्य, अध्यात्म-त्याग और ज्ञान-समर्पण की नहीं दी जायेगी तथा स्वार्थी, लोभी, लालची, अहंकारी अशिष्ट, असंयमी और अनुशासनहीन शिक्षकों के स्थान पर त्यागी, दानी, निरभिमानी, शिष्ट, संयमी और अनुशासित सज्जन निष्कामी, परमार्थी गुरुओं को प्रतिस्थापित नहीं किया जायेगा, तब तक समाज-सुधार औरं जीवोद्धार रूप समाज कल्याण की कल्पना भी व्यर्थ ही होगी। यह बात पढ़ने-सुनने में अजीब (आश्चर्यजनक) भले ही लगे परन्तु वास्तव में यह बात ध्रुव सत्य है कि निकट भविष्य में धार्मिक राज्य विश्व में स्थापित होना ही है तथा ये सारी बातें या पद्धति ही समाज में प्रभावी रूप से लागू होनी ही है। अब जब जिसे भविष्य में लागू होना ही है तो क्यों नहीं सहजभाव से वर्तमान में ही उसे स्वीकार करके समाज में यश-कीर्ति पाने में यशभागी बनें ।

सद्भावी गुरुजन बन्धुओं । सर्वप्रथम तो यह जानने-जनाने की बात है कि वास्तव में कर्तव्य क्या है ? और अधिकार क्या है ? कर्तव्य और अधिकार रूप दोनों पहलुओं को स्थिरता एवं गम्भीरता के साथ मनन-चिन्तन करते हुए जानते-देखते हुए समझने की कोशिश किया जायेगा तो अन्ततः यही मिलेगा कि कर्तव्य-कर्म ही अपना श्रेष्ठतम् अधिकार है, क्योंकि कर्तव्य प्रधान बनने या होने पर देखने को मिलेगा कि अधिकार तो कर्तव्य का ही छायारूप है। जहाँ भी कर्त्तव्य होगा, उसके पीछे-पीछे अधिकार को छायारूप में रहना ही रहना है मगर अधिकार को देखते हुये कर्तव्य को ही छोड़ दिया जाय तो पीछे-पीछे छाया की छाया तो बनेगा नहीं, फिर तो अधिकार अपने आप ही समाप्त हो जाया करेगा। अर्थात् कर्त्तव्य जहाँ भी रहेगा वहाँ ही अधिकार को उसका सेवक यानी दास-दासी छायारूप बनकर रहना ही रहना होगा। कर्तव्य के वगैर अधिकार का तो कोई अस्तित्त्व ही नहीं दिखलायी देता हैं। थोड़ा भी तो आप बन्धुगण भी गौर फरमायें (ध्यान दीजिए) कि क्या कर्त्तव्य के वगैर अधिकार का कोई

अस्तित्त्व है ? और जब अधिकार का पृथक् कोई अस्तित्त्व ही नहीं है तो इस अधिकार के लिए प्रयास, सभा, जुलूस या लड़ाई-झगड़ा क्यों ? यह सब तो व्यर्थ ही है, फिर ऐसा क्यों किया जाय ? क्यों नहीं ईमान और सच्चाई से कर्तव्य पालन में ही लगा-लगाया जाय जिससे हर क्षेत्र में ही सुचारू रूप कार्य हो और अधिकाधिक उपार्जन होने लगे फिर तो सुख-समृद्धि जायेगी कहाँ-निःसन्देह निश्चित ही आप सब का चरन चूमने लगेगी । फिर तो ऐसा ही क्यों न किया कराया जाय ? निश्चित ही किया कराया जाय ।

पुनः दूसरे तरफ यह देखा जाय कि कर्तव्य करने पर कर्तव्य जितना किया जाता है, उतना भर का अधिकार सदा ही उसके पीछे लगा-बझा रहता ही है। इसलिये हम सभी बन्धुओं को अधिकार कीं मिथ्या लड़ाई न लड़कर बल्कि अधिकार के रूप में कर्तव्य की माँग और मिलने पर अधिक से अधिक श्रमपूर्वक कर्तव्य कर्म को करता हुआ, अधिक से अधिक कर्तव्य कर्म को पाने और करने की कोशिश करना चाहिये; क्योंकि जैसे-जैसे आपका कर्तव्य-कर्म अधिक बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे ही आपको इसका फल (अधिकार) अपने आप ही मिलता जायेगा । इतना ही नहीं, सबसे बड़ी और सर्वोत्तम बात तो यह होगी कि कर्तव्य-कर्म को लगन एवं परिश्रम से करने के बाद उससे मिला हुआ उसके फल के भोग-उपभोग में उत्तमतर आत्मसन्तुष्टि की भावना उत्पन्न होती है जो अनिर्वचनीय शांति और आनन्द प्रदान करती है । इन सब बातों के बावजूद भी कर्त्तव्य-कर्म कि 'हमको और अधिक काम मिले' अथवा 'हमारे काम का समय और अधिक किया जाय' अथवा 'हमसे अधिक से अधिक श्रम लिया जाय' आदि आदि बातों को लेकर कोई सभा, जुलूस, सांकेतिक कलम बन्द या पूर्णतः हड़ताल तथा विरोध या जेल-भरो अभियान आदि कहीं सुनने को भी नहीं मिलेगा, देखना तो दूर रहा। हाँ, कहीं-कहीं बेकारी भत्ता की माँग और प्राप्ति भी हो रही है जो सरकारी अकर्मण्यता और अव्यवस्था का दुष्परिणाम है । क्या सरकार के पास कोई कार्य और व्यवस्था ही नहीं है ?

आज का मानव दिन पर दिन आलसी-सुस्त, बिना श्रम किये लूट-खसोट कर जीने-खाने वाले हो गये हैं । कोई श्रम करना नहीं चाहता है, परन्तु सभी अधिक से अधिक सुख-भोग के आकांक्षी हैं । प्रायः सबके सब बैठ-सोकर के ही रहना व रात-दिन ऐशो-आराम करना चाहते हैं और मौका मिलते ही, चाहे जिस किसी भी प्रकार से हो ऐसे ही करते भी रहते हैं । आजकल केवल चोर, डाकू, गुण्डा, बदमाश, जुल्मी, आंतकवादी तो ही एम. एल. ए , ऊँचे-ऊँचे पदों पर भी एम. पी, और

मंत्रिमण्डल के प्रायः मंत्रीगण भी पदासीन हो जाया कर रहे हैं। जिन्दगी भर चोरी, डकैती, जोर-जुल्म करते हुये वे नेता-मंत्री आदि होकर आई० ए० एस० व आई० पी० एस० और उच्चस्थ पदासीन अधिकारीगण को गाय-बैल और भैंस आदि की तरह मनमाना चरवाही कर-करा रहे हैं । जिसके दिमाग में कर्तव्य का अर्थ भी नहीं समा सकता है, वही ही आजकल आई०ए०एस० और आई०पी०एस० पर शासन करने लगा है । फिर समाज की क्या गति होगी ! जहाँ इन्जीनियर और डाक्टर भी ऐसे ही राजनेताओं के दया के पात्र हैं, फिर स्वास्थ्य और सामाजिक संरचना की क्या स्थिति होगी ? अब यह स्वयं ही सोचना-समझना चाहिये । आजकल के चाटुकारिता भरे आरक्षण ने तो प्रतिभाओं को समाप्त प्रायः करते जा रहे हैं जिसका दुष्परिणाम समाज को भुगतना पड़ रहा है । प्रायः सभी ही इसे देख रहे हैं, मगर स्वार्थ और कुर्सी रूपी लोभ-लालच किसी को समझने-सम्भलने नहीं दे रही है । सभी को ही ऐसे गर्त (पतन-विनाश) की ओर बढ़ने को मजबूर करती जा रही है।

'अधिकार' और 'कर्तव्य' की वास्तविक स्थिति

('अधिकार' अभाव और पतन का तथा 'कर्तव्य' समृद्धि और उत्थान का एकमात्र हेतु)

भगवत् कृपा विशेष से और 'तत्त्वज्ञान' के प्रभाव से जहाँ तक हमारी जानकारी और समझ है, वहाँ तक तो हम यही समझ पा रहे हैं कि हमें कर्तव्य-कर्म का अवसर मिले, यही हमारा सबसे बड़ा अधिकार होना चाहिए। पुनः मिले हुए कर्तव्य कर्म को ईमान और सच्चाई से संयमपूर्वक लगन के साथ अपनी क्षमता से भी कुछ आगे बढ़कर श्रम करते हुए दिखलायें ताकि अगले बार हमें और ही अधिक कर्तव्य कर्म की प्राप्ति होवे, क्योंकि जस-जस कर्तव्य कर्म बढ़ायेंगे, पीछे-पीछे अधिकार को भी बढ़ना ही है। कहा भी गया है कि "कर्तव्य का फल सदा ही मीठा होता है"। कर्तव्य कर्म का फल सदा ही श्रेष्ठ और उत्तम हुआ करता है, जिससे कर्त्तव्य-कर्म के पालन करने वाले को उसका फल मिलता ही है और यह फल ही तो अधिकार है जो कर्तव्य के पीछे बिन माँगे ही मिलता ही रहता है। इसलिये हर किसी को ईमान और सच्चाई से लगनपूर्वक लगन से किये हुये अपने कर्तव्य कर्म मात्र को ही देखते व करते रहना चाहिये ।

यदि कर्त्तव्य कर्म का फल तत्काल नहीं भी मिले तो भी उससे घबड़ाना नहीं

चाहिये। पूर्णतः विश्वास एवं भरोसा के साथ अपने कर्त्तव्य कर्म के फल का बोझ दैवी-विधान और भगवान्, जो सृष्टि का कर्त्ता-भर्त्ता-हर्त्ता है, पर छोड़ते जाना चाहिये। ऐसा करने पर वह प्रकृति और पुरुष यानी भगवान् किसी न किसी रूप में उस फल को कर्तव्य कर्म करने वाले को देता ही रहता है। अतः कर्तव्य कर्म ही हमारा मूल अधिकार होना चाहिये ।

सद्भावी मानव बन्धुओं ! अधिकार की तरफ देखना, अधिकार की माँग करना, अधिकाधिक अधिकार हेतु लड़ाई और अधिक अधिकार या फल (वेतन आदि) के लिये हड़ताल आदि करना-कराना आदि-आदि बातों व कार्यों को थोड़ा भी ध्यान देकर मनन चिन्तन किया जाय तो परिणाम यही निकलेगा कि अधिकार के तरफ देखने से हमारा कर्तव्य कर्म भी छूटता जाता है अर्थात् हम कर्तव्य कर्म से उस मात्रा तक तो बंचित हो ही जाते हैं जिस मात्रा तक अधिकार को देखने में लगे रहते हैं। जरा ईमान से सोचिए समझिए तो सही कि कर्तव्य के बिना अथवा कर्तव्य से अधिक अधिकार की चाह और प्राप्ति क्या बेईमानी नहीं है ? निश्चित ही बेईमानी ही है जो बिल्कुल ही त्याज्य होती है ।

हम यह नहीं कहते कि आप मानव बन्धु हमारे इस बात को मानें ही क्योंकि यह बात तो आज की स्थिति-परिस्थिति के बिल्कुल ही विपरीत लग रही है फिर भी मैं इतना तो आप बन्धुओं से अवश्य आग्रह करूँगा और आग्रह ही नहीं, साग्रह निवेदन भी करूँगा कि थोड़ा सा भी तो आप भी सोचें-समझें, क्योंकि भगवान् ने हम सभी लोगों को थोड़ा बहुत सोचने-समझने हेतु दिल-दिमाग तथा बुद्धि और विवेक भी तो दिया है कि हमलोग अपनी क्षमता भर समझ-बूझ के साथ ही अगला कदम रखें। इसलिये हमें-थोड़ा बहुत अवश्य सोचना-समझना चाहिये कि क्या हम कोई कर्तव्य-कर्म ईमान और सच्चाई से संयमपूर्वक लगन एवं परिश्रम के साथ करेंगे तो उसका फल नहीं मिलेगा ? ऐसा कदापि हो ही नहीं सकता है । यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि थोड़े देर या कुछ दिन व माह-वर्ष फल (पारिश्रमिक) नहीं ही मिलता है तो क्या इसका फल समाप्त हो जाता है? नहीं ! नहीं !! कदापि नहीं !!! बल्कि वह इकठ्ठा हो रहा है। इसे एक-न-एक दिन मिलना ही है। अवश्य ही मिलना है। सब जोड़-बटोर कर मिलना है। नहीं यहाँ तो वहाँ । नहीं इस जनम में तो अगले जनम में, मिलना ही है ! दैवी विधान भी उसे रोक या समाप्त नहीं कर सकता है, मानवीय विधान को कौन कहे!

हमें अपने कर्तव्य कर्म पर पूर्ण विश्वास एवं भरोसा होना-रखना चाहिये। यदि

कठिन स्थिति-परिस्थिति भी सामने आती है तो उसे भगवत् कृपा समझकर सहर्ष झेल लेना चाहिये, परन्तु अपने विश्वास एवं भरोसा में सन्देह और निराश नहीं होना चाहिये ।

इन्सान भगवान् को जाने-देखे नहीं या समझे नहीं, तो कोई बात नहीं, परन्तु भगवान् तो हम सभी के कर्त्तव्य कर्मों या हमारे दिल की गोपनीय से गोपनीय बातों से भी परिचित है। उन्हें भी वही अच्छी प्रकार ही जानता-देखता व समझता भी है क्योंकि सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ जानकार, सर्वश्रेष्ठ द्रष्टा, सर्वश्रेष्ठ समझ वाला और सर्वसमर्थ भी एक मात्र वही खुदा-गॉड-भगवान् ही है। इस प्रकार हमें उस खुदा-गॉड-भगवान के प्रति विश्वास एवं भरोसा में थोड़ा भी संदेह की गुंजाइश नहीं रखनी चाहिये ।

इन सभी बातों पर मनन-चिन्तन करते हुये ध्यान दिया जायेगा तो निश्चित ही यह बात समझ में आ जायेगी कि हमें किसी भी स्थिति-परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य कर्म से आलस्य एवं प्रमाद या किसी भी कारण से अपने को बंचित नहीं रखना चाहिए। दूसरे तरफ थोड़ा भी तो सोचें कि बिना कर्म का कोई फल या अधिकार कभी भी नहीं बनता है, तो अवश्य समझ में आ जायेगा कि हमारा एकमात्र अधिकार कर्त्तव्य कर्म को करने में ही है, अधिकार को देखने में नहीं, क्योंकि अधिकार को कर्त्तव्य कर्म के पीछे रहना ही रहना है। अधिकार देखने से तो पतन और अभाव ही होता जाता है जबकि कर्तव्य को देखने-करते रहने से विकास-उत्थान और समृद्धि होना ही होना है । अब आप ही निर्णय लें कि दोनों में से किसे अपनाना श्रेष्ठतर-श्रेयस्कर होगा ? वही करें । निःसन्देह कर्मठता विकास-समृद्धि की जननी है।

दोषों का दायित्त्व अपने पर लेना सर्वथा लाभप्रद ही

सद्भावी मानव बन्धुओं ! प्रायः देखा जाता है कि समाज में या किसी संस्था विशेष के साथ कोई अच्छा कार्य होता है अथवा कोई अच्छी सुविधा उपलब्ध होती है अथवा कोई अच्छा सेवा-सहयोग मिलता है तो उसका वाह-वाही लूटने वालों की कमी नहीं होती है-- ताँता लगा रहता है । यानी प्रायः सभी ही उस यश के भागी दार बनने का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर देते हैं । परन्तु ज्योंहि कहीं कोई गड़बड़ी या बाधा या परेशानी अथवा दुःख-कष्ट आदि उत्पन्न होता है या किसी पर पड़ता है तो उस गड़बड़ी या बाधा या परेशानी अथवा दुःख-कष्ट का दायित्त्व कोई भी लेने को तैयार

नहीं होता है। जिसके माध्यम से उत्पन्न होता है, वह भी कतराने या दूसरे पर ही दोषारोपण करना शुरु कर देता है। यह तो स्थिति-परिस्थिति है आज के समाज की। हालांकि वास्तविकता बिल्कुल ही इसके विपरीत होती है। नीति का सिद्धान्त यह ही कहता है कि दोष अपने आप महत्ता दूसरों को देते रहना ही महापुरुषत्व होता है।

सद्भावी बन्धुओं ! आज की परिस्थिति इतनी बद् से भी बद्तर हो गयी है कि अब सत्य-धर्म-न्याय और नीति को दृढ़तापूर्वक अपनाये वगैर वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को सुधारना और सवाँरना दुसाध्य हो चुका है क्योंकि 'सत्य-धर्म-न्याय-नीति' एक सुदृढ़ एवं अनुशासित समाज हेतु अथवा अमन-चैन समाज हेतु ये चार मूलभूत स्तम्भ हैं, जिसके वगैर समाज रूपी छत (मंजिल) का टिकना ही असम्भव होता है। जिस समाज में आधारभूत रूप में ये चारों नहीं होंगे, वह समाज मात्र विघटन का रूप ही नहीं लेगा अपितु उस समाज का पतन और विनाश भी अवश्यम्भावी ही होता है। यह ध्रुव सत्य है।

विश्व विनाश के कगार पर मगर भगवत् कृपा विशेष

'सत्य-धर्म-न्याय-नीति' रूप चारों के श्रेष्ठता एवं उत्तमता को समाज में आन्तरिक रूप में तो सभी स्वीकार करते ही हैं, परन्तु जैसे ही उन्हें अपनाने तथा इसी के आधार पर रहने-चलने को कहा जाता है तो बाह्य-विकृत परिस्थितियाँ उनके अन्दर हिलोर मारकर ऐसा तरंग उत्पन्न करती हैं कि उनका हिम्मत या साहस ही टूट जाता है, क्योंकि आजकल समाज में आडम्बरियों,पाखण्डियों, मिथ्यावादियों और अन्यायियों ने 'सत्य-धर्म-न्याय-नीति' में ही शक्ति-सामर्थ्य होता-रहता है-- ऐसे विश्वसनीयता को ही प्रायः समाप्त करने-कराने में लगे हैं।

आज प्रायः किसी में भी साहस ही नहीं रह गया है कि वह अपने को सत्यवादी कह सके अथवा सत्यवादी रूप में रह-चल सके। अपने को धार्मिक कह सके अथवा शुद्धता एवं पवित्रता के साथ धार्मिकता के रूप में रह सके। अपने को न्यायी कह सके अथवा न्याय प्रियता पर ठीक-ठीक से रह-चल सके। अपने को नैतिक कह सके अथवा नैतिकता पर टिका रह-चल सके। आज का शासन और समाज तो हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यप, रावण, कंश, फिर्औन, हेरोदेश, कुरैश धर्म विरोधी अथवा अधार्मिक आदि के शासन और समाज से भी बद् से भी बद्तर स्थिति-परिस्थिति तक पहुँच गया है। बात अब यहीं तक नहीं रह गयी है कि यह कितना विकृत हो गया है बल्कि बात

तो अब यहाँ तक पहुँच चुका है कि आखिरकार विनाश (प्रलय) में अब देरी ही क्यों हो रहा है ? विश्व-विनाश हेतु (सज्जनों या भगवद् भक्तों या सेवकों-प्रेमियों के अतिरिक्त) अब कौन जोर-जुल्म, अत्याचार-भ्रष्टाचार अथवा घोर घृणित कार्य होना बाकी रह गया हैं जिससे कि शीघ्रातिशीघ्र मिथ्यावादियों, अधार्मिकों, अत्याचारियों, दुराचारियों आदि दुष्टों का विश्व से विनाश नहीं हो रहा है ? इस समय विचारणीय बात यही है कि अब देर क्यों? इससे तो यही महसूस होता है कि वर्तमान समाज पर अभी भी खुदा-गॉड-भगवान् की विशेष कृपा है जिससे कि वे समाप्ति-प्रलय के बजाय सुधारने-सवाँरने के प्रयास में लगे हैं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी मानव बन्धुओं ! 'सत्य-धर्म-न्याय-नीति' प्रधान समाज ही शिष्ट-संयमी-अनुशासित और अमन-चैन-समृद्धि का समाज हो सकता है । यह समाज ऐसा विशिष्ट होता है और होगा भी कि जो बिल्कुल ही त्यागी, समर्पणी, सद्भावी, सद्विचारी, सद्व्यवहारी, सत्प्रेमी, सत्कर्मी सदाचारी और परमार्थी होता है तथा निकट भविष्य में होगा भी। इस समाज के लोगों में वाह-वाही लूटने तथा दोषों को पराये माथे मढ़ने वाली बात नहीं होती है । यह समाज सदा ही यश दूसरे को देता है तथा दोषों के दायित्व को अपने पर लेता है; क्योंकि इसे 'सत्य-धर्म-न्याय-नीति' में अटूट श्रद्धा एवं विश्वास होता है तथा खुदा- गॉड-भगवान्पर भरपूर भरोसा है कि मैं यदि निर्दोष होऊँगा तो कदापि मैं दण्डित नहीं हो सकता तथा साथ ही यदि मैं दोषी हूँ तो छिपकर अथवा मिथ्या बोलकर बच नहीं सकता। वह यह समझता है कि बचने का उपाय भी सच-सच दोषों को स्वीकार करते हुए क्षमायाचना करके भविष्य में निर्दोष जीवन व्यतीत करने का संकल्प लेकर ही होता है । इसलिये वाह-वाही का कोई लाभ नहीं और दोष अपने पर स्वीकार कर लेने से कोई हानि भी नहीं।

अपने ऊपर दोषों के दायित्व को स्वीकार कर लेना भी सामान्य बात नहीं है, बल्कि इससे व्यक्ति के अन्दर छिपे हुये सत्यवादिता एवं साहस की महत्ता ही प्रकट होती है और वह व्यक्ति महापुरुष और सत्पुरुष कहाने लगता है । प्रत्येक व्यक्ति को ही अपना स्वभाव ही ऐसा बनाना चाहिये कि अच्छाइयों को दूसरे का माने और कहें तथा बुराइयों और दोषों को अपना माने और कहे तथा अपने को और समाज को उस बुराई-दोष से मुक्त होवे और करावे। यह महापुरुष और सत्पुरुष बनने-होने का सरल एवं सहज उपाय है । प्रतिष्ठित और मर्यादित जीवन हेतु यह एक सहज पद्धति है । जिसे हर किसी को ही अपनाना चाहिए, अपनाना ही चाहिए।

सद्भावी गुरुजन बन्धुओं ! मैं तो बार-बार अशिष्ट, असंयमित, अनुशासनहीन

एवं विकृततम् सामाजिक रूप को देखकर, इसके दायित्त्व को दूसरों पर ले भी जाना चाहता हूँ तो भी सत्य जो है, मुझको बार-बार खींचकर इसके दोषों का दायित्त्व गुरुजनवृन्द पर ही लाता है जिसके कारण समाज के बर्बादी का दायित्त्व गुरुजन बन्धुओं पर ले जाने हेतु मजबूर हूँ। वास्तविकता भी यही है। यदि गुरुजन बन्धुओं से भी इस दायित्व के सम्बन्ध में पूछा जाय तो वे भी समस्त दोषों को सत्यतः अपने पर स्वीकार करने हेतु मजबूर हो जायेंगे, क्योंकि विद्यार्थी ही भावी समाज के कर्णधार होते हैं और विद्यार्थियो के समुचित संरचना की सारी जिम्मेदारी गुरुजनवृन्द पर ही होनी चाहिये। गुरुजनवृन्द को चाहिए कि जिम्मेदारी स्वीकारते हुऐ यथाशीघ्र इसे सुधारने-संवारने का यत्न करें ।

यदि विद्यार्थी मिथ्यावादी हुआ, नास्तिक (अधार्मिक) हुआ, अन्यायी हुआ तथा अनैतिक एवं दुराचारी हुआ तो आखिर क्यों हुआ ? छोटी अवस्था में ही उसे शिष्ट, संयमी एवं अनुशासित क्यों नहीं बनाया गया ? हालाँकि गुरुजन बन्धुओं के साथ-साथ पारिवारिक संरक्षक भी दोषी होता है फिर भी गुरुजन पर ही इसका पूरा दायित्त्व होना चाहिये। गुरुजन ही शिष्ट, संयमी, सत्यवादी, धार्मिक एवं अनुशासित समाज की रचना कर सकते हैं।

सामाजिक संरचना की क्षमता-शक्ति गुरुजनवृन्द में ही होती रहती है। यदि वे ईमान और सच्चाई से चाहें तो सामाजिक संरचना निःसंदेह असाध्य तो असाध्य है, दुःसाध्य भी नहीं रह जायेगा अपितु सहज और सरल हो जायेगा । निः सन्देह गुरुजनवृन्द में यह क्षमता-सामर्थ्य है । सरकार को भी गुरुजनवृन्द के व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं का समाधान रूप भरपूर धन-व्यवस्था की व्यवस्था देनी चाहिए जिससे कि गुरुजन बन्धु निश्चिंत होकर विद्यार्थी और समाज को सुधारने-संवारने में जी-जान से लग जांय ।.

जिससे और जिसकी दुनियां, उसी की उपेक्षाः

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! दुनियां वालों को क्या हो गया है ! जिस भगवान् ने दुनियां बनाया-बनवाया, जिस भगवान् ने मनुष्य हेतु सारी प्राकृतिक सम्पदायें प्रदान किये हैं जिससे कि मानव के प्रायः हर आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके; जिस भगवान् ने मानव को चेतनता के साथ-साथ बौद्धिकता दी है, जो भगवान् आत्मा-ब्रम्ह-शक्ति के माध्यम से, देवी-देवताओं के माध्यम से जीवों की देखभाल करता-कराता है; उस भगवान् को जानने, प्राप्त करने तथा उनके प्रति अनन्य भाव से

समर्पित शरणागत होने तथा उसके भक्ति-सेवा और प्रेम के सम्बन्ध में पाठ्यक्रम के रूप में उसी के इस दुनियां में उसी की ही प्राप्ति-ईश्वर की प्राप्ति और अपने आप 'जीव' तक की जानकारी, दर्शन (तीनों की ही पृथक्-पृथक्) प्राप्ति से सम्बन्धित पढ़ाई तक भी नहीं होती है । अर्थात् जनमानस में उस परमदयालु-परमकृपालु, सब का पोषक और सबके संरक्षक की जानकारी तक विद्यार्थीजनों और जनमानसको नहीं दी जा पा रही है । यह कितनी बड़ी अनर्थकारी व्यवस्था है । धन्य है वह परमप्रभु कि ऐसे अनर्थकारी व्यवस्था के बावजूद भी वह इस दुनियां को स्थित रखा है ।

आत्म-शक्ति या ब्रम्ह-शक्ति की भी नहीं:

एक यह भी बात देखें कि कितना आश्चर्य है कि ब्रम्ह-शक्ति आत्म-शक्ति रूप रूप शिव शक्ति के द्वारा ही मनुष्य या सभी प्राणी मात्र को ही प्राण संचालन की यानी श्वाँस-निःश्वाँस की प्राप्ति हो रही है। उस आत्म-शक्ति रूप ब्रम्ह-शक्ति, शिव शक्ति के विषय में भी कहीं भी किसी भी विद्यालय में पढ़ाई-लिखाई तक नहीं हो रही है कि आखिरकार यह श्वाँस-निःश्वाँस रूप प्राण संचार क्या है तथा कैसे-कैसे और कहाँ से आता है और अन्ततः कहाँ को चला जाता है ? यह आत्मा-ईश्वर-ब्रम्ह, शिव क्या है? कैसा है ? दर्शन कैसे करें ? आदि-आदि पढ़ाई से बाहर कर दिया गया --क्यों ?

यहाँ तक कि जीव-रूह-सेल्फ की भी नहीं:

कितने महान आश्चर्य की बात यह भी देखा जाय कि लाखों आदमी दुनियां में रोज जनम और मर रहे हैं फिर भी इस विषय में विद्यालयों में कोई जानकारी नहीं दी जा रही है कि यह जनम और मौत वास्तव में क्या है ? जो मौत किसी को भी नहीं चाहिये, उस मौत से सदा-सर्वदा के लिये बचाव और सुरक्षित रखने वाला 'अमरत्त्व' क्या है और यह किसका होता है ? यदि इस जनम और मौत का सम्बन्ध जीव से है तो यह जीव क्या है ? कहाँ से आता है ? शरीर में कहाँ ठहरता है ? मानव शरीर में किसलिये आता है और शरीर छोड़ने के पश्चात् कहाँ को चला जाता है ? आदि-आदि विषयों पर किसी को न तो जानने की आवश्यकता ही महसूस हो रही है और न तो इस सम्बन्ध में विद्यालयों में पढ़ाई-लिखाई ही हो रही है ।

कितनी विडम्बना पूर्ण बात संसार की है कि जिस जीव के सहारे शरीर का अस्तित्त्व कायम है, जिस जीव से शरीर के सारे हित-नात-सम्बन्ध हैं, जिस जीव के सहारे से ही घर-परिवार नौकरी-चाकरी खेती-बारी है, जिस जीव के सहारे ही दुःख-सुख की सारी अनुभूतियाँ हैं और जिस जीव के सहारे ही शरीर की सारी क्रियायें-उपलब्धियाँ

और भोग-उपभोग हैं और जिस जीव के वगैर शरीर का कोई और कुछ भी नहीं है, उस जीव को भी जानने-देखने-समझने की भी आवश्यकता इस दुनियां वालों को नहीं है।

हाय रे दुनिया ! तेरी यह स्थिति हो गयी कि परमेश्वर एवं ईश्वर और अपने अस्तित्त्व रूप जीव को भी जानने-समझने देखने-परखने और अपने-आप (जीव) को भी पहचानने की आवश्यकता ही नहीं !

आखिरकार ऐसा क्यों ? इस जीव-रूह-सेल्फ एवं आत्मा-ईश्वर-ब्रम्ह-शिव और परमात्मा-परमेश्वर-परमब्रम्ह-खुदा-गॉड-भगवान् की जानकारी-दर्शन से सम्बन्धित विषय-वस्तुओं को पढ़ाई से ही क्यों हटा दिया गया ? विद्यार्थियों और समाज को इससे बंचित क्यों किया रखा गया ? इसे पढ़ाई में क्यों नहीं रखा गया ? क्या इसका जवाब कोई देने का कष्ट करेगा ? क्या यह हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप आदि आदि वाला ही आसुरी समाज और आसुरी पढ़ाई जिसे प्रहलाइ ने नहीं पढ़ा और न ही स्वीकार किया था ही नहीं है ?

अब 'करो कम और भोगो अधिकाधिक' ही अपेक्षित

हाँ, आजकल मात्र सांसारिक विषय वस्तुओं की जानकारी और उसी अनुसार रहन-सहन ही प्रधान हो गया है । अधिक से अधिक सम्पत्ति कैसे अर्जन हो ? कैसे हमारी साधन सम्पन्नता हो ? यही आजकल की शिक्षा और व्यावहारिकता हो गयी है। आज की शिक्षा कर्म प्रधान व सम्पत्ति प्रधान बनकर रह गयी है । 'करो और भोगो' मात्र। आजकल स्थिति बिगड़ कर यहाँ तक पहुँच चुकी है कि 'करो' को भी महत्त्व न देकर 'भोगो ही भोगो' वाली हो गयी है । 'करो कम' और 'भोगो अधिक' की स्थिति को ही लोग मर्यादा और प्रतिष्ठा मानने-समझने लगे हैं। अधिकतर लोग ही ऐसे प्रवृत्ति वाले हो गये हैं कि कुछ करना न पड़े, मगर भोग सबसे अधिक और सबसे अच्छा रहे। यही प्रवृत्ति झूठ, बेइमानी, छल-कपट, चोरी-डकैती, लूट-पाट-अपहरण और सभी भ्रष्टाचारों का मूल रूप प्रशासनिक घूसखोरी को उत्प्रेरित करते हुये व्यावहारिक बनाने के लिये मजबूर करती है । राजनेताओं की भी यही स्थिति हो गयी है जो निःसंदेह अराजकता की स्थिति उत्पन्न करते हुये राजनैतिक विघटन, सामाजिक विघटन, पारिवारिक विघटन और यहाँ तक की शारीरिक होता हुआ विनाश तक पहुँचा देती है। वर्तमान में पहुँचाती जा रही है मगर लोग समझ सम्भल नहीं पा रहे हैं बल्कि और ही गिरते ही जा रहे हैं ।

विद्यातत्त्वम् पद्धति

आज की शिक्षा जीव को शरीर प्रधान से भी नीचे उतार कर शरीर को भी मात्र सम्पत्ति प्रधान बनाते हुये शारीरिक अस्तित्त्व को भी समाप्त करती जा रही है । आज भोग वृत्ति अंतिम सीमा तक पहुँच गई है । लड़के की शादी जल्दी हो जाय, भले ही वह न पढ़े। शादी जरूर की जायेगी, भले ही कष्ट से ही सही, भोग ही भोगते हुये संसार में वंश वृद्धि करता हुआ फँसा ही रहे । अपने जीवोद्धार की बात सोच भी न सके ।

उपसंहारः-

हे भगवान् ! तेरी इस दुनियां को क्या हो गया है कि जो तेरा ही नाम समाप्त करने पर लगी है । कब तक ऐसा होता रहेगा कि तेरी ही दुनियां में तेरा ही अस्तित्त्व मिटाया जाय । परमप्रभु हम क्या कर सकते हैं, सारी सामर्थ्य तो आपकी है । आप जानें और आप का काम जानें । हम तो आप के हैं आपके रहें, यही हमारी आप से बार-बार अनन्त बार प्रार्थना है कि हम सदा तेरे ही रहें । ऐसे भाव-व्यवहार से भरा-पूरा ही शिक्षा-दीक्षा पद्धति होनी चाहिये। ऐसी स्थिति में ही जीवन का पूर्णत्त्व और अमरत्त्व भी सहज ही उपलब्ध हो जाया करता है ।

शिक्षा-दीक्षा तभी पूर्ण-सम्पूर्ण मानी जायेगी जबकि क्रमशः घर-परिवार-सम्पदा से युक्त संसार की; इन्द्रियों और उसके क्रियाओं-भोगों से युक्त शरीर की; अस्तित्त्व और क्रिया-उपलब्धियों से युक्त जीव-रूह-सेल्फ की; अस्तित्त्व और क्रिया-उपलब्धियों से युक्त आत्मा-ईश्वर-ब्रम्ह- नूर-सोल-ज्योतिर्बिन्दु रूप शिव की और मुक्ति-अमरता सहित सम्पूर्ण की सम्पूर्णतया उपलब्धि कराने वाला परमात्मा-परमेश्वर-परमब्रम्ह-खुदा- गॉड-भगवान् की प्राप्ति-उपलब्धि कराने की बात-चीत सहित साक्षात् दर्शन कराने वाली क्रमशः जानकारियाँ--- शिक्षा (Education); स्वाध्याय (Self Realization); योग-साधना अथवा अध्यात्म (Spritualization) और तत्त्वज्ञान रूप भगवद्ज्ञान रूप सत्यज्ञान रूप सम्पूर्णज्ञान (True, Supreme and Perfect KNOWLEDGE) सम्पूर्ण की उपलब्धि कराने वाली हो-- उपर्युक्त प्रकार से ही हो। पुनः दोहरा दूँ कि शिक्षा-दीक्षा सम्पूर्ण की सम्पूर्णतया जानकारी कराने वाली होनी-रहनी चाहिये तभी ही दोष मुक्त सत्य प्रधान सुदृढ़-सम्पन्न अमन-चैन का भरा-पूरा समाज कायम हो-रह सकता है । यही सत्य है और इसी को ही पुर्णतः व्यावहारिक बनाने होने-रहने की अनिवार्यतः आवश्यकता है। इसे हर किसी को अपनाना ही चाहिये-- अपनाना ही पड़ेगा--- पड़ेगा ही । क्या ही अच्छा होता कि सहज ही इसे सोच-समझ देख-परख कर ही सही मगर सरकार द्वारा अपना लिया जाता और

समाज पर इसे प्रभावी तरीके से हर किसी के लिए अनिवार्य कर-करा दिया जाता फिर तो यही दुनियां स्वर्ग से भी श्रेष्ठतर दिखायी देने लगती । देव वर्ग भी यहाँ आने के लिए तरसने लगते। ऐसा करने में सरकार को परेशानी क्यों ? जीव-रूह-सेल्फ एवं आत्मा- ईश्वर-ब्रम्ह-नूर-सोल-स्पिरिट-ज्योर्तिमय शिव और परमात्मा- परमेश्वर- परमब्रम्ह-खुदा-गॉड-भगवान् से सम्बन्धित विषय क्रमश स्वाध्याय एवं योग-साधना-अध्यात्म और तत्त्वज्ञान रूप भगवद्ज्ञान को पाठ्यक्रम में क्यों नही रखा जा रहा है ? विद्यार्थीयों और समाज को इन जानकारीयों और दर्शन प्राप्ति से बंचित क्यों रखा जा रहा है ? आखिर में ऐसा क्यों ! क्यों !! क्यों !!!

सत्यं बद् ! ॐ तत्सत् धर्मं चर !!

'श्रम एव जयते ! 'भगवत् कृपा हि केवलम्--**Only the Mercy of GOD**' सत्यमेव विजयते !!

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः -- ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !

असत्य नहीं, सत्य की ओर चलें (कर्म का अभीष्ट)!

मोह-अन्धकार नहीं, दिव्य-ज्योति की ओर चलें (योग या अध्यात्म का अभीष्ट) !!

मृत्यु नहीं, अमरता की ओर चलें (ज्ञान का अभीष्ट) !!!

विद्यार्थियों से

सद्भावी सत्यान्वेषी विद्यार्थीगण बन्धुओं ! विद्यार्थी बन्धुओं से मैं निवेदन पूर्वक यही कहूँगा कि यह समय आप लोगों का विद्या ग्रहण करने का है । विद्यार्थी- जीवन जीवन का सुनहरा समय होता है -- ऐसा कहा जाता है । बन्धुओं यह कहावत क्यों कही गई ? इसका कारण यह है कि यही आत्मोत्कर्ष अर्थात् समाज में अपने को ऊँचा उठाने और मञ्जिल को पाने का समय है । यही समय अपने जीवन के पतन या उत्थान में से किसी एक को चुनने का होता है । यही समय शिष्ट, संयमी, अनुशासित एवं सुदृढ़ समाज को बर्बाद करने या उसे आबाद करने में से किसी एक को चुनने का होता है । अर्थात् चाहे तो आप अपने जीवन को अशिष्ट, असंयमी, दुराचारी और अनुशासन हीन बनाते हुये, सामाजिक विघटन एवं सामाजिक विनाश में सहयोग कर

सकते हैं अथवा अपने जीवन को शिष्ट, संयमी, सदाचारी और अनुशासित बना हुये सुदृढ़ समाज के रचना करने में सहयोग दे सकते हैं। इसी बात को ध्यान में रख हुये ही विद्यार्थियों (बालकों) को समाज का भावी कर्णधार कहा गया है । यही सम है आपको अपने को समाज का कर्णधार बनाने का। इसीलिये इसे जीवन का सुनहर समय कहा गया है ।

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! जीवन को सार्थक एवं सफल बनाने हेतु विद्यातत्त्व पद्धति एक सर्वोत्तम पद्धति है, जिसके वगैर मानव मानवीय जीवन को जान-समझ ही नहीं सकता है और जीवन की जानकारी और समझदारी ही जब नहीं रहेगी तो फिर जीवन का आनन्द ही क्या अनुभूत होगा ? और जब जीवन के सच्चे आनन्द की अनुभूति और मुक्ति-अमरता का साक्षात् बोध ही नहीं प्राप्त होगा तो फिर जीवन की सार्थकता और सफलता क्या रही ? और जब जीवन का आनन्द, सार्थकता और सफलता ही न रही तब फिर मानवीय जीवन की उपलब्धि ही क्या रही ? अर्थात् कुछ नहीं । तब तो इससे बेहतर पशु जीवन ही माना जायेगा; क्योंकि पशु तो पशु ही होता है, परन्तु मानव जब पशुवत् होगा तो इसकी और ही निम्नतर स्थिति होगी क्योंकि सृष्टि के अन्तर्गत सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोच्च मान्यता वाली शरीर जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ होती है, जैसा कि शास्त्रों में महापुरुषों और अवतारियों द्वारा भी कहा गया है, को पाने पर भी यानी पाकर भी आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन में ही गवाँ दिया । यह वैसा ही है कि एक कंगाल (भिखारी) को कोई अमूल्य रतन पारसमणि या चिन्तामणि जैसी कोई रतन मिले और वह नाजानकारी एवं नासमझदारी वश मिट्टी-पत्थर समझ कर फेंक दिया हो । ठीक वैसे ही आप अपने देव दुर्लभ मानव जीवन को मोक्ष रहित रखकर बर्बाद कर दे रहे हैं। चेतिए! सम्भलिए ! अपनाइए ! अपने मानवीय जीवन को सफल-सार्थक-धन्य-धन्य बनाइए ।

बन्धुओं ! विद्या (यहाँ पर 'विद्या' का अर्थ अविद्या यानी सांसारिक शिक्षा और विद्या यानी योग-अध्यात्म वाला नहीं अपितु 'विद्यातत्त्वम्'-- तत्त्वज्ञान वाला समझना चाहिए ।) स्वर्णिम जीवन हेतु भूत, वर्तमान एवं भविष्य को जानने-समझने के लिए तथा पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व का बनने और होने के लिये स्वच्छ एवं सुस्पष्ट आँख है जिसके माध्यम से आप प्राचीन से भी प्राचीनतर व्यक्तियों-वस्तुओं, शक्ति एवं सत्ता के 'अस्तित्त्व' मर्यादा और महत्त्व को अच्छी प्रकार जान-समझ और देखते हुए पहचान भी करते-कराते हुए अपने जीवन को भी वैसा ही बना व उठा सकते हैं। इसमें जीव-रूह-सेल्फ एवं आत्मा(ईश्वर)नूर-सोल-ज्योर्तिमयशिव और परमात्मा

विद्यातत्त्वम् पद्धति

(परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान्) तीनों ही और साथ ही साथ वेद, उपनिषद, रामायण, पुराण, बाइबिल गीता वाला ही विराट पुरुष भी बात-चीत सहित साक्षात् दिखाई देते हैं।

विद्या ही है कि जिससे मनुष्य को शरीर से पृथक् एवं युक्त रहते हुए शरीर-जीव-आत्मा और परमात्मा तक चारों को ही जना-दिखा एवं अनुभव तथा पृथक्-पृथक् जानकारी कराते हुए मुक्ति और अमरता, परमशान्ति, परम आनन्द तथा परमपद प्राप्ति का भी, शरीर रहते ही बोध-अद्वैतत्त्व बोध और विराट पुरुष का साक्षात् दर्शन सहित उन्हीं में एकत्त्वबोध रूप मुक्ति-अमरता का साक्षात् बोध भी हो जाता है। जिससे सब प्रकार के उपलब्धियों को उपलब्ध करता हुआ भी भगवत् कृपा से मनुष्य सुगमता पूर्वक मानवीय जीवन के उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है। यहाँ पर विद्या से अर्थ 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' से है। जानकारी तो कोई भी अच्छी ही होती है फिर तो विद्यातत्त्वम् पद्धति को ही क्यों न प्राप्त किया जाय ? जो सम्पूर्ण की सम्पूर्णतया जानकारी-दर्शन और प्राप्ति-उपलब्धि वाला होता है और है भी।

विद्यार्थी बन्धुओं ! 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' की महत्ता से तो चारो तरफ शास्त्र-सद्ग्रन्थ एवं किताबें भरी पड़ी हैं फिर मेरे समझ से सब मिलकर भी इस पद्धति के वास्तविक महत्त्व की व्याख्या नहीं कर सकते हैं, क्योंकि अनुभव एवं बोधगम्य प्रायौगिक बातों को वास्तव में अनुभव एवं बोध वाले प्रायौगिकता से ही जाना-समझा-बूझा देखा-परखा जा सकता है, न कि मात्र कह-सुनकर अथवा लिख-पढ़कर।

'विद्यातत्त्वम्' ही एक ऐसा धन है जिसको जितना ही खर्च कीजिए, यह उतना ही बढ़ता जाता है। दुनिया में इसके अतिरिक्त और कोई चीज (विषय-वस्तु) नहीं हैं जो खर्च करने से बढ़ती हो। हर विषय-वस्तु ही खर्च करने पर घटती तथा संचय करने पर बढ़ती है ! जबकि विद्या जो है, ठीक इसके उल्टा यानी बचत करने पर घटती और खर्च करते-रहने पर बढ़ती रहती है। इतना ही नहीं, राजा अपने देश-राज्य का ही राजा होते हैं तथा मर्यादा पाते-देते हैं परन्तु विद्यावान विद्वान जो है, वहीं वह राजाओं का भी राजा, बादशाहों का भी बादशाह यानी सभी का ही सिरमौर (सिर का मुकुट) होता है। विद्यावान विद्वान जो है, हर देश-काल-समाज में ही आदर, प्रतिष्ठा एवं महत्त्वपूर्ण स्थान पाता है और आप उसी विद्या के अभिलाषी, उसी विद्या के इच्छुक, उसी विद्या के जिज्ञासु हैं। इन बातों से आप बन्धुओं को स्वतः ही मनन-चिन्तन द्वारा सोचते-विचारते हुए जानते-समझते हुए अपने आप निर्णय लेना होगा कि आप कितने महान् वस्तु या पद्धति के अभिलाषी या जिज्ञासु हैं।

यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' आपको कितना महान बना सकती है! आपको कितनी

ऊँचाई तक उठा सकती है ! आपको कितने बड़े आनन्द एवं मर्यादा को उपलब्ध कर-करा सकती है ! यह आप स्वयं सोचें और जानें-समझें, देंखे-परखें तथा साथ ही साथ अनुभूति और साक्षात् बोध को प्राप्त होता हुआ जीवन के अन्तिम मञ्जिल को प्राप्त कर कृत्-कृत्य हो जायें।

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! विद्यारूपी जिस सम्पत्ति के आप अभिलाषी या जिज्ञासु हैं, वह सम्पत्ति न तो चोर चुरा सकता है, न डकैत लूट सकता है । न भाई-बन्धु बाँट सकता है और न राजा जप्त (हरण) कर सकता है । न आग जला सकती है और न पानी डुबा सकती है । साथ ही साथ जितने ही अधिक इसको खर्च कीजिएगा, उतने ही अधिक मात्रा में यह बढ़ती जायेगी । समाप्ति तो इसमें है ही नहीं। मनमाना नहीं बल्कि विद्यातत्त्वम् को विद्यातत्त्वम् के विधि के अनुसार अपनाया जाय और सम्पूर्ण को सम्पूर्णतया पाया जाये । यही मेरी भी भगवान् के तरफ से आप के प्रति शुभ कामनाऐं हैं ।

अब बताइये आप बन्धुगण ! आप लोग ऐसी बात को ग्रहण करने वाले हैं तो आप को कितनी सावधानी, कितनी गम्भीरता, कितनी स्थिरता, कितना धैर्य, कितने साहस, कितने परिश्रम, कितने त्याग, कितनी शिष्टता, कितने संयम, कितने अनुशासन एवं कितनी विनम्रता तथा मधुरता और सुपात्रता की आवश्यकता इसके लिए चाहिए; यह तो आप स्वयं सोच सकते हैं। इस पर हमें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी आप यदि नहीं मानेंगे तो हमें कुछ कहना ही होगा। हम तो इस पर मात्र इतना ही कहना चाहेंगे कि जितनी उच्च से उच्चतर, श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर, उत्तम से उत्तमतर बात या वस्तु की चाहना हो, उसके लिए उसी स्तर की श्रद्धा (लगन), परिश्रम, दूरदर्शिता, स्थिरता, गम्भीरता, धैर्य, साहस, शिष्टता, संयम, अनुशासन, विनम्रता, मधुरता, त्याग-ग्राह्यता एवं सावधानी आदि की भी आवश्यकता होगी, तभी जाकर उसकी सुपात्रता होगी और अधिकाधिक उपलब्धियाँ उपलब्ध होंगी ।

विद्यार्थियों के लिए सबसे घृणित और त्याज्य कोई चीज है तो वह है सांसारिक चेष्टायें-तृष्णा अर्थात् सांसारिक भोगोपभोग की आकांक्षा और साथ ही अनिवार्यतः ग्रहणीय कोई चीज है तो वह है 'सत्यं बद, धर्मं चर' (सत्य बोलें और धर्म पर रहें-चलें !) । यह ही एकमेव एक ऐसा मन्त्र है जो सहज ही आसानी से पतित से भी पतित--पापी से भी पापी को पुरुष एवं महापुरुष और सत्पुरुष तक बना-बनवा देता है । केवल आवश्यकता है इसे ईमान और सच्चाई से संयम पूर्वक अपनाने की।

विद्यार्थियों हेतु अनिवार्यतः ग्रहणीय बातें

१. सत्यं वद्:--सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! वास्तव में आपको यदि विद्यार्थी शब्द को अपने जीवन में सार्थक-सफल बनाना है तो यह अनिवार्यतः आवश्यक होगा कि 'सत्यं बद्, धर्मं चर' (सत्य बोलें और धर्म पर रहें-चलें !) को ग्रहण करना तथा अपने जीवन को उसमें जोड़-लगा देना होगा । अपने जीवन के व्यवहार में इस सूत्र को ग्रहण करना तत्पश्चात् अपने जीवन को हर प्रकार से उसी में जोड़-रखकर ही ले चलना होगा। शिष्ट, संयमी, अनुशासित एवं विनयशील बनना होगा। ब्रम्हचारी एवं सदाचारी की वृत्ति अपनानी होगी। सत्य को राजा हरिश्चन्द्र की तरह तथा सत्यधर्म को धर्मराज युधिष्ठिर की तरह अपने पाठ को पढ़ना-समझना और याद रखना होगा। पठित बातों को तोता रटन्त की तरह नहीं, बल्कि अपने पाठों को जानते-समझते और व्यावहारिक बनाते हुए याद करना-रखना चाहिये। 'याद' का अर्थ मात्र रटने से नहीं लगाना चाहिये अपितु जानने-समझने और व्यावहारिक बनाने से लगाना चाहिये।

'याद' का अर्थ धर्मराज युधिष्ठिर की तरह ही लेना चाहिये अर्थात् 'याद' व्यावहारिक होना चाहिये । कहने का तात्पर्य यह है कि 'सत्यं बद्' दो शब्द हैं। इन दोनों शब्दों को 'याद' करने का अर्थ मात्र इसी से नहीं है कि कोई पूछे कि आपको अपना पाठ (अर्थात् दोनों शब्द) 'याद' हैं तो झट से सुना दें कि हाँ 'सत्यं बद्'! परन्तु वास्तव में यह 'याद' नहीं हुआ। 'याद' तो इसे तब माना जायेगा जब व्यवहार में आप सदा सत्य ही बोलें । असत्य या मिथ्या या झूठ कदापि न बोलें! यदि असत्य बोलने की बात भीतर या बाहर से प्रेरित होकर निकलनी चाहती हो तो वाणी पर उस असत्य को आने से पूर्व ही 'सत्यं बद्' पाठ स्मरण में आ जाय और वह असत्य बात जिह्वा-पर न आने पाये, जिह्वापर आने के पहले ही वह समाप्त हो जाय, तब समझा जाय कि हमें 'सत्यं बद्' 'याद' हो गया । यदि कभी भी असत्य बात वाणी से निकली, चाहे वह जिस विषय-वस्तु या स्थिति-परिस्थिति में हो, तो वहाँ पर मानना ही पड़ेगा कि आपको अपना पाठ याद नहीं है अथवा भूल गया है । ऐसा हो सकता है कि आपके दिल व दिमाग में यह बात आवे कि यदि यहाँ पर हम सत्य बोलते हैं तो किसी विकट संकट में फँस जायेंगे, इसलिए थोड़ा सा यहाँ असत्य ही एक बार बोल दिया तो क्या हो गया । सत्य वाली बात तो याद है ही। तो बन्धुओ ! यहाँ पर एक बात गौर करने यानी ध्यान देने की है कि क्या किसी भी संकट से, चाहे वह विकट से विकट ही क्यों न हो, सत्य रक्षा नहीं करेगा तो क्या असत्य करेगा ? नहीं, कदापि नहीं ! रक्षा भी

होगा तो सत्य से ही होगा, असत्य से नहीं । इस प्रकार याद की सार्थकता हर परिस्थिति में ही अपने पाठ को तोता रटन्त में नहीं अपितु व्यावहारिक बनाये जाने में है।

२. धर्मं चरः--सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! 'धर्मं चर' से तात्पर्य झोंटा-दाढ़ी लम्बा-लम्बा बढ़ाकर, तिलक-चन्दन कर-कराकर, लंगोटी या मृगछाला आदि पहनकर, कमण्डल आदि लेकर घर-घर या गाँव-गाँव घूम-घूमकर पेट-पालन अथवा किसी मठ का महन्थ बनकर देश-काल से विरक्त होने के दिखावे से नहीं है। ये सब धर्म नाम बाह्य रूप मात्र हैं, धर्म की वास्तविक स्थिति नहीं क्योंकि वास्तव में धर्म शरीर प्रधान नहीं, अपितु भाव और भगवान् (मोक्ष) प्रधान होता है । शरीर प्रधान तो कर्म और भोग होता है । अपने अस्तित्व और कर्त्तव्य को सही-सही स्पष्टत जानते और देखते हुए ।

वास्तव में धर्म का यथार्थ रूप तो यह है कि अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन करते हुये अपने कर्म एवं कर्म फल में बिल्कुल ही निष्कामता रहे अर्थात् कर्म और कर्म फल सभी प्रकार से भगवद् समर्पित-शरणागत रूप में होवे-रहे । अपने सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को भगवत् प्रदत्त जान-समझ कर ही करें। समस्त भोगने योग्य भोगों को भगवत् प्रदत्त प्रसाद रूप में ही ग्रहण करें। बराबर संत समागम करें तथा जहाँ कहीं भी सत्संग की बातें सुनें, उसमें भाग लेवें, ताकि बुद्धि एवं वृत्ति शुद्ध बनी रहे क्योंकि सत्संग से प्रसुप्त विवेक भी जग उठता है-- विवेक जाग्रत हो जाता है ।

ममता-मोह-आसक्ति ही धर्म की बैरी (शत्रु) है, जिसको धर्म कभी भी देखना तो देखना है, अपने जन के साथ सुनना भी पसन्द नहीं करता है । यह सब बात आप बन्धुओं को अति कठिन और दुःसाध्य जरूर भासती होगी परन्तु वास्तव में यह कठिन और दुःसाध्य बात है नहीं । हाँ, तब तक जरूर कठिन एवं दुःसाध्य आभासित होगी, जब तक कि आप इसे (धर्म को) निष्कपटतापूर्वक श्रद्धा एवं विश्वास के साथ ग्रहण करते हुए चलने नहीं लगते हैं। जैसे ही श्रद्धा एवं विश्वास के साथ निष्कपटतापूर्वक आप धर्म (भगवद् समर्पित-शरणागत रूप में होना-रहना-चलना) पर चलना प्रारम्भ करेंगे तो स्पष्टतः जानने में तथा प्रत्यक्षतः देखने में आयेगा कि इस पूरी सृष्टि में ही 'इतना सुगम न तो कोई मार्ग है और न तो कोई इतना उच्च और परमानन्दमय परमपद।'

सारी सृष्टि में ही इस रहन-सहन के समान दूसरी कोई भी उपलब्धि जानने-देखने को नहीं मिलेगी, जो उपलब्धि इसमें, धर्म में उपलब्ध होती हुई दिखलाई देती है। इसमें निष्कपटता पूर्वक श्रद्धा एवं विश्वास के साथ चलने पर कष्ट एवं परेशानी नाम की कोई चीज आपको नहीं महशूस हो सकती है । हाँ हो सकता है कि देखने वालों को

ऐसा लगता हो कि यह बेचारा बड़ा कष्ट में है। इसे बड़ी परेशानी है; परन्तु वास्तविकता बिल्कुल ही इसके प्रतिकूल है क्योंकि आप अपने को वास्तव में 'सत्य लीला' रूपी ड्रामा का एक पात्र ही पायेंगे। जैसे रामलीला और कृष्णलीला वैसे ही इस बार सत्य लीला हो रहा है

धर्म में 'मेरा' को हीं विलय करते हुये ही रहना-चलना पड़ता है। सद्गुरु अपने 'तत्त्वज्ञान' द्वारा 'मैं' का विलय करता-कराता है और हमको-आपको 'मेरा' का विलय श्रद्धा भाव से समर्पण-शरणागत के रूप में करना पड़ता है। वास्तव में देखा जाय तो यह सच्चिदानन्द अर्थात् परम आनन्द की बात है, क्योंकि दुनियां में चोरी-डकैती, लूट-अपहरण-हत्या, अत्याचार-दुराचार, जोर-जुल्म और भ्रष्टाचार आदि सारी गड़बड़ियाँ 'मैं' और 'मेरा' के चलते ही हो रही हैं। सांसारिक बन्धन एवं आवागमन भी 'मैं' और 'मेरा' के चलते ही हो रही हैं। सारा सम्बन्ध-पद आदि-आदि बन्धन कारक पतन और विनाश भी इस 'मैं' और 'मेरा' के चलते ही हैं। यही कारण है कि 'धर्म' सभी रोगों में मात्र एक ही दवा देकर सभी भव-रोगों से ही मुक्त करता है और वह दवा है--'मैं' और 'मेरा' का भगवद् विधान में विलय रूप में करना-रहना-चलना और तत्त्वज्ञान के द्वारा भगवत्प्राप्ति और भगवान् में ही अपने आप जीवात्मा को भी देखते हुए सम्पूर्ण-भगवन्मय देखता हुआ रहना चलना। जो शरीर अपनी दिखाई दे रही थी वह ही अब भगवान् की दिखाई दे रही है और उन्हीं के अनुसार रह-चल भी रही है। यही मानवीय जीव की मुक्ति और अमरता का साक्षात् बोध रूप मंजिल की प्राप्ति प्राप्त करना होता है। इसे ही 'धर्म चर' कहते है।

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! 'सत्यं बद्, धर्मं चर' (सत्य बोलें और धर्म पर रहें-चलें !) तो आप विद्यार्थी बन्धुओं के लिये व्यावहारिक पहलू है और निश्चित ही होना भी चाहिये। परन्तु इस व्यावहारिकता को सुगमतापूर्वक शान्ति और आनन्द के साथ पाने-अपनाने हेतु और जीवन के लक्ष्य रूप मोक्ष रूप सफलता को हासिल करने हेतु भी इन अग्रलिखित बातों को ग्रहण करना अनिवार्यतः आवश्यकता के अन्तर्गत ही आता हैं। वे बाते हैं-- 'ईमान-सच्चाई-संयम और सेवा।

इन बातों को विद्यार्थी जितनी ही अधिक मात्रा में श्रद्धा और निष्ठापूर्वक अपने व्यवहार में लागू करेगा, उसमें उतना ही शान्ति, सुशीलता, कर्त्तव्यपरायणता, मर्यादा आदि महत्त्व को बढ़ाने वाले गुण-महत्ता स्वाभाविक आते रहेंगे, जो विद्यार्थी को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने में काफी मात्रा में सहयोग प्रदान करते हैं।

दोषों से बचना-बचाये रखना अनिवार्य

वास्तव में विद्यार्थी जो ईमान-सच्चाई-संयम-सेवा भाव से युक्त होते हैं, वे सर्वत्र ही आदर-सम्मान पाते हैं । उन्हें सभी प्राणी ही आदर के भाव से देखते और उनका गुणगान गाने लगते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी का भाव और साहस और भी बढ़ने लगता है । इससे वह और ही श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ परिश्रम करने लगता है। यह स्वाभाविक ही है कि दोष दोष को आकर्षित करता है एवं दोष-दोष की ओर ही बढ़ता रहता है और गुण-गुण को आकर्षित करता है एवं गुण-गुण ही की ओर ही बढ़ता रहता है। यही कारण है कि दोषी दिन-प्रतिदिन दोषी और गुणी दिन-प्रतिदिन गुणवान बनता जाता है। यह भी स्वाभाविक ही है कि मर्यादा प्रायः सभी को अच्छी लगती है और प्रायः सभी प्राणी ही मर्यादा पाने की इच्छा और कोशिश करते हैं । ठीक उसी प्रकार दोष और गुण भी मर्यादा हेतु ही दोषी और गुणी की ओर क्रमशः (दोष दोषी की ओर और गुण गुणवान की ओर) जाने पर ही मर्यादित होते हैं। दोष यदि गुणी के पास जाय तो वह गुणी (गुणवान) घृणा एवं त्याग के द्वारा ही उसको वापस कर-करा देता है तथा गुण यदि दोषी के पास जाता है तो वह भी दोष से युक्त होकर बदनाम होने लगता है । इसलिए गुण दोषी की ओर जाना ही नहीं चाहता है और दोष गुणवान द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है।

आप पाठक बन्धुओं को इन सभी बातों को अपनी यादगारी में सदा ही रखना चाहिये ताकि आप में छोटे से छोटा दोष भी एक भी न आने पावे। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि जब पहले पहले आने वाले एक छोटे से दोष को आप नहीं रोक या हटा पायेंगे तो जब वह छोटे-छोटे जो एक दूसरे के आकर्षण से आते और बढ़ते जायेंगे, तब आप उसे रोक न पायेंगे। कदापि नहीं रोक पायेंगे और धीरे-धीरे दोष छोटे से बड़ा रूप लेकर आपको ही दोषी बनाकर आप पर हाबी (प्रबल) हो जायेंगे जिसके कारण आप समाज में उसी दोषी के समान अमर्यादित एवं घृणित हो जायेंगे। इसलिए काफी सावधानी पूर्वक अपने को दोष से बचाये रखने का प्रयत्न करना चाहिये तथा जानकारी या नाजानकारी वश यदि कोई दोष अपने अन्दर आ ही गया हो तो क्रमशः उसे भी जिस तरह आया है, उसी तरह उसे पुनः लौटा ही देना चाहिये-- हटा देना चाहिये । नहीं तो वह दूसरे दोषों को बुलायेगा ही । सावधानी रखना अपेक्षित है। गुण-ग्राही बनें। सदा-सदा ही गुण-ग्राही बनें और बने रहने का प्रयत्न करें । प्रारम्भ में ही दोष को अपने जीवन में किसी भी स्थिति-परीस्थिति में आने ही न दें । इसे जीवन कल्याणकर मन्त्र समझें और अनिवार्यतः इसे अपने जीवन में अपनाएँ ही ।

सावधान ! विद्यार्थियों सावधान!!

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! आप बन्धुओं को सावधान करते हुए मैं आपसे यह अवश्य बता देना चाहूँगा कि विद्यार्थी जीवन जीवन का स्वर्णिम समय तो है ही, साथ ही साथ यह भी याद रखने योग्य बात है कि जीवन का सबसे खतरनाक मोड़ भी यही है । चाहे दोष-दुर्गुण अपनाकर गलत मोड़ से गुजरते हुये दोषी- अपराधियों जैसा अपमानित, पतन और विनाश के तरफ जाया जाय अथवा सद्गुण-सद्व्यवहार अपनाकर सम्मानित-मर्यादित- उत्थान परक जीवन के सही मोड़ को अपनाया जाय, क्योंकि विद्यार्थी कुम्हार के चाक पर रखे हुए गीली मिट्टी के समान होता है। जिस प्रकार मिट्टी जितना ही मुलायम एवं साफ सुथरी (अकटी-रोड़ी रहित) होगी, बर्तन उतना ही बढ़िया होगा। ठीक उसी प्रकार विद्यार्थी जितना ही शिष्ट, संयमी अनुशासित, विनम्र एवं दोष-दुर्गुण रहित होगा, उसकी पात्रता भी उतनी ही अच्छी होगी । विद्यार्थी को कभी भी सुखापेक्षी नहीं बनना चाहिये, क्योंकि सुख की चाहत विद्यार्थी को दोष-दुर्गुण के तरफ बहा ले जाता है और विद्या पीछे छूट जाती है। विद्या की वास्तविक जानकारी सुखापेक्षी के दिल-दिमाग में बैठ ही नहीं सकती है । इस प्रकार विद्यार्थी को कदापि सुख की अभिलाषा यानी सुख की अपेक्षा नहीं करनी या रखनी चाहिये। कहा भी गया है कि--

सुखार्थिनः त्यजेत विद्या, विद्यार्थिनः त्यजेत सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतो सुखम् ।।

अर्थ :- सुख चाहने वाले को विद्या त्याग देना चाहिये, विद्या चाहने वाले को सुख त्याग देना चाहिये । सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ और विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ ?

संसार के किसी भी प्राणी को दो जीव नहीं मिला है। प्रत्येक को एक ही जीव मिला हुआ है । तो जरा विद्यार्थी बन्धुगण ! आप भी सोचें तो कि जब जीव एक ही है, तो एक साथ उसे दो तरफ कैसे लगाया जा सकता है अर्थात् सुख की चाह और विद्या की चाह (विद्या का अर्जन) दोनों एक साथ कदापि नहीं टिक (स्थिर रह) सकता है । दोनों में से एक को छोड़ना ही होगा । अब यहाँ पर मुख्य प्रश्न यह सामने उत्पन्न हो रहा है कि तब इन दोनों में किसे अपनाया जाय और किसे छोड़ा जाय ? पाठक बन्धुओं ! यहाँ पर थोड़ा रुक कर विचार करें कि उत्तर क्या हो ? निःसंदेह उत्तर होगा-- 'विद्या का अर्जन' और यही ग्रहणीय भी है ।

सुख और विद्या के यथार्थ स्थिति को जानें-देखें-अपनावें !

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! थोड़े देर के लिए मान लिया जाय कि सुख और शान्ति के लिए ही तो दुनियां में सब कुछ किया जाता है और यदि बिना विद्या के ही वह सुख मिल जाय तो फिर विद्या के लिए इतनी शिष्टता, संयम, अनुशासन, विनम्रता, सदाचारिता, सत्यवादिता, अति कठिन परिश्रम आदि-आदि नाना तरह के कष्ट और परेशानियों को सिर पर लेकर रहने-चलने की क्या जरूरत ? ईमान-सच्चाई-संयम-सेवा की क्या जरूरत ? मगर एक बात गौर कर लेना है कि सुख की खोज और पूर्ति करने में निःसंदेह विद्या रुक जाती है। विद्या का रुकना ही भविष्य में कमी-अभाव नाना तरह की परेशानी आदि कष्टकर जीवन का मिलना-होना स्वाभाविक रहता है। कमी-अभाव नाना तरह की परेशानियों आदि-आदि से बचने और व्यवस्थित-सुरक्षित रहने, मुक्ति-अमरता रूप मोक्ष रूप मञ्जिल के लिये ही तो विद्या (तत्त्वज्ञान) है। कहा भी गया है कि "सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वही है जिससे मुक्ति मिले। विद्या चाहने वाले को प्रारम्भ में थोड़ा परेशानी दुःख-कष्ट अवश्य होता है, मगर यह भी तो है कि इसे पार कर लेने पर व्यवस्था- सुरक्षा के साथ सुखपूर्वक आसानी का जीवन और मुक्ति-अमरता भी उपलब्ध हो जाता है-- उपलब्ध हो ही जाता है अर्थात् प्रारम्भिक सुख में भविष्य का घोर दुःख-कष्ट और नारकीय आवागमन होता-रहता है और विद्या अर्जन-ज्ञान अर्जन (तत्त्वज्ञान प्राप्ति) में होने वाले दुःख-कष्ट में भविष्य का सुख-समृद्धि, सम्मान-मर्यादा, विकास-उत्थान, 'मुक्ति-अमरता रूप मोक्ष' आदि-आदि सभी समाहित रहता है।

अतः विद्या अर्जन के अन्तर्गत बाधक रूप में आने वाले प्रारम्भिक सुख-साधन को त्याग देना चाहिये। त्याग ही देना चाहिये क्योंकि ऐसा त्याग ही ग्रहण अथवा प्राप्ति का पूर्व रूप होता है अर्थात् सुखी-समृद्ध खुशहाल जीवन और 'मुक्ति-अमरता रूप मोक्ष' हेतु विद्यातत्त्वम् पद्धति यानी तत्त्वज्ञान एक अनिवार्य विधान है जिसके वगैर मुक्ति-अमरता बिल्कुल ही दुर्लभ है।

बन्धुओं ! यहाँ पर आप सभी बन्धुओं को दूरदर्शितापूर्वक देखना होगा कि क्या किसी व्यक्ति को विद्यातत्त्वम् पद्धति के वगैर सही मायने में सुख शान्ति मिल सकती है ? मानव जीवन का मंजिल रूप मुक्ति-अमरता की प्राप्ति हो सकती है ? मानव

जीवन सार्थक सफल हो सकता है ? नहीं !नहीं !! कदापि नहीं हो सकता है । तो इस बात पर दस-पाँच मिनट मौन होकर मनन-चिन्तन करके तब निर्णय लिया जाय तो भगवत् कृपा एवं भगवत् प्रेरणा से अवश्य ही आपके दिल व दिमाग में यह बात नाचने लगेगी कि मूढ़ता और अज्ञानता सुख-समृद्धि तथा शान्ति एवं आनन्द और मुक्ति-अमरता का रूप या स्थान कदापि नहीं ले सकती है । जब भी किसी विषय-वस्तु अथवा शक्ति-सत्ता से हमें शान्ति और आनन्द की उपलब्धि करनी है तो इसके लिये सर्वप्रथम यह जरूरी बात होगी कि उस विषय-वस्तु अथवा शक्ति-सत्ता की यथार्थतः जानकारी प्राप्त की जाय क्योंकि शांन्ति और आनन्द की अनुभूति भी तो जानकारी और समझ के अनुसार ही तो होगी। तब तो पुनः यहाँ विद्या की आवश्यकता हो ही गयी यानी किसी भी विषय-वस्तु एवं शक्ति-सत्ता की यथार्थतः जानकारी और समझने और मुक्ति-अमरता के बोध की प्रक्रिया ही तो विद्या (विद्यातत्त्वम् अथवा तत्त्वज्ञान) है । आखिरकार विद्या और है क्या ? यहाँ पर अन्ततः यह पाया गया कि मूढ़ता एवं अज्ञानता सुख-समृद्धि और शान्ति-आनन्द को ही नहीं जान-समझ सकता, मुक्ति-अमरता को तो बिल्कुल ही नहीं जान-समझ सकता है ।

विद्या ग्रहण के काल में यानि विद्या अर्जन के समय सुख की चाहत और प्राप्ति में जो सुख प्राप्त होता है, वास्तव में वह सुख-शांति तो है नहीं, वह तो सुखाभास मात्र होता है । उसे मन की अस्थायी उमंग या उद्दण्डता अथवा मन मंत यानी मन की उच्छृंखलता ही मानी जा सकती है । जिसमें अपना भविष्य न दिखाई दे, जो स्थायित्त्व न प्रदान करे, जिससे दूरदर्शिता की प्राप्ति न हो, जो भूत के पौराणिक और ऐतिहासिक गाथाओं को न जान-समझ सकता हो, जो भविष्य के लिए अपने पीछे कोई उत्कृष्टतर गाथा न छोड़ता हो, जो वर्तमान में अपने जीवन को न सुधरता-सवाँरता हो, क्या वह भी सुख-शान्ति-आनन्द ही है ? वह सुख- समृद्धि- शान्ति-आनन्द नहीं अपितु मात्र सुखाभास ही है जैसे कि मूढ़-नासमझ शराबी शराब के नशे को ही अपना सुख-शान्ति-आनन्द मान बैठता है, यह भी ठीक वैसा ही होता है। इससे आगे और क्रमशः ऊपर का चिदानन्द, ब्रम्हानन्द और सच्चिदानन्द, परमशान्ति, परम आनन्द तथा मुक्ति और अमरता की तो बात ही कहाँ ?

विद्याविहीन जीवन पशुवत् स्थिति

विद्याविहीन जीवन तो निरा ही एक पशुवत् से भी बद्तर जीवन है क्योंकि दिनभर जुटाना शाम-सुबह खाना, सुबह-शाम पखाना पुनः दिनभर जुटाना, शाम-सुबह

खाना, सुबह शाम पखाना यही जुटाना-खाना-पखाना, पुनः जुटाना-खाना- पखाना, पुनः जुटाना- खाना-पखाना, इसी में सारा जीवन व्यर्थ ही गवाँना तथा मूढ़ता या अज्ञानता को सुख और नींद को शान्ति मान लेना ही तो पशुवत् जीवन से भी बद्तर जीवन होगा, क्योंकि पशुओं को जुटाने (संग्रह करने) की चिन्ता कदापि नहीं होती है। यह चिन्ता तो मानव अपने सिर पर ही ले चुका है। इस प्रकार तो पशु ही मनुष्य से भी श्रेष्ठतर हो गया। परन्तु यह किसके लिए ? उन मूर्खों के लिए जो मूढ़ एवं अज्ञानी यानी जो विद्यातत्त्वम् पद्धति अथवा तत्त्वज्ञान रहित हैं, जो रात-दिन जुटाने-खाने-सोने-पखाने, पुनः जुटाने-खाने-सोने-पखाने मात्र में अपने जीवन को व्यर्थ गवाँ रहे हैं । अपने और अपने आश्रितों सहित बालकों को भी विद्या हेतु प्रेरित नहीं कर रहे हैं । आसक्ति और ममता के बंधन में बंध-बाँध करके अज्ञान रूप अंधेरे कुएँ में पड़-डाल रहे हैं । ऐसे माता-पिता, संरक्षक और सरकार उन बालकों के और अपने आप हम (जीव) के भी घोर शत्रु हैं। जो बालक विद्या से बंचित रह जा रहे हैं, वे भी अनजान अन्धकारमय नारकीय जीवन जीने के लिये मजबूर होंगे ।

सर्वोत्तम बात तो यह होती कि विद्या के चारों (१. शिक्षा-Education, २ स्वाध्याय-Self realization, ३. योग-साधना या अध्यात्म-Spititualization और ४. विद्यातत्त्वम् या तत्त्वज्ञान-TrueSupreme and Prefect KNOWLEDGE) अंगों की सरकार द्वारा उचित व्यवस्था होती जिसमें क्रमशः चार श्रेणियों के बालकों को उनकी योग्यता-क्षमतानुसार चारों (शिक्षा, स्वाध्याय, अध्यात्म और तत्त्वज्ञान) से अन्यथा तीन (शिक्षा, स्वाध्याय और अध्यात्म) से, अन्यथा दो (शिक्षा और स्वाध्याय) से, अन्यथा कम से कम एक अंग (शिक्षा) से तो परिचित होना प्रायः प्रत्येक बालक के लिए अनिवार्य ही कर दिया जाता।

सांसारिक अध्यापकों द्वारा सांसारिक शिक्षा

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! शारीरिक माता-पिता अथवा संरक्षक द्वारा प्रेरित तथा डाँट-फटकार और मार के डर-भय के कारण विद्यालय प्रतिदिन गाँव-पड़ोस के अन्य बालकों के साथ हम (बालक शरीर) भी विद्यालय जाने लगे। विद्यालय में अध्यापक जी भी एक शरीर ही थे तथा उनका नाम-पता भी शारीरिक मात्र ही था। शरीर से भिन्न एवं पृथक् वे भी कुछ नहीं थे। यानी विद्यालय में भी चारो तरफ सभी प्राचार्य जी अध्यापकवृन्द, और सभी साथी-संघाती विद्यार्थी गण भी मात्र शारीरिक नाम-रूप-परिचय वाले ही थे । शरीर से भिन्न और पृथक् नाम-रूप-परिचय वाला कहीं भी कोई भी न तो

मिलता था और न मिलता है। इस प्रकार हम बालकगण भी शरीर तो बन ही गये थे। इसलिये हमारा भी नाम-रूप-पता-परिचय आदि शारीरिक मात्र ही विद्यालय के पंजीयन-पत्र में लिखा गया तथा सबके समान ही हमारा भी मेल व्यवहार शारीरिक मात्र ही रहा। हम शरीर मात्र ही है, इसी में फसते जकड़ते गये।

आत्मिक जीव को शारीरिक बनाना

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! माता-पिता या पारिवारिक संरक्षक के निर्देशन में उत्पन्न शिशु का जब नार-पुरईन (ब्रम्हनाल) काट-कटवा दिया जाता है तब ब्रम्ह या ईश्वर या आत्मा या जीवनी-शक्ति या नूरे-इलाही या शिव शक्ति वाला प्रायः सम्बन्ध-विच्छेद् हो जाता है। यह विच्छेद् पूर्णतः तो नहीं होता परन्तु विच्छेद का प्रभाव इतना अवश्य पड़ता है कि उससे प्राप्त होने वाली उपलब्धियाँ प्रायः बन्द ही हो जाया करती है जिससे बहिर्मुखी शिशु के जीव हेतु शान्ति और आनन्द तथा शरीर हेतु पुष्टिकारक खाद्य एवं पेय पदार्थ की अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है। यही कारण है कि उत्पन्न शिशु के सांस्कारिक लाभ एवं पुष्टि हेतु प्रसूति-गृह में आत्म-ज्योति रूप ब्रम्ह-ज्योति रूप दिव्य ज्योति के स्थान पर दीप-ज्योति; अमृत-पान के स्थान पर तत्काल मधु-पान तत्पश्चात् दुग्ध-पान तत्पश्चात् जल-पान; अनहद नाद के स्थान पर फूल (धातु) की थाली बजाकर तथा सोऽहँ-हँ्सो के स्थान पर सोहर (गीत) आदि उपलब्ध कराकर शिशु को यह जनाया-दिखाया- समझाया-बुझाया जाता है कि आप (शिशु) वही (गर्भस्थ) हो तथा वही यह दीप-ज्योति दिव्य-ज्योति ही है, यह मधु-पान वही अमृत-पान है, यह फूल की थाली की आवाज वही अनहद-नाद ही है तथा यह सोहर गीत वही सोऽहँ-हँ्सो- जप ही है। इस प्रकार प्रसूति-गृह से ही शिशु को माता-पिता अथवा संरक्षक द्वारा नकल या पाखण्ड और झूठ के शिक्षा से प्रसव-गृह के शिशु को ही सराबोर कर या भर दिया जाता है; इतना ही नहीं, 'आत्म' शब्द रूप ब्रम्ह रूप पिता के स्थान पर हाड़-मांस- खून- नस- नाड़ी- चमड़ी से युक्त शरीर मात्र को ही पिता तथा ज्योति रूपा शक्ति रूपा माता के स्थान पर पुनः हाड़-मांस-खून-चमड़ी युक्त शरीर मात्र ही माता बन जाती है।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! गर्भस्थ-शिशु जब गर्भ से बाहर आता है तो माता-पिता आदि द्वारा बाह्याडम्बर में फंसाकर अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी बना दिया जाता है जिससे शिशु का शरीरस्थ जीव अपने दिव्य सम्बन्धों एवं उपलब्धियों से बिछुड़ जाता है और हाड़-मांस आदि से बनी शरीर रूप माता-पिता, भाई-बहन,

हित-नात, दोस्त आदि सम्बन्ध रूप बाह्याडम्बर में फंस जाता है जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि शरीरस्थ जीव स्थायी सम्बन्धों (दिव्य) एवं स्थायी उपलब्धियों से बंचित हो जाता है और शान्ति-आनन्द के स्थान पर सुख तथा शारीरिक पुष्टि हेतु माता-पिता एवं संसार के अधीन होकर इधर-उधर चारों तरफ दर-दर की ठोकरें खाने लगता है फिर भी संसार में शान्ति और आनन्द तो मिलता नहीं । इसलिए मात्र शारीरिक पुष्टि में ही फंस जाया करता है तथा माता-पिता अथवा संरक्षक खान-पान-वस्त्र आदि की व्यवस्था करने लगते हैं क्योंकि ब्रम्ह-शक्ति या आत्म-शक्ति से जीव का सम्बन्ध यही कटवाये रहते हैं। आइये अब आप सभी लोग मिलकर बीच में यह भी जान-देख-समझ लिया जाय कि आखिरकार यह प्रथा ही क्यों और कैसे लागू हुई ? जिससे कि प्रारम्भ से लेकर आज तक ही यह प्रथा रूप लेकर कायम रहा, इसका कारण क्या है?

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! मानव सृष्टि के आदि में सृष्टि कर्त्ता ब्रम्हा ने स्वरसती के सहयोग से सर्व प्रथम सनक-सनन्दन- सनातन-सनत्कुमार नामक चार शिशुओं को उत्पन्न किया परन्तु उनका नार-पुरईन या ब्रम्हनाल नहीं काटा, जिसका परिणाम यह हुआ कि ये चारों बालक बाह्य यानी शारीरिक माता-पिता रूप बाह्याडम्बर में नहीं फंस पाये, जिससे ब्रम्हा को अपना सृष्टि-विधान रुका सा दिखलायी दिया, जिस पर सोच-विचार कर पुनः नारद को उत्पन्न किया । नारद भी सनत्कुमार के सम्पर्क से फंसने से बच गये, तत्पश्चात् ब्रम्हा ने काफी सोच-विचार कर नौ योगीश्वरों को उत्पन्न किया परन्तु वे भी वैसा (नारद जैसा) ही किए पुनः तत्पश्चात् ब्रम्हा जी ने इन मनु आदि प्रजापतियों को उत्पन्न किया तथा उन्हें सांसारिक बनाने हेतु उनका नार-पुरईन यानी ब्रम्हनाल काटने की पद्धति प्रारम्भ की, जिससे कि मानव का ब्रम्ह-शक्ति से सीधा सम्बन्ध विच्छेद हो जाय और सांसारिकता के तरफ उन्मुख होकर मानव सृष्टि उत्पत्ति में ब्रम्हा का सहयोग करें । बाद में ऋषियों ने अत्यधिक शोध करके पुनः ब्रम्ह-शक्ति को प्राप्त किया, परन्तु ब्रम्ह-शक्ति की यथार्थता तक कोई नहीं पहुँच पाया और ब्रम्हा जी की पद्धति (ब्रम्हनाल काटने वाली) एक प्रथा का रूप लेकर समाज में अब तक छायी हुई है । हालांकि ब्रम्हशक्ति से सम्बन्ध विच्छेद कराने वाली इस पद्धति को घोर घृणित कार्य मानते हुए स्वयं काटने की पद्धति को संशोधित कर समाज में निम्नतम स्थान पर स्थित 'चमईन' (प्रसव सेविका) से नार-पुरईन या ब्रम्हनाल कटवाने की पद्धति को ऋषि-महर्षियों आदि ने लागू किया-कराया जो अब तक है ।

अनभिज्ञता एवं स्वार्थपरता-मूलकारण

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! 'नार-पुरईन या ब्रम्ह नाल काटने से ब्रम्ह-शक्ति या ईश्वर-शक्ति या शिव-शक्ति या आत्म-शक्ति का सीधा जो लगाव है कट जायेगा' यह जानकारी प्रायः किसी को भी मानवीय स्तर पर नहीं था और न है । कुछ ऋषि-महर्षियों ने जो गहन शोध किया था मात्र उन्हें ही ब्रम्हा जी के सहारे कुछ आभास हुआ था जिसके आधार पर काटने के स्थान पर कटवाने की पद्धति (संशोधित पद्धति) लागू किया-कराया गया था । वास्तव में इसकी यथार्थतः जानकारी आज भी प्रायः किसी को नहीं है जबकि सभी मनुष्य मात्र ही इस पद्धति से गुजरते हैं फिर भी इसके रहस्य को नहीं जान पाते हैं । जानने का प्रयास भी नहीं करते हैं। यही इनका दोष है ।

वास्तविकता तो यह है कि आज का जनमानस पुत्रोत्पत्ति ही अपने अन्तर्गत निहित तुच्छ स्वार्थों को लेकर कर रहा है जबकि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। चाहिए तो यह कि लोक-कल्याण एवं परम प्रभु के सृष्टि विधान को मद्दे नजर रखते हुए ही पुत्रोत्पत्ति की-करायी जाय । पुत्रोत्पत्ति के पूर्व ही जन-मानस में नाना तरह के सुख-सुविधा प्राप्त करने रूपी निहित संकीर्ण एवं तुच्छ स्वार्थी भावनाओं से युक्त मिश्रित भाव (इच्छा) को लेकर ही गर्भाधान की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है जिससे प्रारम्भिक अवस्था वाले शुक्राणु ही उस संकीर्ण एवं तुच्छ भावों वाला हो जाया करते हैं । भाव का पुत्रोत्पत्ति पर इतना प्रभावी असर (प्रभाव) पड़ता है कि जिसको यथार्थतः बताना व लिखना एक अतिशयोक्ति जैसी बात लगेगी, फिर भी बताना उचित एवं कल्याण प्रद जान कर अनिवार्य लग रहा है । वह यह है कि - 'माता-पिता के भाव एवं व्यवहार का पुत्र-पुत्री पर उत्पत्ति के पूर्व से लगायत बाल्यकाल तक लगभग साठ प्रतिशत पड़ता है' जिसकी यथार्थतः भरपूर जानकारी तो माता-पिता को रहती ही नहीं और जो रहती भी है उसे अपने आदत से मजबूर होकर सुधारने की कोशिश ही नहीं करते, जिसका दुष्परिणाम आज चारों तरफ ही दिखलायी दे रहा है । भ्रष्टाचार उग्रतम रूप लिये हुए है । स्वार्थ के वशीभूत मानव, सम्पूर्ण समाज को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है । धनी धनी होता जा रहा है और गरीब गरीब बनता जा रहा है । ऊँच और नीच, धनी और गरीब, शोषक और शोषित, जोर-जुल्म और दलित-प्रताड़ित के बीच खाई पाटने के बजाय और ही गहरी तथा खतरनाक रूप ले लिया है, स्वार्थपरता तो आज बाप-बेटा, माता-बेटी, पति-पत्नि, सास-पतोह और दोस्त-मित्र, हित-नात आदि सम्पूर्ण सम्बन्धों को ही गर्त में मिला दिया है, जो विनाश का चरम रूप है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! माता-पिता के अनभिज्ञता के कारण ही कुछ बालक नार-पुरईन या ब्रम्हनाल कटने-कटवाने से बच गये, जो आज तक भी नाम-रूपों से जगजाहिर हैं, जिनमें कुछ प्रमुख हैं -- सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार, नारद, शुकदेव, कबीर, तुलसीदास आदि । ये महापुरूष फंसाये जाने पर भी सांसारिक मायाजाल में नहीं फंस सके थे, जिसका सुपरिणाम है कि आज भी ये नाम-रूप से समाप्त होने के बजाय समाज में प्रचलित होते जा रहे हैं । सारे के सारे सद्ग्रन्थ उन महापुरुषों के जीवन-वृतान्तों या जीवन-कहानियों से भरे पड़े हैं । जिन्होंने माता-पिता या परिवार के संकीर्ण एवं तुच्छ स्वार्थ रूपी दिवारों को तोड़कर निरपेक्ष भाव से लोक-कल्याण रूप सत्य-धर्म के संस्थापन एवं प्रचार-प्रसार हेतु अपने जीवन को लगा दिया था । आज तक उनका नाम-रूप कोई मिटा नहीं पाया बल्कि फैलता ही जा रहा है। उन जढ़ी-मूढ़ एवं आसक्त लोगों की तो अपने ही बाल-बच्चों, नाती-पोतों आदि द्वारा नाम-रूप दोनों ही समाप्त एवं मिट्टी में मिला दिया जाता है जिससे उनके नाम-रूपों को उन्हीं की पांचवी-छठवीं पीढ़ी तक को याद नहीं रह पाता और की बात कौन करे। सद्ग्रन्थ, शास्त्र, पुराण तो दूर रहा अपने परिवार के लेखा-जोखा में ही उनका नाम-रूप यदि ढूंढ़ा जाय तो शायद ही मिले। छठवीं-सातवीं पीढ़ी तक जाते-जाते समाप्त हो ही जाता है, यही तो विनाश कहलाता है ।

मानव कितना अभागा, जढ़ी, मूढ़ एवं विषयासक्त हो गया है कि अपने ही कल्याण उद्धार एवं शाश्वतता-अमरता आदि की बात उसे नहीं सूझता; तो उसके कल्याण, उद्धार, मुक्ति-अमरता आदि की बात और किसको सूझेगा ? किसी को भी नहीं । अधिकतर मानव अनभिज्ञता, स्वार्थपरता एवं अहंकारिता रूप संकीर्णता को अपने अन्दर कायम रखते हुए अपने कल्याण एवं उद्धार रूप मुक्ति- और अमरता से बंचित तो हो ही रहा है, शान्ति और आनन्द, अमन और चैन को भी नहीं जान-समझ पा रहा है । कुछ प्रत्यक्ष एवं क्षणिक सुख-सुविधाओं के वशीभूत होकर मानव इतना अन्धा हो गया है कि उसी सुखों के अन्दर निहित अपने अपूरणीय क्षति को ही नहीं देख-जान पा रहा है। क्षणिक -तुच्छ सुख-सुविधाओं में ही फंस कर इतना भूल-भटक गया है कि शाश्वत् शान्ति और शाश्वत आनन्द रूप मुक्ति और अमरता, सच्चिदानन्द और परमानन्द, सत्यानन्द और सदानन्द को न तो जान-देख ही पा रहा है, न समझते-बूझते हुए उपलब्ध ही कर पा रहा है ।

इस समय तो चारों तरफ यह स्थिति-परिस्थिति हो गयी है कि परम

सत्य-भगवान्-यहोवा-गॉड-परमेश्वर-अल्ला तऽला, परमात्मा आदि का नाम लेना तथा यकीन और ईमान के साथ उनके बताये मार्गों पर चलने में ही लोगों को लज्जा लग रहा है, भय लग रहा है, त्रसित हो रहा है क्योंकि मिथ्याचारियों, मिथ्याभाषियों एवं भ्रष्टाचारियों का ही राज्य हो गया है, उन्हीं का चारों तरफ बोल-बाला एवं जोर-जुल्म है जिसके भय से आज सारी जनता ही त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् !! त्राहिमाम् !!! की रट लगा रही है । स्थिति-परिस्थिति तो ऐसी हो गई है कि भगवान् के विनाशलीला में दुष्ट जन कब समाप्त हो रहे हैं। यही सभी देख रहे हैं । एक दिन एक युग के समान बीत रहा है । मगर भगवान् अभी विनाश के वजाय सवांरने में लगे हैं ।

माता-पिता की जिम्मेदारियाँ

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! माता-पिता के निर्देशन में प्रसव-सेविका (चमईन) द्वारा नार-पुरईन या ब्रम्हनाल काट दिया जाता है जिससे कि शिशु का ब्रम्ह-शक्ति या ईश्वर-शक्ति या शिव शक्ति या आत्म शक्ति से सीधा सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है जिसके साथ ही जिह्वा को तालू (कण्ठ-कूप) से खींच कर मुख में कर दिया जाता है जिससे कि शिशु का अमृत-पान से भी सीधा सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है । आँख ऊर्ध्वमुखी रूप में आज्ञा चक्र में दिव्य-ज्योति या ब्रम्ह-ज्योति या नूरे-इलाही या जीवन-ज्योति या चाँदना या सहज प्रकाश या स्वयं-ज्योति या डिवाइन लाइट या आत्म-ज्योति के दर्शन से शान्ति तथा अनहद नाद से आनन्द को कान (श्रवणेन्द्रिय) के अन्तर्भाव से जो प्राप्त हो रहा था उससे भी, दीप-ज्योति तथा फूल के थाली की आवाज से आँख को अधोमुखी तथा कान (श्रवणेन्द्रिय) को अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी कर-कराकर इन्हीं बाह्य वृत्तियों में शिशु को फंसा दिया जाता है जिससे इन शान्ति और आनन्द तथा शारीरिक पुष्टि की सारी जिम्मेदारियाँ ही माता-पिता अथवा संरक्षक पर आ जाती है, भले ही माता-पिता या संरक्षक द्वारा अनभिज्ञता के कारण ही उपरोक्त विधान किया-कराया गया हो । जिस प्रकार हाथ या पैर अग्नि में जानकर पड़े या अनजान में, उसे जलना ही है, शरीर जानकर या अनजान में भी गहरे पानी में पड़ने पर डूबना ही है, विद्युत् जानकारी अथवा अनजान में भी छू जाने पर झटका लगना या खिंचाव होना ही है, जहर जानकर या अनजान में खाया जाय तो मरना ही है, ठीक इसी प्रकार शिशु का ब्रम्ह-शक्ति या शिव-शक्ति या आत्म-शक्ति से सीधा सम्बन्ध विच्छेद् जानकर किया-कराया जाय या अनजान में, उससे उत्पन्न शान्ति-आनन्द तथा शारीरिक-पुष्टि की जिम्मेदारियों का दायित्व माता-पिता या संरक्षक

को वहन करना ही है साथ ही जो-जो उपलब्धियाँ जीव व शरीर को ब्रम्ह-शक्ति या शिव-शक्ति या आत्म-शक्ति से उपलब्ध होती रही है, उसे नकल या असल, पाखण्ड या यथार्थ रूप में शरीर को उपलब्ध कराने सम्बन्धी सारी की सारी जिम्मेदारियाँ ही माता-पिता या संरक्षक की होती हैं। इसलिए उसे पूर्त करने हेतु वे जिम्मेदार हैं । यदि माता-पिता या परिवार की स्थिति-परिस्थिति शिशु के उचित लालन-पालन या रक्षा-व्यवस्था का प्रबन्ध नहीं हो सकने की बात हो, तो तत्काल उनकी यह भरपूर जिम्मेदारी हो जाती है कि उस शिशु को किसी विशेष अपेक्षित (इच्छित) व्यक्ति को जो लालन-पालन या रक्षा-व्यवस्था हेतु सक्षम है, उसे बिना किसी शर्त एवं सोच-फिकर के सुपुर्द कर देवें; यदि ऐसा कोई व्यक्ति उसे नहीं मिल पा रहा है तो किसी भी कल्याणकारी धार्मिक संस्था या किसी समाज कल्याणकारी संस्था को सुपुर्द कर देवें ताकि शिशु का उचित विधि-विधान से लालन-पालन होता रहे जिससे शिशु के उत्थान एवं विकास में किसी प्रकार की बाधा या समस्या न बन सके ।

माता-पिता या संरक्षक दायित्व से बरी नहीं

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! कोई माता-पिता या संरक्षक यह कह कर अपने दायित्व से बरी नहीं हो सकता है कि मेरी स्थिति-परिस्थिति विशेष खराब है। मैं एक निर्धन व गरीब व्यक्ति हूँ । इसलिए मेरे पास साधन नहीं है कि मैं शिशु का उचित विधि-विधान से लालन-पालन या रक्षा-व्यवस्था आदि कर सकूँ । शिशु का माता-पिता या संरक्षक बनकर तथा शिशु को अपना पुत्र-पुत्री या संरक्षित आदि मात्र कह-कहवा कर शिशु के भविष्य को बर्वाद या विनाश करने या अन्धकारमय बनाने का अधिकार किसी भी माता-पिता या संरक्षक को नहीं है । इसके बावजूद भी वह ऐसा करता है तो शिशु के भविष्य को बिगाड़ने या बर्वाद करने या अन्धकारमय बनाने का अपराध करता है और वह कठोर दण्ड का भागी होने योग्य है क्योंकि थोथे (झूठे) प्यार से शिशु का भविष्य अधिकाधिक महत्वपूर्ण है । लापरवाही बरतने वाला व्यक्ति क्षमा के योग्य नहीं क्योंकि यह एक कठोर दण्डनीय अपराध है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! कोई शिशु माता-पिता या संरक्षक की सम्पत्ति मात्र नहीं होता, अपितु भावी समाज का एक भावी कर्णधार होता है। शिशुओं के उत्पत्ति के साथ ही समाज का भावी कर्णधार मानते, समझते तथा वैसा ही उसे लालन-पालन या रक्षा-व्यवस्था का उचित प्रबन्ध होना चाहिए तथा शिशुओं को पारिवारिक संकीर्णता एवं स्वार्थपरता से सदा ही बाहर निकल कर स्वच्छन्दतापूर्वक

समाज में उठने का सुअवसर मिलना चाहिए तथा किसी भी प्रकार के भेद-भाव चाहे वह नीच -ऊँच का हो या गरीब -धनीका; चाहे वह लिंग-जाति का हो या काला-गोरा का भी क्यों न हो, हर वर्ग के शिशुओ को एक ही स्थान पर एक ही व्यवस्था में रहने और उठने देना अनिवार्यतः विधान होना चाहिए । किसी भी शिशु को अपना-पराया नामक शिक्षा-दीक्षा कदापि नहीं देनी चाहिए । सम्पूर्ण मानव एक ही परिवार के सदस्य हैं तथा मानवता का उत्थान ही एकमात्र सम्पूर्ण सदस्यों का दायित्व होना चाहिए । मानवता विरोधी किसी भी क्रिया-कलाप या व्यवहार को समाज में उत्पन्न ही नहीं होने देना चाहिए, यदि कहीं जानने-देखने में आता हो तो तत्काल निष्पक्षता पूर्वक जाँच कर-कराकर तुरन्त उसे समाप्त कर-करा देनी चाहिए ।

शिशुओं में ही एकता सद्भाव, सद्विचार, सद्व्यवहार एवं सत्कार्य की जानकारी, समझदारी भरने की कोशिश करनी चाहिए । किसी भी शिशु को किसी भी माता-पिता या परिवार की व्यक्तिगत सम्पत्ति कदापि नहीं बनने देना चाहिए । शिशुओं को सदा ही एकमात्र यही शिक्षा-दीक्षा दिया जाय कि तू एक इकाई है तथा सम्पूर्ण मानव समाज ही तेरा एक परिवार है। मानव समाज सुधार एवं जीवों का उद्धार ही तेरा एकमात्र भाव, व्यवहार एवं कार्य होना चाहिए क्योंकि यहां पर (पृथ्वी पर)न तो तेरा अपना कोई है और न तू ही किसी का अपना है । सब कुछ एक स्थिर व्यवस्था है, जिसका तू एक ईकाई है । व्यवस्था की गरिमा कायम रखना तेरा सर्वप्रथम एवं सर्व श्रेष्ठ दायित्व है । दायित्व से विचलित होना निःसंदेह दण्ड का भागी होना है। अनुशासन एवं ईमान तेरा एकमात्र आधार है । दूरदर्शिता एवं दृढ़ निष्ठा के साथ कर्त्तव्य कर्मों का दायित्वपूर्ण निर्वाह तेरा लक्ष्य है ।

इस संसार में कोई भी शरीर मात्र तेरा माता-पिता, भाई-बहन, हित-नात नहीं; तू सदा-सर्वदा एक मुक्त पुरुष है, एक मुक्त नारी है; कोई तेरा नहीं और तू किसी का नहीं; सब तेरे हैं, तू एकमात्र परम प्रभु का एक सच्चा और ईमानदार अनुशासित एवं कर्मठ प्रतिनिधि है । तुझे जब तक भू-मण्डल पर रहने का सुअवसर मिला है । अपने कर्त्तव्यों को दायित्वपूर्ण तरीके से पालन करता हुआ परम प्रभु के दृष्टि में सत्पात्र बना रह । अपने कर्तव्यों से कभी भी किसी भी प्रकार की समस्या आने पर या घटना घटने पर विचलित न होना, अन्यथा अपने कर्तव्य से च्युत हो जाओगे तत्पश्चात् दुनियां में कोई सहारा नहीं दे सकता । एकमात्र परम प्रभु ही तुम्हारा हितेच्छु हैं । हर उन माता-पिता एवं पारिवारिक संरक्षकों को अतीव प्रसन्नता होनी चाहिए जिनके पास शिशुओं के लालन-पालन एवं विकास करने-कराने के

उचित साधन उपलब्ध करने-कराने की क्षमता न हो यानी निर्धन हों, गरीब हों, पारिवारिक कलह (आपसी वैमनस्व) में चल रहे हों कि शिशु किसी सक्षम व्यक्ति अथवा कल्याणकारी संस्था के माध्यम से उचित लालन-पालन भी पा रहा है तथा समाज में विकास कर रहा है, समाज में काफी प्रगति पर है । अपने उत्थान-कल्याण के मार्ग में लगा है ।

शिशुओं के प्रति सरकार का दायित्व

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! शिशुओं के भविष्य की सारी जिम्मेदारी सरकार की होनी चाहिए । शिशु एक सच्चा, ईमानदार, त्यागी, सन्तोषी, सरकार के प्रति वफादार, सत्यभाषी एवं सदाचारी धार्मिक एवं वीर सत्पुरुष बने तथा शिशुओं का भविष्य अन्धकारमय कदापि न होने पावे, सदा ही उज्वल बने-बना रहे । यह पूरी जिम्मेदारी सरकार की ही होनी चाहिए । सरकारी आय का प्रायः दस प्रतिशत शिशुओं के लालन-पालन, रक्षा-व्यवस्था एवं शिक्षा-दीक्षा आदि भविष्य उज्वल बनाने तथा बनाए रखने में खर्च करना चाहिए क्योंकि शिशु समाज का भावी कर्णधार होता है तथा सच्चा, ईमानदार, धार्मिक, वीर, सत्पुरुष पाकर जिसमें वफादारी कूट-कूट कर भरी हो अच्छा नागरिक सरकार की सच्ची पूँजी होता है, सरकार का एकमात्र आधार होता है। सच्चा, धार्मिक, वीर, ईमानदार एवं वफादार नागरिक बनाना एवं बनाए रखने की पूरी जिम्मेदारी, पूरा-पूरा दायित्व एकमात्र सरकार पर होना चाहिए।

भेद-भाव रहित 'एकल स्थिति' हो

सभी नागरिकों का एक ही धर्म, एक ही समाज, एक ही परिवार, एक ही दल, एक ही रीति-रिवाज, एक ही भाषा, एक समान ही उत्तम खान-पान एवं रहन-सहन तथा एक शिक्षा-दीक्षा अनिवार्यतः लागू होना चाहिए। भेद-दृष्टि को ही बदलने की व्यवस्था तथा अभेददृष्टि स्थापित करने की व्यवस्था करना सरकार की पहली जिम्मेदारी होनी चाहिए । किसी भी सम्पत्ति पर किसी भी व्यक्ति विशेष का स्वत्वाधिकार नहीं होना-रहना चाहिए । सभी सम्पत्ति का मालिकान सरकार का ही होना-रहना चाहिये फिर तो चोरी-लूट-डकैती अधिकतर मार-काट-बेइमानी-घुसखोरी आदि भ्रष्टाचार ही समाप्त हो जायेगा । निष्काम कर्म की पद्धति को प्रभावी तरीके से लागू करना -कराना चाहिए ।

शिशु ही सुदृढ़ सामाजिक संरचना का आधार

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! शिशु ही परिवार-किसी सरकार अथवा समाज का एकमात्र आधार विन्दु होता है । इसलिए किसी भी परिवार, सरकार या समाज को सम्पन्न, सुदृढ़ एवं उत्कृष्टतम् बनाने हेतु शिशुओं के लालन-पालन के समुचित व्यवस्था के साथ ही शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था पर भी विशेष ध्यान देने की अनिवार्यतः आवश्यकता है । शिशु एक कोरा-कागज (सादा कागज) होता है । जैसे कोरे-कागज पर जैसा रेखा खींचा जायेगा या जैसा चित्र बनाया जायेगा या उस पर जो कुछ लिखा जायेगा वही खींच या बन जायेगा। कागज का विशेष महत्ता उस अंकित या चित्रित या लिखित विषय-वस्तु पर ही आधारित है । ठीक उसी तरह शिशुओं का मस्तिष्क होता है कि उसको जैसा रहन-सहन, लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा आदि होगा वैसा ही उसका विकास होगा । शिशु का विकास एवं कार्य ही समाज का विकास एवं कार्य है। जिस प्रकार शुद्ध एवं पुष्ट शरीर के लिए शुद्ध एवं पौष्टिक आहार की आवश्यकता पड़ती है ठीक उसी प्रकार सुदृढ़ एवं सम्पन्न, शुद्ध एवं पुष्ट समाज के लिए शुद्ध एवं पुष्ट तथा उत्तम व्यक्तित्त्व वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है जिसका आधार विन्दु शिशु ही है । शिशुओं के समुचित रहन-सहन, लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था हुए वगैर सदृढ़ एवं सम्पन्न तथा उत्तम व्यक्तित्व वाला सुदृढ़ एवं सम्पन्न समाज की सम्भावना एक कोरी कल्पना मात्र ही रह जायगी।

शिशुओं की शिक्षा-दीक्षा संस्कृति परक

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! यदि अनुशासित एवं कर्मठ तथा सुदृढ़ एवं सम्पन्न समाज स्थित-स्थापित कायम करना है तो उसके लिए यह आवश्यकता है कि शिशुओं के लालन-पालन के साथ ही संस्कृति परक शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था हो, सभ्यता परक नहीं । बालकों का आन्तरिक उत्थान (विकास) हुए वगैर बाह्य चाहे जितना भी विकास हो जाय, शान्ति और आनन्द अथवा अमन-चैन का वातावरण कदापि नहीं बन सकता। जिस प्रकार वृक्ष का आन्तरिक जड़ों का विकास ऊपरी विकास को भी फैलाता और मजबूत करता जाता है, ठीक उसी प्रकार शिशुओं का विकास या उत्थान हेतु बाह्य विकास की अपेक्षा आन्तरिक विकास की अनिवार्यतः आवश्यकता है । जिस प्रकार जड़ें मजबूत हुए वगैर वृक्ष उपरी विकास कर जाय तो वह गिरे वगैर टिक नहीं सकता, उसे गिरना ही पड़ता है । ठीक उसी प्रकार शिशुओं का आन्तरिक विकास हुए वगैर यदि बाह्य विकास हुआ भी तो वह मानवता के स्तर

पर टिक नहीं सकता। उसे गिरना या भ्रष्ट होना ही है । दैवी तो दैवी है, मानवीय गुणों पर भी वह टिका नहीं रह सकता । मानवीय गुणों पर स्थित रहने हेतु नैतिकता आवश्यक है और नैतिकता संस्कृति परक शिक्षा-दीक्षा के वगैर कदापि अन्दर आ नहीं सकती । सभ्यता परक शिक्षा विकास भ्रष्टता एवं विनाश के तरफ तथा संस्कृति परक शिक्षा विकास उत्थान एवं आबाद-कल्याण के तरफ ले जाता है । इसमें थोड़ा भी सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है । सभ्यता की शुरुआत सरल, मध्य भ्रष्टतायुक्त तथा अन्त विनाश में होता है जबकि संस्कृति परक शुरुआत में कष्टकारक मध्य थोड़ा कठोर एवं अन्त आनन्द दायक, प्रतिष्ठा संस्थापक एवं कल्याण परक होता है । संस्कृति सभ्यता से हर प्रकार से श्रेष्ठतर उत्थान परक और कल्याणकर होती है ।

अन्ततः बतला देना चाहता हूँ कि कोई परिवार, सरकार तथा समाज शिशुओं का आन्तरिक विकास किए वगैर सुदृढ़ एवं सम्पन्न, अनुशासित एवं कर्मठ समाज की संरचना कर ही नहीं सकता और यह आन्तरिक संस्कृति परक शिक्षा-दीक्षा से ही सम्भव है; सभ्यतापरक शिक्षा तो एक दिखावा मात्र है । संस्कृति परक शिक्षा-दीक्षा सैद्धान्तिक, प्रायौगिक एवं व्यावहारिक स्तर पर भी हो । सांस्कृतिक समाज का अर्थ नैतिक समाज से होता है जो मानवता से सराबोर होता है ।

शिशुओं में माँ-बहनों का भाव जरूरी

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! उत्तम एवं सदाचारी व्यक्तित्त्व निर्माण हेतु शिशुओं में स्त्रियों-लड़कियों माँ-बहनों का भाव भरना अनिवार्यतः पहलू है । जितनी औरतें मां के योग्य (१५ बर्ष से अधिक उम्र की) हों उन सभी के प्रति माँ का तथा शेष समस्त में बहन का ही भाव भरना चाहिए । शिशुओं में औरतों और लड़कियों के प्रति सदा ही माँ-बहनों का भाव भरने का सुपरिणाम यह होगा कि गन्दे एवं बुरे विचार-भाव बनने ही नहीं पायेंगे, जिससे अच्छे विचार-भाव निर्विघ्न रूप से विकसित हो जायेंगे।

शिशुओं को सर्वप्रथम यह शिक्षा दिया जाय कि किसी भी बात अथवा कार्य को लेकर सम्पर्क में आने वाली औरत को 'माँ' का सम्बोधन करके कि "कहिए माँजी क्या बात है" अथवा "कहिये माँ जी क्या सेवा है", पुनः किसी बात या कार्य को लेकर सम्पर्क में आने वाली किसी भी लड़की को 'बहन' का सम्बोधन करके कि- "कहिये बहन जी क्या बात है ? अथवा कहिये बहन जी क्या कार्य है ?" इस प्रकार के माँ-बहन का सम्बोधन करना प्रत्येक शिशुओं के लिए प्रभावी तरीके से अनिवार्यतः लागू करना चाहिए। माँ और बहनों को भी यानी औरतों और लड़कियों को भी ठीक

उपरोक्त पद्धति से ही पुत्र और भइया सम्बोधन करने के पश्चात् ही अगली वार्त्ता या कार्य की बात करनी चाहिए । बालिकाओं को भी चाहिए कि- पुरुष या लड़कों को देख कर किसी भी बात या कार्य को आरम्भ करने से पहले या सर्वप्रथम 'पिता जी या चाचा जी' और 'भइया जी' सम्बोधन करने या उच्चारण करने के पश्चात् ही अपनी वार्त्ता या कार्य की बात आरम्भ करें । पुनः पुरुषों को भी चाहिये कि औरतों को बहन जी और लड़कियों को 'कहो बेटी' या 'कहो पुत्री' सम्बोधन के बाद ही अपनी वार्त्ता या कार्य की बात आरम्भ करें । यह पद्धति समाज पर प्रभावी तरीके से लागू होवे ताकि धार्मिक एवं ब्रम्हचारी, शिष्ट एवं सदाचारी, सुदृढ़ एवं समृद्ध-सम्पन्न समाज की संरचना होवे । मात्र पति-पत्नि के आपसी व्यवहार पर यह पद्धति लागू नहीं होगी मगर शेष सकल समाज पर तो लागू होना ही चाहिए ।

शिशुओं की शिक्षा-दीक्षा पारिवारिक सम्पर्क से दूर

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! शिशुओं को शारीरिक विकास एवं शिक्षा-दीक्षा हेतु ३ वर्ष की आयु पूरा होते ही सक्षम एवं प्रभावी आश्रमों को सुपुर्द कर देना चाहिए तथा अपनी क्षमतानुसार निष्कपटतापूर्वक आश्रम के सेवार्थ या सहयोगार्थ साधनों को उपलब्ध करते-कराते रहना चाहिए । शैशव काल में माता-पिता अथवा पारिवारिक सदस्यों का सम्पर्क शिशु के उचित विकास में हमेशा ही बाधक होते हैं । इसलिए शिशुओं के उचित विकास हेतु अनिवार्य रूप से माता-पिता अथवा पारिवारिक सदस्यों का सम्पर्क बन्द होना चाहिए क्योंकि माता-पिता अथवा पारिवारिक सदस्यों के ममता-मोह रूपी थोथे (खोखले) प्यार की अपेक्षा शिशु का उत्थान महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ मानना-जानना चाहिए। वास्तव में वह माता-पिता नहीं, जो शिशु के उचित विकास में ममता-मोह रूपी खोखले प्यार वश किसी भी प्रकार से बाधक बनता हो । वास्तव में सच्चा माता-पिता वही हैं जो ममता-मोह की अपेक्षा शिशुओं के उत्थान-विकास कल्याण को अधिकाधिक महत्व देतें हैं ।

शिशुओं को 'आत्म'-परिचय- बहुत ही सावधानी से

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! शिशुओं को शिक्षा-दीक्षा देने के आरम्भ में सर्व प्रथम जो 'आत्म'-परिचय कराया जाता है उसे शारीरिक न होकर विद्यातत्त्वम् के माध्यम से कराया जाना चाहिए, ताकि शिशुओं की जानकारी सम्बन्धी दृष्टिकोण जढ़ता मूलक न होकर सत्यता मूलक हो । शिशुओं को 'आत्म' परिचय कराते समय तेजी या जल्दबाजी सम्बन्धी थोड़ा भी असावधानी नहीं होनी चाहिए क्योंकि 'विद्यातत्त्वं'

की यह पहली कड़ी या पहला सोपान है जिसको बहुत ही काफी सूझ-बूझ से कदम रखना-रखवाना चाहिये। अन्यथा परिचय सम्बन्धी गड़बड़ी या कदम-फिसलाव होने पर अगले सोपान या अगले कदम का उचित प्रारम्भ होना कठिन हो जायेगा । अर्थात् शिशु या विद्यार्थी का भविष्य अन्धकारमय यानी अन्धेरे में टटोलने वाला हो जायेगा, जो समाज मेंआगे चलकर घातक परिणाम वाला हो जायेगा । इसलिए 'आत्म' परिचय को काफी गम्भीरतापूर्वक सावधानी के साथ प्रायौगिकता से युक्त परिचय देना-कराना चाहिए तत्पश्चात् शिशुओं या विद्यार्थियों से अनेकानेक बार पूछ-ताछ एवं परीक्षण लेते-देते हुए ही अगला कदम बढ़ाना चाहिए । शिशुओं या विद्यार्थियों को यह स्पष्टतः बताना-जनाना चाहिए कि 'हम' या 'मैं' शरीर नहीं है; अपितु शरीर से पृथक् और श्रेष्ठ 'जीव-रूह-सेल्फ'-स्व-अहम्' है जिसको संसार में यह शरीर नाना प्रकार से क्रियाशील होने और उपभोग करते हुए मुक्त भाव से भक्ति-सेवा सहित भगवन्मय या सत्यमय स्थिति-अवस्था में बनने बने रहने के लिए मिला है जिससे कि मानव जीवन का मंजिल 'मोक्ष' यानि मुक्ति और अमरता सुनिश्चित-सुरक्षित होवे-रहे और सांसारिक जीवन भी दोष रहित सत्य प्रधान होंवे-रहे।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! विद्यातत्त्वम् की यथार्थतः जानकारी देने हेतु उसके अंगो-प्रत्यंगो को काफी सरल बनाते हुए यानी सरल, रोचक एवं आकर्षक तरीके को अपनाते हुए उस अंग-प्रत्यंग के गुण से सिद्ध या पहुँचे हुए महापुरुषों के कथानक को प्रस्तुत करते हुए विद्यार्थियों के समक्ष तथ्यों को रखा जाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों में थोड़ा भी अरुचि न होने पाये । जैसे 'सत्य' से सम्बन्धित जानकारी देने में हरिश्चन्द्र और युधिष्ठर का कथानक, अहिंसा की जानकारी कराने में जैन-महावीर, वशिष्ठ, गौतम बुद्ध और गांधी जी आदि-आदि जैसे कथानकों को सरल, रुचिकर, आकर्षक एवं औपदेशिक भाषा-शैली में प्रस्तुत करते रहना चाहिए । त्यागी, सिद्ध, पहुँचे हुए आध्यात्मिक महापुरुषों और तात्त्विक सत्पुरुषों(भगवदवतारियों--श्रीविष्णु जी, श्रीराम जी, श्रीकृष्ण जी) के जीवन वृतान्त को शिशुओं या विद्यार्थियों के बीच कह-कहवाकर सुनाना एवं तत्पश्चात् उनसे समय-समय पर सुनते भी रहना चाहिए ताकि विद्यार्थियों का बहुमुखी विकास सरल तरीके से हो सके । "सत्यं बद्, धर्मं चर" विद्या का आधार होना चाहिए। "विद्यातत्त्वं-पद्धति" ही शिक्षा-दीक्षा का एकमात्र आधार हो ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! शिशुओं या विद्यार्थियों को 'आत्म' परिचय मात्र शारीरिक ही नहीं, अपितु शारीरिकता से ऊपर जैविकीय (जीव-सम्बन्धी) तत्पश्चात् आध्यात्मिक या आत्मिक (आत्मा सम्बन्धी) भी कराया जाना चाहिए । इन तीनों

स्तरों (शरीर, जीव और आत्मा अथवा शरीर-जीव-ईश्वर अथवा शरीर-जीव-ब्रम्ह अथवा शरीर-जीव-शिव अथवा जिस्म-रूह-नूर अथवा बॉडी सेल्फ-सोल अथवा शरीर-अहम्-ॐ-सोऽहँ-हँ सो) को पृथक्-पृथक् साफ-साफ स्पष्टतः कौन, क्या, कैसे, क्यों के सहित जनाया, समझाया, दिखाया एवं उससे सम्बन्धित अनुभूति कराया जाना चाहिए । इसी क्रम के अन्तर्गत चौथा स्तर-श्रेणी वाला तात्त्विक (तत्त्वज्ञान) यानी परमात्मा-परमेश्वर-परमब्रम्ह-खुदा-गॉड-भगवान् आत्मतत्त्वम् शब्दरूप परमतत्त्वम् रूप विराट पुरुष को भी बात-चीत सहित साक्षात् दर्शन वाली जानकारी भी देना चाहिए।

शारीरिक परिचय 'यन्त्र या गाड़ी से'

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! विद्यार्थियों को अध्ययन कराते समय अथवा पढ़ाते समय यह शैली अपनानी चाहिए कि 'प्यारे विद्यार्थी बन्धुओं ! जो आप को शरीर मिली है या जो हमें शरीर मिली है या जो किसी भी अन्य को यह मानव शरीर मिली है । यह मानव शरीर है । आप और हम शरीर नहीं हैं बल्कि शरीर आपकी और हमारी है । इस पर भी हमारा आपका मलिकाना नहीं है । हम आप इस मानव शरीर रूपी गाड़ी के चालक मात्र हैं, संचालक (मालिक) नहीं । इस शरीर का वास्तविक मालिक (संचालक) कोई और ही है जिसको आगे जाना-समझा जायगा । यहाँ पहले शरीर को जाना जाय कि यह क्या है ? हमको-आप को यह क्यों मिली है तथा हमको-आपको इसके साथ किस प्रकार का वर्ताव-व्यवहार करना-कराना चाहिए ?

यह मानव शरीर है, जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और थल रूप पाँच जड़ पदार्थों के संयोग से बनी है । इन पांच जड़ पदार्थ तत्त्वों को जानने, देखने, समझने, ग्रहण करने हेतु इनके अपने-अपने विषय या सूक्ष्म तनमात्राएं हैं जैसे -- शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध । इन पाँच जड़ पदार्थ तत्त्वों के पाँचों विषयों के तथा इन पाँचों विषयों से सम्बन्धित जानकारी करने-कराने हेतु अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नाक है जो अपने-अपने पदार्थ तथा पदार्थ से सम्बन्धित विषयों की जानकारी से सम्बन्धित एक-एक विभाग है । जानकारी के अनुसार कार्य हेतु इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के सहायक रूप में अपने-अपने कर्मेन्द्रियाँ भी कुल पॉच हैं जो वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा नाम से जानी जाती है । साथ ही इस मानव शरीर में इन्द्रियों के चालन एवं नियन्त्रण हेतु मस्तिष्क भी है जो सिर में है। प्रत्येक इन्द्रियों से कार्य करने-कराने तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने हेतु मस्तिष्क

तथा इन्द्रियों के मध्य सम्पर्क बनाये रखने हेतु नस-नाड़ियाँ भी हैं । शारीरिक ढांचा को सुदृढ़ एवं सुडोल बनाने हेतु हाड़, मांस, मज्जा आदि भी शरीर में हैं । इस प्रकार इन सभी अंग-प्रत्यंगों से बना इस पूरे सृष्टि का यह (मानव शरीर) एक सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम आकृति है जिसके समान धरती पर, यहाँ तक कि पूरे सृष्टि में भी कोई भी अन्य आकृति नहीं है । इतना ही नहीं, इसे ऐसे भी जान लेवें कि यह वह आकृति है जिसमें सृष्टि के संचालक रूप सृष्टि के सर्वोच्च शक्ति-सत्ता सामर्थ्य रूप भगवान् को भी जब-जब भू-मण्डल पर अवतरित होना होता है तो प्रायः इसी मानव शरीर से ही होता है, जो भगवदवतार या पूर्णावतार नाम से जाना जाता है । इससे इसकी वास्तविक महत्ता अच्छी प्रकार से अवश्य ही जान-समझ लेना चाहिए ।

प्यारे बन्धुओं ! इससे इस मानव शरीर के यथार्थतः महत्व को जानना-समझना, देखना, परखना-पहचानना चाहिए कि हमको आपको सर्वोच्च शक्ति-सत्ता-सामर्थ्य रूप भगवान् ने कितनी उत्कृष्टतम् शरीर (मानव शरीर) दिया है। हमारा और आपका यह फर्ज होना चाहिए अथवा यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि आखिरकार यह इतनी उत्कृष्टतम् शरीर हमें या आपको क्यों मिली ? साथ ही यह बराबर ही ध्यान रखना होगा कि जिस लक्ष्य को लेकर यह मानव शरीर मिली है क्या हमारा कदम उस मार्ग या लक्ष्य से भ्रमित या विचलित तो नहीं है ? और यदि भ्रमित और विचलित हो तो तत्काल ही अपने को सम्भालने का अनिवार्यतः प्रयत्न करना-होना चाहिए और सही मार्ग यानी लक्ष्य से जुड़ने और जुड़े रहने का प्रयत्न करना चाहिये। हर हालत में करना-रहना ही चाहिये जिससे कि जीवन सफल-सार्थक हो जाय ।

जैविकीय-परिचय (गाड़ी चालक से)

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! जैविकीय-परिचय के अन्तर्गत जीव तथा जीव से सम्बन्धित जानकारियाँ आती हैं । जैसा कि पिछले प्रकरण में बतलाया गया है कि हम-आप मानव शरीर नहीं हैं बल्कि यह मानव शरीर हमको और आप लोगों को मिली है कि लक्ष्य के अनुकूल कार्य करते तथा मुक्त रहते हुए आनन्दोपभोग करें । जिसके कृपा से यह शरीर जिस कार्य के लिए मिली है, उसी के लिए उसी कार्य में इसे अन्त तक लगाये रखें । जैसा कि कहा गया है और कहा जा भी रहा है कि हम-आप शरीर नहीं हैं, बल्कि शरीर हमारी और आप की है, तो तत्काल ही यह प्रश्न बनता है कि तब हम और आप क्या हैं ? तो इसके जवाब में यह जानना-समझना चाहिए कि 'हम' और 'आप' इस शरीर के अन्दर रहने वाले एक 'जीव-रूह-सेल्फ-स्व-अहं' हैं,

जो मिली हुई शरीर के द्वारा कार्य करते तथा उसके अनुसार भोग-भोगते रहते क्रम में बार-बार अनेकानेक बार अनेकानेक योनियों (आकृतियों) में भ्रमण करते रहते हैं। उसी परिभ्रमण के क्रम में भगवत् कृपा-पात्र विशेष योनि रूप उत्कृष्टतम् मानव शरीर में आये हैं। जिसका सर्व प्रथम और अन्ततः लक्ष्य किसी भी प्रकार के बन्धन से मुक्त होना है या सभी बन्धनों से मुक्त होते हुए अमरता से युक्त होना ही इस मानव शरीर के प्राप्ति का एकमात्र लक्ष्य है। जीव को यदि मुक्ति-अमरता का साक्षात् बोध प्राप्त नही हुआ तो सारा मानव जीवन व्यर्थ ही समझें। क्योंकि मानव योनिका एकमात्र उद्देश्य या लक्ष्य या मंजिल मुक्ति-अमरता रूप 'मोक्ष' की प्राप्ति यानी साक्षात् बोध प्राप्त करना ही होता है।

आइये अब यह जाना-समझा जाय कि वास्तव में 'जीव' या 'लाईफ' या 'रुह' क्या है? 'सूक्ष्म रूप' में कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय एवं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से युक्त 'सूक्ष्म शरीर' ही 'जीव' है। दूसरे शब्दों में 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से युक्त सूक्ष्म शरीर ही 'जीव' या लाईफ या रुह है।' इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि हम, आप शरीर कदापि नहीं हैं बल्कि शरीर में रहने वाले एक 'जीव' या रुह या सेल्फ है। यह जो मनुष्य शरीर हम-आपको मिली है यह इसी 'जीव' के द्वारा चालित है या एक प्रकार से यह कहा जाय कि 'समस्त क्रियाशील आकृतियाँ ही 'जीव' के द्वारा ही क्रियाशील हैं।' हम-आप एक 'जीव' हैं, 'लाईफ' हैं, 'रुह' हैं तथा हमारा-आपका ठिकाना 'स्वाधिष्ठान चक्र' है। हमारा-आप का अधःपतन रूप ही प्रजनन या सन्तानोत्पत्ति है तथा हमारा-आप का उत्थान ही आध्यात्मिक हँसो व ज्योति रूप जीवात्मा और हमारा-आप सभी का ही मंजिल मोक्ष (मुक्ति-अमरता) है जो भगवत् प्राप्ति के वगैर सम्भव नहीं और तत्त्वज्ञान के वगैर भगवत् प्राप्ति भी सम्भव नहीं होती। इसकी व्याख्या अगले प्रकरण 'आत्मिक-परिचय' में क्रमशः जाना-समझा जायेगा।

यहाँ यह बात यथार्थतः जना-समझा देना चाहता हूँ कि किसी भी विद्यार्थी को अथवा व्यक्ति को पतनोन्मुख नहीं होना-रहना चाहिए। प्रत्येक को ही चाहिए कि उत्थान के प्रति ही सदा उन्मुख रहे। इतनी महत्वपूर्ण, सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम मानव शरीर को पाकर भी यदि अपना उत्थान का रास्ता अथवा उद्धार अथवा मुक्ति और अमरता को हासिल नहीं कर लिया तो आखिरकार इस मानव शरीर से और विशेष लाभ क्या प्राप्त कर सकता है? अर्थात् कुछ भी नहीं। उससे बढ़कर अभागा और कौन जीव होगा जो मनुष्य जैसी सर्वोत्कृष्ट योनि (आकृति) पाकर भी अपने परम लक्ष्य रूप परमसत्य को या परमात्मा-परमेश्वर को नहीं पाया हो। अपने को बन्धन

से मुक्त, परमात्मा से युक्त होते-रहते हुये अमरत्त्व न प्राप्त कर लिया हो । मोक्ष प्राप्त न कर लिया हो ।

आध्यात्मिक 'आत्म'-परिचय

सद्भावी-सत्यान्वेषी बन्धुओं ! आध्यात्मिक 'आत्म' परिचय से तात्पर्य योग-साधना अथवा अध्यात्म के माध्यम से 'आत्म' यानी आत्मा की जानकारी एवं दर्शन करते हुए अपना (आत्मिक) परिचय प्राप्त करना है । पिछले प्रकरणों में आप बन्धुगण जानते-देखते आये हैं कि हम-आप 'शरीर' कदापि नहीं हैं, परन्तु अब बात रही कि हम-आप 'जीव' हैं जैसा कि कहा जा चुका है अथवा आत्मा हैं, जो अब कहा जा रहा है । कहने का तात्पर्य यह है कि पिछले प्रकरण में बार-बार कहा गया है कि हम-आप 'जीव' या 'लाईफ' या 'रूह' हैं । यहाँ हैं "आत्म'-परिचय" । 'आत्म' क्या है ? इसी की जानकारी करनी है, जो 'आत्म' परिचय होगा । 'आत्म' शब्द की जानकारी विशद् रूप में इसी सद्ग्रन्थ माला के 'आत्म-ज्योति के रहस्य' नामक पुष्पिका में है । वहीं एक बार पुनः देखा जाय तो अच्छा होगा । हालांकि संक्षिप्ततः यहाँ पर भी कुछ दिया ही जा रहा है जिसको बहुत गौर करके जाना-देखा जायगा तो समझ में आयेगा, चंचलता में तो इसे हजारों बार पढ़कर भी नहीं समझा जा सकता है ।

पतनोन्मुखी सोऽहँ

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! 'आत्म' वह चेतन सत्ता है, जो सर्वोच्च शक्ति-सत्ता-सामर्थ्य रूप परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप गॉड-अलम् से सीधे प्रकट और पृथक् होकर स्वछन्द शून्य में विचरण करने लगा जिससे कि ज्योति छिटककर पृथक् रूप में गतिशील होने लगी । इसी प्रकार सर्वोच्च-शक्ति- सत्ता-सामर्थ्य रूप परमतत्त्वं रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप अद्वैतत्त्वम् से 'आत्म' शब्द प्रकट और पृथक् होकर 'द्वैत' शब्द को सार्थक किया तत्पश्चात् पुनः द्वैत् से द्वैत् - द्वैत से द्वैत के क्रमशः विधान से ब्रम्ह-शक्ति या ईश्वर-शक्ति या शिव-शक्ति या आत्म-शक्ति शब्द-रूप (ज्योति) दोनों के आपसी मेल और टकराव से 'आत्म' शब्द से चेतन जीवधारी सत्ता तथा ज्योति रूपा शक्ति से जड़-पदार्थ जड़ जगत् (ब्रम्हाण्ड) की रचना या उत्पत्ति या निर्माण हुआ । तत्पश्चात् शाक्तिक ब्रम्हाण्डीय रचना शरीर और 'आत्म' --दोनों की आपसी मेल से 'आत्म' चेतन सत्ता ही शरीर धारी अहम् हुआ । यह अहम् ही जीव-रूह-सेल्फ-स्व भी कहलाया । इस प्रकार ज्योर्तिमय सः जीवधारी शरीरों के जीवों तथा परमतत्त्वम् रूप खुदा-गॉड-भगवान् या परमसत्य के बीच सम्बन्ध स्थापित

रखते हुए परमेश्वर से चेतना शक्ति जो प्राप्त होता है, उसे लाकर श्वाँस के माध्यम से शरीरान्तर्गत जीव को जीवनी शक्ति प्रदान करता रहता है। यह ही आत्मा-ईश्वर-ब्रम्ह-नूर-सोल-स्पिरिट-ज्योर्तिमय शिव भी कहलाता है ।

जीवन पर्यन्त ऐसा सहज ही होता रहता है। यह ही श्वॉस-निःश्वास के माध्यम से पतनोन्मुखी सोऽहँ की सहज स्थिति है । पुनः योग साधना करते समय सुषुम्ना के माध्यम से साधक, आध्यात्मिक महानुभावों को चेतना-शक्ति मिलती है जिससे कि वे सिद्ध और दैवी कृपा-पात्र होते हैं तथा इंगला और पिंगला के माध्यम से गृहस्थ वर्ग चेतना शक्ति को प्राप्त करता-रहता है जिससे जीव रूप अहं जीवनी शक्ति प्राप्त करता हुआ जीवित रहता है । परमात्मा यदि ज्योतिर्मय सः को श्वाँस के माध्यम से चेतनता रूप जीवनी शक्ति जीव-रूह-सेल्फ को प्रदान न करे या प्रदान करना बन्द कर दे तो शरीरान्तर्गत जीव तत्काल इस शरीर को छोड़कर अन्य निर्देशित गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाता अथवा स्वयं नहीं निकलने पर निकालकर पहुँचा दिया जाता है जिससे शरीर मृतक घोषित हो-हवा कर बर्वाद या विनाश को प्राप्त हो जाता है । ज्योतिर्मय सः के वगैर जीव का और जीव के वगैर शरीर का स्वतः कोई अस्तित्व-महत्व या स्थान नहीं है । शरीर को बर्वाद होना ही पड़ता है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! यह तो सही है कि हम-आप शरीर नहीं, अपितु शरीर के अन्दर रहने वाले 'जीव' हैं । साथ ही साथ यह भी सत्य है कि 'सः' से पृथक् 'जीव' में जीवत्व भाव ही या चेतना शक्ति ही नहीं रह जायगी अर्थात् 'जीव' के वगैर जो दशा शरीर का होता है वही दशा सः से रहित जीव का भी होता है क्योंकि अहं रूप 'जीव' जिस प्रकार शरीर में प्रवेश किये रहता है तो सभी लोग नाजानकारी वश शरीर ही को मैं-मैं, तू-तू करके जानने-मानने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार 'सूक्ष्म शरीर' रूप 'जीव' में ज़ब तक 'आत्मा' का प्रवेश रहता है तब तक ही यह भान होता है कि हम-आप 'जीव' हैं । परन्तु यथार्थतः देखा जाय तो आत्म-ज्योति रूपा आत्म-शक्ति रूप आत्मा ही जब श्वाँस के माध्यम से शरीर में प्रवेश करती है तो मूलाधार में वह आत्मा ही गुण-दोषमय सूक्ष्म आकृति से युक्त होकर 'जीव' (अहं) रूप में परिवर्तित हो जाती है । यहाँ पर यह जान लेना चाहिए कि ज्योतिर्मय आत्म हो या ज्योतिर्मय सः दोनों चेतन ज्योति रूप में एक ही समान होते हैं। इस प्रकार आत्मा से जीव रूप में अथवा सः से अहं या मैं या हम शब्द जीव मात्र का ही संकेत है । इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है परन्तु उसके साथ ही साथ यह भी जान-समझ लेना जरूरी ही है कि अहं या मैं हम जीव का ही संकेत होने-रहने के बावजूद भी अहं या

मैं या हम का अस्तित्त्व मात्र उतना देर ही है जितना देर या समय दो स्वाँसों के बीच होता है अथवा अगला श्वाँस लेकर या पुनः श्वाँस लिए वगैर जितने देर या समय तक शरीर में 'जीव' स्थित रह सके; मात्र इतना ही देर के लिए 'जीव' या अहं या मैं या हम का अस्तित्त्व होता है। इससे थोड़ा भी अधिक की गुंजाईश नहीं । साथ ही 'जीव' या अहं या मैं या हम की क्षमता या शक्ति-सामर्थ्य भी उतना ही समझना चाहिए जितना कि पुनः श्वाँस का सहारा लिये वगैर रहा जा सकता है। इससे अधिक तो सोचना-समझना भी नाजानकारी एवं नासमझदारी का परिचय देना ही होगा । जीव को जीवनी शक्ति प्रदान करते रहनेकी सहज स्थिति ही पतनोन्मुखी सोऽहँ है जिससे सभी शरीर ही जीवित रहता है ।

ऊर्ध्वमुखी हँसो

यही कारण है कि योग-साधना या आध्यात्मिक क्रियाओं-प्रक्रियाओं के द्वारा अपने अहं रूप जीव को सःज्योति नाम-रूप आत्मा से जोड़-जुड़ा कर आत्मामय बनना चाहते तथा उसी को लक्ष्य बनाकर सतत् प्रयत्नशील भी रहते हैं । यह स्थिति उर्ध्वमुखी हँसो की होती है । यहाँ पर इन योगी-साधक या आध्यात्मिक क्रियाओं-प्रक्रियाओं से युक्त बन्धुओं को बतला देना चाहता हूँ कि शरीर क्रियाशील या 'जीव' ही कहिए क्रियाशील रहते 'आत्मा' या आत्म-शक्ति या ब्रम्ह-शक्ति या ईश्वरीय-शक्ति या शिव-शक्ति को यह क्षमता या शक्ति-सामर्थ्य नहीं प्राप्त है कि ये अहं या जीव या मैं या हम को अपने में विलय कराते हुए शरीर और जीव को संसार में क्रियाशील रूप में स्थित रख लें । यह क्षमता या शक्ति सामर्थ्य एकमात्र परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप भगवत्तत्त्वम् रूप गॉड अल्ला तऽला में ही है कि वह जब जिसे चाहें, अपने में विलय कर-करा या साथ ही जिसको जैसा चाहें वैसा बनावें । ब्रम्ह-शक्ति या शिव-शक्ति या आत्म-शक्ति या ईश्वरीय शक्ति यहाँ तक कि आदि शक्ति भी इसी के इशारे पर कार्य करती हैं । हाँ, सः व ज्योति की साधना सिद्धि और कुछ अपनी विशेष शक्ति अहँ को प्रदान करती रहती है । वह भी उसी को जो पतनोन्मुखी सोऽहँ- से उर्ध्वमुखी हँसो साधना में सतत् प्रयत्नशील रहता है।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं! असलियत यह है कि यह शरीर मात्र 'जीव' के द्वारा ही चालित या क्रियाशील नहीं होती, अपितु शरीर 'जीव' और 'आत्मा' दोनों के संयुक्त विधि-विधान से ही क्रियाशील होती रहती है । अकेला न तो जीव ही शरीर को क्रियाशील कर सकता और न आत्मा ही शरीर का सीधे चालन या क्रियाशील कर

सकती है क्योंकि शरीर में प्रवेश के पश्चात् गुण-दोष से युक्त होते ही आत्मा को जीव रूप में परिणत होना ही पड़ेगा क्योंकि ऐसा ही सैष्टिक विधान है । आत्मा को सदा ही परमात्मा के सम्पर्क और निर्देशन में ही कार्य करना होता है। परमात्मा से सम्पर्क टूटते ही आत्मा को अस्तित्त्वहीन होना ही पड़ेगा । इसलिए शरीर का संचालन परमात्मा आत्मा के माध्यम से करता है तथा शरीर का चालन या क्रियाशील जीव आत्मा के सहारे यानी सहयोग से करता है । इस प्रकार शरीर क्रियाशील जीव से होती है, जीव क्रियाशील आत्मा से होता है तथा आत्मारूपीं चेतना-शक्ति सदा ही परमात्मा से निकलती और सःनाम से जीव को मिलती रहती है ।

आत्मा जब सांसारिक जीवधारी के सम्पर्क में रहती है तो आदि शक्ति रूपा महामाया सम्पर्क होते ही सृष्टि चलाने हेतु गुण-दोष से युक्त करके जीव रूप में परिणत कर-करा लेती है तत्पश्चात् सामान्य सैष्टिक विधि-विधान के अनुसार कर्म तथा उसका भोग, पुनः कर्म तथा उसका भोग यही क्रम तब तक चलाती रहती है जब तक कि खुद परमतत्त्वम्रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप भगवत्तत्त्वम् रूप शब्द ब्रम्ह या गॉड या अलम् का ही पूर्णावतार होकर तत्त्वज्ञान से अपने में विलय कराते हुए पूर्णतः अपने पास रहने हेतु निर्देश नहीं दे देता है, तब तक जीव को कर्म और भोग के मध्य ममता-मोह-तृष्णा के बन्धन में बँधकर भवसागर में आवागमन का चक्कर काटते रहना पड़ता है ।

भाग्यशाली होने पर भी अभागापन

मानव शरीर एक परीक्षा रूप में जीव को मिलता है कि जीव मुक्ति के सर्वोत्कृष्ट साधन रूप मानव शरीर पाकर अपना उद्धार कर-करा लेता है या नहीं। एक तो मानव शरीर का जीव को मिलना ही भगवत् कृपा की बात है, उसमें भी भगवदवतार को अपने शारीरिक काल में ही होना और मिलना तो यह जानना-मानना चाहिए कि भगवत् कृपा विशेष इतनी है कि कोटिशः कोटिशः जन्म-जन्मान्तर के बाद भी जल्दी जीवों को नहीं मिलता है, वही मिल गया है । अगर इस पर भी जीव सर्वतोभावेन भगवद् अर्पण और शरणागत होकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त करता हुआ भक्ति-सेवा द्वारा मुक्त-अमर नहीं हो लेता, तो इससे बढ़कर और अभागा पन क्या होगा ?

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं से अन्ततः बता देना चाहता हूँ कि जिस प्रकार जीव के वगैर शरीर का कोई अस्तित्व और महत्त्व नहीं रहता है । ठीक उसी

प्रकार आत्मा के वगैर जीव का भी अस्तित्व और महत्त्व समाप्त हो जाता है तथा आत्मा का तो अस्तित्व और महत्त्व एकमात्र परमात्मा के सम्पर्क बनाये रखने तक ही रहता है अर्थात् परमात्मा से सम्पर्क कटते या छूटते या टूटते ही 'आत्मा' नाम का भी अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है । फिर भी शरीर पर्यन्त हम-आप जो शरीरधारी के रूप में है । वह एक तरह से आत्मा-जीव (सोऽहँ) और जीवात्मा (हँ्सो) ही हैं जो परमात्मा के इशारे पर ही उत्पन्न और क्रियाशील होते रहते हैं । ये जीवात्मा (हँ्सो) भी परमात्मा (परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान्) के कृपा पात्र होकर ही मुक्त अमर हो सकता है । इसका अर्थ-- भाव यह हुआ कि सोऽहँ (आत्मा-जीव) और हँ्सो (जीवात्मा) भी स्वयं भी मुक्त नहीं हैं तो तो दूसरे को मुक्ति कैसे दे सकते हैं ? अर्थात् नहीं दे सकते है ।

तात्त्विक परिचय 'तत्त्वज्ञान' से

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! आदि से भी पूर्व जब कि एक 'शब्द' (बचन) के सिवाय और कुछ भी नहीं था । उस समय एक मात्र परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप भगवत्तत्त्वम् रूप 'शब्द' (बचन) मात्र ही था जो परमेश्वर या परमब्रम्ह या परमात्मा या अल्लातऽला या यहोवा या परमसत्य या सर्वोच्च शक्ति-सत्ता-सामर्थ्य रूप भगवान् से युक्त था और वह 'शब्द' (बचन) ही परमेश्वर था ।परम आकाश रूप परमधाम में वास करने या रहने वाला अविनाशी एवं अमर परमसत्य रूप परमत्त्वं रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप भगवत्तत्त्वं रूप शब्द ब्रम्ह रूप परमब्रम्ह या परमेश्वर या परमात्मा या गॉड या अल्ला तऽला या सर्वोच्च शक्ति सत्ता सामर्थ्य रूप भगवान् या परम प्रभु ही एकमात्र थे जिनमें चेतन रूप समस्त देवगण तथा जड़ रूप समस्त विश्व ही समाहित था । उसी जड़-चेतन से युक्त परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् या गॉड या अलम् शब्दरूप खुदा-गॉड-भगवान् को ही स्पष्टतः एवं परिपूर्णतम् रूप से जानने-समझने तथा साक्षात् देखने-पहचानने हेतु ही वेद की ऋचायें बनीं। वेद की ऋचाओं में परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप भगवत्तत्त्वम् रूप शब्द ब्रम्ह की जानकारियाँ गोपनीयता की शर्तों को बनाये रखते हुए सांकेतिक रूप में स्पष्टतः दी गई है । साथ ही साथ स्नैष्टिक विधान भी उसमें (वेद में) दिया गया है परन्तु जढ़ी एवं मूढ़ मानव जान-समझ, देख-पहचान बोध न कर सके तो इसमें परमेश्वर का क्या दोष ? जिसने अनन्य श्रद्धा-भक्ति के साथ खोजा, वह पाया परन्तु पाने वालों के समकालीन पढ़े-लिखे शिक्षित, विद्वान एवं शासन-प्रशासन करने वालों ने उस समय

उसे न माना और नहीं तो भगवत् प्राप्त लोगों से टकराते हुए समाज में उनकी काफी निन्दा की गई, आलोचना किया गया, विरोध और संर्घष किया गया। समाज में उनके प्रति घृणा का वातावरण उत्पन्न कर-कराकर उसको चारों तरफ फैलाया गया । उसे दुष्प्रचारित किया गया, नाना तरह की यातनाएँ एवं प्रताड़नाएँ दी गई । फिर भी भगवत् प्राप्त सत्पुरुषों ने सब सहन किया तथा समाज को यह स्पष्टतः दिखला दिया कि सत्य सत्य ही है और सत्य का नाश नहीं होता । अन्तिम विजय सत्य की ही होती है तो फिर परम प्रभु जो कि परमसत्य है, उसकी बात ही क्या ? और इन सारे यातना-विधानों के पश्चात् प्रत्येक देश-काल के सत्पुरुषों के सम्बन्ध में ही प्रायः यह देखा गया है कि कुछ लोग तो उसके जीवन काल में ही परन्तु अधिकतर लोग उसके शरीर छूटने के पश्चात् उसी भगवत् प्राप्त सत्पुरुष के नाम-रूप को ले-लेकर समाज में जप-तप, कीर्तन, भजन, यशोगान, नमाज, बन्दगी, अराधना, पूजा-विधान आदि गा-गा कर के शान्ति की अनुभूति प्राप्त करते हैं ।

इतना ही नहीं, जहाँ पर उस सत्पुरुष की शरीर पैदा हुई रहती है । जहाँ पर वह भगवत् प्राप्ति किये रहता है । जहाँ पर उसे यातनाएँ दी गई रहती हैं । जहाँ-जहाँ वह उपदेश दिया रहता है । जहाँ-जहाँ पर उसके चरण पधारे होते हैं तथा जहाँ पर वह अन्त में शरीर छोड़ता है । उन-उन सभी स्थानों को पवित्र तीर्थ स्थल मानते-कहते हुए वहाँ-वहाँ जाते हैं । तपस्या करते हैं । नाना विधानों से कष्ट झेलते हैं तथा कष्ट झेलते हुए भी अपना भाग्य मानते हैं । यह क्रम प्रायः सदा से चला आ रहा है ।

फिर भी मनुष्य कितना जढ़ी ? कितना मूढ़ ? कितना अन्धा ? कितना दिल का कठोर होता है ? कि सब कुछ पढ़ते हुए, सुनते हुए, जानते हुए, देखते हुए, सामने पड़ने पर समझते और मानते हुए भी अनपढ़ों जैसे, अनसुनी जैसे, अनदेखे जैसे, नासमझ जैसे, जाहिल-जपाट जैसे, हिंस्त्र-पशुओं जैसे बात करता है, व्यवहार करता है तथा उन्हीं परम्पराओं को पुनः दुहराते हुए वैसा-वैसा ही व्यवहार से वर्तमान में भी पेश हो रहा है । क्या ही तरस आता है इन जढ़ी एवं मूढ मानव बन्धुओं पर कि संसार में ये इतने जकड़ गये होते हैं कि इनको अपना ही कल्याण और उद्धार नहीं सूझ रहा है । अपने वद्कारी व हितकारी को नहीं समझ पा रहा है जबकि गुजरे हुए सत्पुरुषों के नाम-रूप-स्थान के पीछे-पीछे कल्याण के भाव में दौड़ रहा है परन्तु एकमात्र समाज सुधार और समाजोद्धार रूप कल्याण में लगे सत्पुरुषों को जानने-पहचानने, अपना कल्याण करने-कराने की कोशिश या प्रयत्न नहीं कर-करा लेता है ।

विद्यातत्त्वम् पद्धति

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! एक तरफ तो संसार को परम प्रभु ने एक लीला क्षेत्र या लीला भूमि या रंगमंच बनाया जहाँ पर जीव को शरीर देकर निष्काम कर्म करते हुए शान्ति के साथ आनन्दोपभोग करता हुआ 'दोष रहित मुक्त-अमर जीवन पद्धति' अथवा 'निर्दोष मुक्त-अमर जीवन पद्धति' अथवा 'मुक्त-अमर जीवन-पद्धति' पर शरीर पर्यन्त स्थित रहता हुआ भगवद् लीला का पात्र बने तथा शरीर छोड़कर अन्त में भगवन्मय होता हुआ भगवद्धाम को पहुँचे । परन्तु महामाया ने संसार में कामिनी-कांचन या व्यक्ति-वस्तु या शरीर-सम्पत्ति के प्रति ममता-आसक्ति रूप मोह का इतना जबर्दस्त बन्धन लगा रखा है कि जीव शरीर के माध्यम से इसमें ऐसा जकड़ जाता है कि अपने असल मालिक रूप परम प्रभु को ही भूल जाया करता है । सांसारिक मायाजाल में फंस कर कर्म और भोग के माध्यम से यहीं जकड़ कर आवागमन रूप भवसागर में डूबता-उतराता रहता है । फिर भी उसी में भटकता, ठोकरें खाता रहता है । आश्चर्य की बात तो यह है कि फिर भी समझ नहीं, कि जो हुआ सो हुआ अब से भी तो अपना कल्याण एवं उद्धार कर-करा लेवें । भगवदवतार के शरणागत होकर अपने आप 'हम' जीव को मोक्ष यानि मुक्ति-अमरता दिला लेवे ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! परम आश्चर्य की बात तो यह है कि भगवान् के ही सृष्टि में, भगवान् के ही धरती पर, भगवान् के ही अनन्य प्रेमियों, अनन्य सेवकों, अनन्य भक्तों एवं भगवान् के ही सेवा-प्रचार-कार्य में लगे हुए सत्पुरुषों को अपारकष्ट, असहनीय यातनाएँ, घोर निन्दा एवं घोर विरोधों के साथ ही साथ अति संघर्षों के दौर से गुजरने या चलने हेतु दुष्ट-समाज मजबूर करता रहता है । परम प्रभु के आश्चर्यमय लीला विधान को क्या कहा जाय कि भगवान् के ही लीला धरती पर भगवान् के ही अवतरण व शरीर धारण करने पर भगवद् अवतार वाली शरीर तक की निन्दा, आलोचना, विरोध तथा घृणा का भाव फैलाते हुए उन्हें भी अपार कष्ट एवं असहनीय यातनाएँ दिये बगैर यह समाज नहीं माना और न मान रहा है । आदि में श्रीविष्णु तथा समस्त उनके समर्थकों देववर्ग को जालन्धर ने काराबन्द किया; श्रीराम तथा उनके सभी समर्थकों को मेघनाथ ने नाग-पाश में बांधा तथा राम-लक्ष्मण को अहिरावण कारा बन्द कर बलि देना चाहा। श्री कृष्णजी के माता-पिता कारा बन्द किया तथा वर्तमान में भी वही हाल हो रहा है; ऐसा करने वाले सभी का विनाश हुआ और वर्तमान में भी होता जा रहा है, होता रहेगा भी ।।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! परमतत्त्वं रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप शब्दब्रम्ह की सम्पूर्ण कार्यकारी क्षमता अथवा सर्व शक्ति सत्ता सामर्थ्यवान की सम्पूर्ण

क्षमता-शक्ति तीन यूनिट(इकाई) यानी तीन भागों में कार्य करने वाली सम्पूर्ण क्षमता-शक्ति एकमात्र परमप्रभु में ही निहित या समाहित रहती है । जिसमें एक यूनिट(इकाई) में सम्पूर्ण देव समाज (चेतन वर्ग) आदि शक्ति सहित सम्पूर्ण सृष्टि (जड़ वर्ग) में उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न हुए चेतन-जड़ मय सृष्टि को स्थित क्रियाशील होने-रहने हेतु दूसरी युनिट(इकाई) आती है जिससे उत्पन्न-कार्य-समाप्त होता हुआ सृष्टि चक्रवत् जड़ में गति एवं चेतन वर्ग द्वारा क्रियाशीलता होती रहती है जबकि यथार्थतः मूल रूप में जड़ वर्ग तथा चेतनवर्ग दोनों के संचालन एवं नियन्त्रण रूपी बागडोर पहली-दूसरी और तीसरी यानी तीनों यूनिट(इकाई) क्षमता वाले एकमात्र परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप शब्द ब्रम्ह रूप परमप्रभु के हाथ में ही सदा से रहता चला आ रहा है और रहेगा भी । वही एकमात्र सदा सत्य, शाश्वत्, अमर, परमानन्द व सच्चिदानन्द रूप परमपद वाला है । परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप शब्दब्रम्ह रूप परम ब्रम्ह रूप परमप्रभु जो संकल्प शक्ति से युक्त था जिसके अन्दर कुछ हो ! ऐसा होने का संकल्प हुआ-जिससे उनके अन्तर्गत निहित संकल्प शक्ति उन्हीं से प्रकट होकर उन्हीं की अंगभूता अर्धांगिनी रूपा आदि शक्ति हैं, जो महामाया या मूल प्रकृति भी है । उसी ने 'आत्म-ज्योति' से चेतन वर्ग और जड़ वर्ग (आत्म से चेतन वर्ग तथा ज्योति से जड़ वर्ग) को उत्पन्न या रचना किया । आदिशक्ति अथवा महामाया ने ही अपने एकमात्र स्वामी रूप परमब्रम्ह परमेश्वर के सकाश से ही सर्वप्रथम ब्रम्हा-विष्णु-महेश को उत्पन्न कर अपनी माया से ब्रम्हाणी- रमा-उमा रूप में उत्पन्न कर सृष्टि-उत्पत्ति करने हेतु नियुक्त ब्रम्हा के सहयोगार्थ ब्रम्हाणी (स्वरसती) को दिया और सृष्टि-पालन हेतु नियुक्त श्रीविष्णु जी के सहयोगार्थ रमा (लक्ष्मी) को दिया तथा सृष्टि-संहार हेतु नियुक्त शंकर (महेश) के सहयोगार्थ 'उमा' को दिया तथा इन देवों-देवियों को इच्छा-शक्ति प्रदान करते हुए सृष्टि उत्पत्ति-पालन तथा संहार का कार्य-भार सौंपा और ये लोग अपना-अपना विभाग स्थापित करके इच्छा शक्ति के माध्यम से कार्य आरम्भ किया तथा आदिशक्ति ने स्वयं अपने स्वामी रूप भगवान् के सेवार्थ परमधाम में ही स्थित रहीं, जो समय-समय पर इन उपरोक्त देवों-देवियों को निर्देशित करती रहती है ।

धरती पर जब कभी कहीं-कहीं या किसी-किसी स्थानों पर कोई जबर्दस्त असुर उत्पन्न होता था-होता है, जो सृष्टि के सामान्य प्रक्रिया के अनुसार न चलकर मानव के साथ-साथ देवों-देवियों की मर्यादा को समाप्त करने लगता था, तो ये स्वयं प्रकट होकर उसका संहार भी करतीं रहीं-रहती हैं । परन्तु धरती की पूरी की पूरी

विधि-व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न हो जाने पर सवोच्च शक्ति-सत्ता-सामर्थ्यवान रूप परमतत्त्वम् रूप परमप्रभु खुद अपने परमधाम से अवतरित होकर भू-मण्डल के किसी शरीर को धारण कर महामाया रूप आदिशक्ति को भी सह लीला भागीदार बनाते हुए दुष्टों का दलन गुप्त या प्रकट रूप से करते-कराते हुए 'सत्य-धर्म' की स्थापना तथा सत्पुरुष का राज्य स्थापित करते-कराते हुए पुनः 'दोष रहित सत्य प्रधान एवं मुक्त-अमर जीवन विधान, लागू करते-कराते हैं। पृथ्वी पर 'सत्य-धर्म' स्थापित करते-कराते है। तत्पश्चात् परमधाम को वापस हो लेते हैं ।

'आत्म और तत्'

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! सर्व नाम-रूप समाहित एकमात्र परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप शब्दब्रम्ह रूप परमब्रम्ह रूप अद्वैतत्त्वम् से ही संकल्प के आधार पर प्रथम कड़ी या पहली इंकाई रूप 'आत्म' शब्द जो ज्योति से युक्त था । अपने मूल रूप परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप परमप्रभु से प्रकट होकर सृष्टि रचना हेतु पृथक् हुआ । साथ ही साथ ज्योति रूपा शक्ति भी प्रकट हुई । पुनः 'आत्म' और ज्योति पृथक्-पृथक् हुए यानी 'आत्म' से ज्योति पृथक् हो गई, जिससे कि ज्योति परिवर्तनशीलता एवं पृथक्कीकरण रूप अपने सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न नाम-रूपों वाली वस्तुओं के रूप में जड़-जगत् बनी-बनायी जो सब तरफ दिखायी दे रही है तथा 'आत्म' शब्द अपने चेतनता विशेषता के रूप में अपने रहने योग्य बने समस्त आकृतियों से ही 'एकोऽहं बहुस्याँ बभूव' के सिद्धान्त का प्रतिपादन व संस्थापन करते हुए समस्त चेतन योग्य आकृतियों से एकरूपता एवं स्थिरीकरण रूप सिद्धान्त को प्रतिपादित एवं संस्थापित करते हुए संयुक्त हुआ । यही कारण है कि सम्पूर्ण जीवधारी मानव शरीर आदि 'एक ही मैं' से सम्बोधित होता है यानी अपने को प्रायः सभी मैं या हम या अहम् ही संकेत करके बोलते-कहते हैं परन्तु वे हैं अंशवत् मात्र ही। सम्पूर्ण जीवधारी शरीर 'एक ही मैं' द्वारा संचालित होता है और वह 'एक' 'मैं' ही वास्तव में परमेश्वर है; शेष सभी शरीरों वाला 'मैं' (अहं) जीव व आत्मा-जीव (सोऽह) और जीवात्मा (हँ सो) तक मात्र ही होता है।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! उपर्युक्त पैरा में 'आत्म' के सम्बन्ध में कि जीवधारी शरीरों से किस प्रकार का लगाव तथा बात-व्यवहार होता-रहता है । अब आप बन्धुगण इस पैरा में दूसरे इकाई के सम्बन्ध में कि जीवधारी शरीरों से किस

प्रकार का लगाव तथा बात-व्यवहार होता है । यह जानना-देखना-समझना है । परमप्रभु ने एक इकाई शक्ति-सत्ता से तो चेतन वर्ग और जड़ वर्ग को उत्पन्न किया-कराया तथा दूसरी इकाई शक्ति-सत्ता के माध्यम से अपने तथा जीव वर्ग के मध्य सम्पर्क बनाए रखने हेतु 'तत्' (ज्योर्तिमय सः) नामक दूसरी इकाई को अपने से ही प्रकट करते हुए प्रयुक्त किया । यह दूसरी इकाई शक्ति-सत्ता रूप 'तत्' का एकमात्र कार्य जीव़ वर्ग से सम्पर्क बनाये रखते हुए परमप्रभु से प्राप्त चेतनता रूप जीवनी-शक्ति को प्रदान करते हुए क्रियाशील बनाए रखते हुए उनसे सम्बन्धित हो रहे सम्पूर्ण क्रिया-कलापों का सन्देश प्रभु तक पहुँचाना है ।

इस प्रकार 'तत्' (ज्योर्तिमय सः) नामक दूसरी इकाई शक्ति-सत्ता जो व्यक्ति योग-साधना अथवा आध्यात्मिक क्रिया-प्रक्रियाओं के अभ्यास से जान-देख कर मेल-मिलाप करते हुए योगाभ्यास या आध्यात्मिक साधनाभ्यास से जारी रखता है । वही सिद्ध योगी, पहुँचा हुआ ऋषि-महर्षिगण, ब्रम्हर्षि, आत्मवेता आदि कहलाते हैं । 'तत्' (ज्योर्तिमय सः) के साधनाभ्यासी ही ऋषि-महर्षिगण, ब्रम्हर्षि, योगी-यति, मुनि, अध्यात्मवेत्ता महापुरुष आदि बनते होते हैं । यहाँ पर हो सकता है कि 'तत्' कह देने मात्र से बन्धुओं में भ्रम उत्पन्न हो जाया करे । इसलिए भ्रम निवारण हेतु यहाँ पर यह बतला देना भी उचित ही लग रहा है कि इसके सही-वास्तविक जानकारी हेतु तत्त्वज्ञान के प्रायौगिक कक्षा से गुजरना अनिवार्य है ।

'तत्त्वज्ञान' वास्तव में वह जानकारी-विधान है जिसमें सम्पूर्ण (संसार, शरीर, जीव, आत्मा या ईश्वर या शिव और परमात्मा या परमेश्वर) की सम्पूर्णतया (शिक्षा, स्वाध्याय, योग-साधना अथवा अध्यात्म और तत्त्वज्ञान रूप सत्यज्ञान) पृथक्-पृथक् बात-चीत और साक्षांत्-दर्शन सहित समाहित होता-रहता है जो भगवद् समर्पित-शरणागत जिज्ञासु भक्तजनों को भक्ति-सेवार्थ और मुक्ति-अमरता रूप मोक्षार्थ प्राप्त होता रहता है । वर्तमान में भी सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस 'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्' वाले द्वारा प्राप्त हो भी रहा है । भगवद समर्पित-शरणागत जिज्ञासु भक्त ही पाता है यहाँ पर शंका-समाधान और जाँच-परख के लिए हर वर्ग सम्प्रदाय के जिज्ञासुओं हेतु खुली छूट है मगर शान्तिमय ढंग से सद्ग्रन्थों (वेद-उपनिषद्-रामायण-गीता-पुराण-बाइबिल-कुर्आन आदि) के आधार पर ही मनमाना नहीं ।

चेतन सत्ता 'आत्म' की जड़ता

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! ज्योतिर्मय आत्म और ज्योर्तिमय तत् सः नामक पहली और दूसरी इकाई शक्ति-सत्ता के आपसी मेल-मिलाप और प्रभाव से मनुष्य अपने को किस प्रकार के व्यवहार में रखता है । यही इस पैरा में जाना-देखा-समझा-बूझा जायेगा । ज्योतिर्मय 'आत्म' नामक पहली इकाई सत्ता-शक्ति से तो चेतन वर्ग तथा जड़ वर्ग की उत्पत्ति तथा आपसी सहयोग से कामिनी-कांचन या व्यक्ति-वस्तु या शरीर-सम्पत्ति के बीच व्यवहार तो होता या चलता ही रहता है । चूँकि पहली इकाई सत्ता-शक्ति सृष्टि रूप बड़े पैमाने पर फैलने अथवा अनेकानेक नामों रूपों में विभाजित हो जाने से सामान्य क्रिया-कलाप वाला हो जाता है । 'आत्म' नामक जो चेतन सत्ता-शक्ति है वह अपने आगे-पीछे-दायें-बायें, ऊपर-नीचे या सब तरफ से जड़वर्ग से घिरा हुआ रहने के कारण अपने से पृथक् दूसरी इकाई जो पृथक् चेतन रूप ज्योर्तिमय सः सत्ता-शक्ति है को भी भूलकर और शरीर में अपनेआप 'हम' (अहम्) जीव को भी भूलकर शरीर या आकृतियों को ही अपना नाम रूप मानकर उसी शरीर प्रधान जढ़ी (जड़ता मूलक) व्यवहार से व्यवहृत होने लगता है जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि चेतना-सत्ता-शक्ति वाला जीवधारी मनुष्य जढ़तामूलक कामिनी-कांचन, व्यक्ति-वस्तु अथवा शरीर-सम्पत्ति को ही अपना एकमात्र लक्ष्य बनाकर उसी में संग्रह रक्षा आदि में लगा रहता हुआ हर प्रकार का कुकर्म जैसे झूठ, चोरी, डकैती, लूट, राहजनी, अपहरण, व्यभिचार, बलात्कार तथा समस्त भ्रष्टाचारों का मूल रूप घूसखोरी आदि पर भी उतारू होकर करने-कराने लगते हैं । जिससे सारी विधि-व्यवस्था ही तहस-नहस हो जाया करती है और चारों तरफ हा-हाकार की स्थिति उत्पन्न हो जाया करती है जिससे आर्थिक सन्तुलन भी समाप्त हो जाया करता है । शान्ति और आनन्द तो शान्ति और आनन्द है, सुख और सन्तोष भी कहीं नजर नहीं आता ।

इसके साथ ही साथ आर्थिक असन्तुलन के कारण चारों तरफ ही लूट-खसौट हिंसा की प्रवृत्ति भी जोर पकड़ लिया करती है जैसा कि आज भी चारों तरफ ही दिखलायी दे रहा है । ऐसी स्थिति-परिस्थिति से ऊबकर कुछ लोग शान्ति और आनन्द के तलाश में परमप्रभु से प्रार्थना नमाज-बन्दगी, पूजा-आराधना आदि करने-कराने लगते हैं तो कुछ लोग योगी-यति, ऋषि-महर्षी, प्रॉफेट-पैगम्बर तथा आध्यात्मिक महात्माओं आदि महापुरुषों की तलाश तथा उनसे योग-साधना अथवा आध्यात्मिक क्रियाओं-प्रक्रियाओं का अभ्यास करने-कराने लगते हैं । जो शान्ति और

आनन्द के प्राप्ति कराने वाला होता है तथा अभ्यासानुसार प्राप्ति होता भी है । मगर यहाँ पर जान-समझ लेना जरूरी है कि 'मुक्ति और अमरता' इसमें (योग-साधना-अध्यात्म में) होता ही नहीं; फिर इससे मिलेगा कैसे ? अर्थात् नहीं मिल सकता । यह (मुक्ति और अमरता) तो एकमात्र 'तत्त्वज्ञान' में होता-रहता है और और 'तत्त्वज्ञान' से ही मिलता है ।

अब पुनः यहाँ पर यह देखना है कि आखिर योग-साधना या अध्यात्म क्या है कि जिससे शान्ति और आनन्द की अनुभूति होने लगता है। आखिरकार वह शान्ति और आनन्द आता कहाँ से है जो योगाभ्यासी को अनुभूति में मिलता है। योग का सामान्य अर्थ जुड़ना या मिलना होता है । अब पुनः प्रश्न बनता है कि किससे किसको मिलना है ? मिलने में या जुड़ने में सर्व प्रथम बात यह है, दो का होना, जिन दोनों को आपस में मिलना या जुड़ना होगा । यह तो स्पष्ट ही हो गया कि दो हैं जिन्हें आपस में मिलना है । वह दो कौन-कौन हैं ? आइये बन्धुओं अब ठीक तरह से देखा जाय ।

तथाकथित अपनों द्वारा शोषित 'अहम्'

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! दोनों का शोध करता हुआ जब आगे बढ़ा जायेगा तो जानने-देखने में यह मिलेगा कि एक तो वह है जो शरीर के अन्दर अहम् या मैं या आई शब्द से शरीर में रहता हुआ शरीर को क्रियाशील करता या बनाये रहता है तथा दूसरा वह है जो श्वाँस के माध्यम से सदा ही प्रवेश करने वाला ज्योतिर्मय 'सः' है । जैसा कि योगाभ्यास या साधनाभ्यास या आध्यात्मिक क्रियाओं को करने से जानकारी प्राप्त होती है अथवा अन्तर्मुखी होकर सुनने पर पकड़ में आता है कि श्वाँस अन्दर प्रवेश करते समय सो (सः) तथा उच्छ्वास या निःश्वाँस के रूप में स्वाँस बाहर निकलते समय अहं का आवाज बराबर ही होता रहता है । अब जो अन्तर्मुखी होकर योग-साधना के अभ्यास के द्वारा इसे जान-समझ कर दोनों 'सो'-अहँ तथा अहँ-सो को बराबर मेल-मिलाप रखते हुए अहम्-मैं-जीव को सः (सो) के विधि-विधान के अनुसार मेल-मिलाप करते-कराते हुए एकीकृत रूप में होने-रहने का अपने अभ्यास को काफी समय तक स्थिर (समाधि रूप) रूप में रखता रहता है, तब यह अहम्, सः सत्ता-शक्ति जो शान्ति और आनन्द के अनुभूति के साथ-साथ ज्योतिर्मय ब्रम्ह शक्ति-शिव शक्तिं के रूप में भी प्राप्त करता रहता है तत्पश्चात अहं जीव ज्योतिर्मय (आत्मा-ईश्वर-ब्रम्ह-शिव) ही होता हुआ एकीभाव में हो जाया करता है। इस प्रकार इस प्रकरण से स्पष्ट हो जा रहा है कि अहम् की क्षमता, सः से बहुत कम यानी सः के अपेक्षा अहम् के पास नगण्य सी क्षमता रहती है । इसका एक प्रमुख कारण यह है

कि अहम् शरीरान्तर्गत इन्द्रियों के माध्यम से अपनी सारी क्षमता तो जानकारी-नाजानकारीवश शरीर और सम्पत्ति अथवा व्यक्ति और वस्तु अथवा कामिनी और कांचन के पीछे नाना प्रकार से उड़ाता यानी खर्च करता रहता है जिससे कि वह बिल्कुल क्षमता (सत्ता-शक्ति) हीन होकर क्षमता (सत्ता-शक्ति) सम्पन्न ज्योतिर्मय सः से मिलता है तथा उससे जीवनी शक्ति सहित शान्ति और आनन्द की अनुभूति भी यानी पुनः क्षमता (सत्ता-शक्ति) प्राप्त करता रहता है ।

यहाँ पर दो बातों पर विशेषतः गौर करने या ध्यान देने की बात है कि 'आत्म' जो अहम् शब्द रूप जो क्षमताहीन हो चुका है, वह कैसे क्षमताहीन (शान्ति और आनन्द से हीन) हो गया ? तो यह स्पष्टतः चारों तरफ दिखलायी दे रहा है कि संसार में जो कोई भी शरीर के माध्यम से अपना-अपना बना हुआ है, वह मात्र हमारे क्षमता को या इससे होते रहने वाले लाभ उपार्जन को ये अपने कहलाने वाले तथाकथित शोषित करने मात्र के लिए ही ये सब अपना बने हुए हैं । यदि इन अपनों को पता चल जाय कि हम से इनको अब कोई लाभ या कुछ प्राप्ति होने को नहीं है, तो उसी दिन, उसी क्षण हमको ये लोग ठुकराये या छोड़े बगैर नहीं रह सकेंगे, तत्काल त्याग या हटाकर ही चैन लेंगे ।

इस प्रकार बन्धुओं ! इन बातों पर एकान्त में बैठकर थोड़ा गौर करते हुए विचार-मन्थन किया जाय तो स्पष्टतः यही बात दिखलायी देगी। इस प्रकार अहँ तो तथाकथित अपनों द्वारा बिल्कुल ही शोषित होता रहता है । यही कारण है कि अहँ के पास शान्ति और आनन्द तथा सिद्धि नाम की चीज बिल्कुल ही समाप्त हो गयी रहती है। इतना ही नहीं यह अहँ तो इतना क्षमताहीन हो गया होता है कि उनमें फँस-बँध-जकड़ कर असहाय की तरह उन्हीं शोषकों रूप अपनों के बीच पड़ा रहता है, चाहते हुए भी उसमें से निकल नहीं पाता। जब खुदा-गॉड-भगवान् की विशेष कृपा पाता है, तब ही निकल पाता है । बहुत तो निकल कर भी फिर उसी में गिर जाते है और करोड़ों बार के लिये जनम-मृत्यु की दुःसह पीड़ा दायक यातनाओं से तड़पते गुजरते रहते हैं सम्भल ही नहीं पाते है ।

परमप्रभु द्वारा 'तत्' पुनः सः

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! एक तरफ तो शोषकों के बीच पड़कर 'अहं' (जीव-रूह-सेल्फ) इतना काफी शोषित कर लिया जाता है कि क्षमता (शान्ति और आनन्द तथा सिद्धि) के मामले में तो अहँ बिल्कुल ही शुष्क या मृत प्रायः यानी शून्य

की स्थिति में पहुँच गया होता है तथा दूसरे तरफ 'तत्' उस सर्वोच्च सत्ता-शक्ति-सामर्थ्य युक्त शब्दब्रम्ह रूप परमब्रम्ह रूप परमप्रभु के पास से आता है । जहाँ शोषण शब्द का तो स्वप्न में भी कल्पना ही नहीं किया जा सकता है । केवल जहाँ प्राप्ति ही प्राप्ति है । जहां परम शान्ति और परम आनन्द ही है । वहाँ शान्ति और आनन्द की क्या कमी? जहाँआदि शक्ति या महामाया ही अर्धांगिनी और सेविका है, वहाँ सिद्धियों की क्या कमी ? हाँ कमी तो वहाँ प्राप्त करने वाली अपनी पात्रता की होती या रहती है । वहाँ प्राप्ति तो भरपूर है परन्तु लेना -पाना अपनी पात्रता रूपी क्षमता पर आधारित है । जिसकी जितनी जैसी पात्रता होती या रहती है, वह वहाँ उतना ही पाता है । वहाँ पाने और लेने पर किसी को भी किसी भी प्रकार का रोक नहीं होता। समुद्र में से जल लेने वालों को कौन टोक या रोक सकता है कि इतना जल मत लीजिए, जल कम हो जायगा या समाप्त हो जायगा । तो जब एक इतने छोटे स्तर वाले समुद्र की यह हाल है, तो उस शान्ति और आनन्द तथा शक्ति के परम-परम-परम----सागर मेंकौन रोकने टोकने वाला है अर्थात् कोई नहीं । उसमें से असली शान्ति और आनन्द तथा सिद्धि तो एकमात्र अनन्य भगवत् प्रेमीगणों को ही सुलभ हो पाती है जिसको समझना भी अनन्य प्रेमियों के अलावा अन्य के लिये असम्भव है, क्योंकि भगवत् प्रेमी के आनन्द को भगवत् प्रेमी ही जान सकता है, अन्य उस रहस्य को कदापि नहीं जान सकते हैं।

इस प्रकार बन्धुओं 'तत्' ज्योर्तिमय सः का आगमन भी शान्ति और आनन्द तथा सिद्धियों से युक्त होता है । योगाभ्यास या साधनाभ्यास के माध्यम से जो-जितना मेल-मिलाप या सम्बन्ध स्थापित रखते हुए उससे (तत् पुनः सः से) जितना अपने अहँ को एकीभाव कर पाता है, उतना ही शान्ति और आनन्द तथा सिद्धियों को पाता है । इसमें भी अभ्यास सदा ही जारी रखना पड़ता है । शरीर रहते अभ्यास बन्द कदापि नहीं करनी चाहिए क्योंकि अभ्यास बन्द होते ही पुनः शान्ति और आनन्द की कमी तथा सिद्धियों की मन्दी होने लगती है, जो ठीक नहीं है । तत् पुनः सः का यही कार्य होता है कि परमप्रभु से प्राप्त शान्ति और आनन्द तथा शक्ति-सिद्धि (जीवनी शक्ति) को अहँ (जीव-रूह-सेल्फ) को प्रदान करना तथा जीवों के दुःखद एवं अपूर्त (कमियों) दुष्कृत्यों-पापों से युक्त सूचनाओं या समाचारों को ले जाकर प्रभु के समक्ष रखना या पहुँचाना । इस प्रकार बन्धुओं अब तक पहली और दूसरी इकाई सत्ता-शक्ति के कार्यों और प्रभावों को आप लोगों ने पढ़ा-जाना और समझा । आगे अब यह देखना है कि 'तत्' से प्राप्त क्षमता का दुरुपयोग कैसे-कैसे होने लगता है ।

'तत्' से प्राप्त क्षमता का दुरुपयोग

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! 'तत्' से तात्पर्य ज्योतिर्मय सः से है। मनुष्य के 'अहम्' की क्षमता शक्ति जब तथाकथित अपनों द्वारा शोषित कर लिया जाता है जिससे कि शान्ति और आनन्द तथा सिद्धियों से शून्य अहम् मूलाधार-चक्र से उठ कर परमप्रभु कृपा से गुरु के द्वारा आज्ञा-चक्र स्थित सः से जब मिलता है, तो पहले तो ज्योतिर्मय सः के साक्षात्कार मात्र से ही 'अहम्' को काफी शान्ति और आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है तत्पश्चात् सिद्ध-सक्षम गुरु के आज्ञानुसार रहते हुए योगाभ्यास करते हुए अपने अहम् को ज्योतिर्मय सः रूप के विधि-विधानों के अनुसार यानी अहम् को ज्योर्तिमय सः के साथ एकीभाव से जब मेल-मिलाप रूपी योगाभ्यास में लीन हो जाता है, तो पुनः शोषित अहम् 'आत्म' (ज्योतिर्मय सः) रूप हो जाया करता है जिससे समाज में मानव-कल्याण रूप अपना असल कर्तव्य-कर्म की जागृति यानी तत् के तरफ से प्रेरणा मिलती है और यह तत् से पूरित अहम् (आत्म) (ज्योतिर्मय सः) एक योगी-यति, ऋषि-महर्षी, आध्यात्मिक सन्त-महात्मा आदि जैसे के व्यवहारों से व्यवहृत होने लगता है मगर इसके प्रत्याहार यानी पारिवारिक रहन-सहन का त्याग अनिवार्य है। समाज में आदर-सम्मान, मान-प्रतिष्ठा आदि की यत्र-तत्र प्राप्ति होने लगती है तथा इनके इस कल्याणकारी योजना या कार्य में आत्म-कल्याण या आत्मोत्कर्ष या आत्मोत्थान हेतु इनके अनेकानेक बहुत से शिष्य एवं अनुयायी होता हुआ इनके पीछे-पीछे चलने-रहने लगते हैं।

आप बन्धुओं से यहाँ पर उपरोक्त मूलभूत शब्दों को योग के क्षेत्र के अतिरिक्त तत्त्वज्ञान के प्रभाव या सहयोग से कुछ यथार्थतः अर्थ रखे जा रहे हैं, जिसे यदि आप गौर करके पढ़ेंगे तब, समझ-बूझ के अनुसार आनन्द की उपलब्धि होने लगेगी और यदि इसे सूझ-बूझ के साथ जीव के अन्दर बैठाया गया तथा अपने जीवन को सर्वतोभावेन भगवद् समर्पित और शरणागत भाव से अपना कदम आगे बढ़ाया गया, तो निःसन्देह 'तत्' (ज्योतिर्मय सः)क्या तत् (ज्योतिर्मय सः) के भी पिता रूप परमसत्य या परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप खुदा-गॉड-भगवान् के विशेष कृपा का पात्र होता हुआ परमशान्ति और परम आनन्द से युक्त होता और रहता हुआ सीधे आदि शक्ति और परम प्रभु का ही शरण और संरक्षण प्राप्त करने लगता है। जो मुक्ति-अमरता रूपी मोक्ष रूपी मञ्जिल होता है।

आइये बन्धुओं अब उन मूलभूत कुछ प्रमुख शब्दों के यथार्थता को जाना-देखा जाय जो जीवन का मुक्ति और अमरता तथा शाश्वत् शान्ति और शाश्वत आनन्द को

उपलब्ध कराने वाला है, बशर्ते कि उसे अपने उद्धार हेतु अनिवार्य आवश्यकता जान-मान कर निःशंक अपने जीवन को कर दिया जाय। वे शब्द हैं---मूलाधार-चक्र से ऊर्ध्वमुखी रूप में आज्ञा-चक्र में योग-साधना या अध्यात्म 'स्वराट' यानी जीवधारी शरीर का प्रायौगिक अध्ययन मात्र है, तो तत्त्वज्ञान या भगवद्ज्ञान या सत्यज्ञान 'विराट' का सैद्धान्तिक प्रायौगिक तथा व्यावहारिक अध्ययन पद्धति है। इस तथ्य को अब इससे अधिक विस्तार में यहाँ रखना ठीक नहीं लग रहा है क्योंकि व्याख्या सहित यह विस्तृत हो जायेगा, जिससे इस चल रहे वर्तमान प्रकरण से आप-सभी दूर हट जायेंगे। इसलिए इस तत्त्वज्ञान सम्बन्धी तथ्य को अगले प्रकरण में देखा जाय तथा यहाँ पर 'तत्' वाले प्रकरण को ही ले चलना विशेषकर उपयोगी लग रहा है।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! आत्म और तत् जो यहाँ (लौकिक क्षेत्र) अहम् और सः के रूप में बतलाया जाता है। वह कोई बनावटी व काल्पनिक बातें नहीं हैं, बल्कि गहन जानकारी समझदारी के साथ यथार्थतः ग्रहणीय एवं उपयोगी बातें हैं। आत्म और तत् जिस समय परमप्रभु रूप परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप शब्दब्रम्ह रूप परमब्रम्ह से युक्त रहते हैं, तब तक तो शाश्वत शान्ति और शाश्वत आनन्द तथा आदि शक्ति से युक्त रहते हैं, परन्तु 'आत्म' सृष्टि रचनाक्रम में सांसारिक 'अहम्' जो तुक्ष क्षमता वाला एक क्षमताहीन के रूप में क्रियाशील रहता है जो एक असहाय के रूप में रहता हुआ ऐसा सहारा ढूढ़ने लगता है जिससे शान्ति और आनन्द के साथ सिद्धि-शक्ति भी प्राप्त हो, तब सक्षम गुरु के मिल जाने पर 'आत्म' का विकृत रूप 'अहम्' का 'तत्' (ज्योतिर्मय सः) की जानकारी एवं दरश-परश तत्पश्चात् योगाभ्यास रूप मेल-मिलाप से तथा 'अहम्' को 'तत्' के अनुसार हो जाने से तुक्ष अहम् (जीव-रुह-सेल्फ) शान्ति और आनन्द तथा सिद्धि-शक्ति रूप क्षमता शक्ति-युक्त होने लगता है जिससे पुनः पूर्ववत् ज्योतिर्मय सः की स्थिति में पहुँच जाता है। इसके पश्चात् जो भी 'तत्' (सः) के साथ दरश-परश एवं योगाभ्यास रूप मेल-मिलाप तथा 'तत्' के प्रति एकीभाव जारी रखता हो, तो इसकी क्षमता में और ही वृद्धि होने लगती है, जो मात्र आत्म कल्याण तथा परिवार कल्याण से ऊपर उठकर जन-कल्याण, समाज-कल्याण, लोक-कल्याण हेतु मजबूर हो जाती है, जो शरीर और परिवार के सीमा को तोड़कर या उससे ऊपर उठकर लोक क्षेत्र में क्रियाशील होने लगता है। इसी प्रकार शान्ति और आनन्द से शून्य मानव इनके माध्यम से 'तत्' ज्योतिर्मय सः से सम्बन्धित हो-होकर शान्ति और आनन्द की अनुभूति करने लगते हैं जिससे वे सभी इनके शिष्य एवं अनुयायी होते जाते हैं। इस प्रकार इनके पीछे एक

बहुत बड़ा जनसमूह एवं काफी धन-सम्पत्तियाँ आ जाती हैं, जो इन्हें पुनः अपने तरफ आकर्षित करने लगती हैं और ये बन्धुजन अपने पीछे बहुत बड़े जन-समूह, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से युक्त काफी संख्या में आश्रम, बहुतायत मात्रा में धन-सम्पत्तियों को देख-देखकर आकर्षित होने लगते हैं, जिससे सः अभिमुखी अहँ (हँ सो) पुनः जड़तामूलक अहँ अभिमुखी सः (सोऽहँ) होता हुआ शरीर प्रधान होता-रहता हुआ जागतिक शरीर-सम्पत्तियों के तरफ मुड़ने यानी अभिमुख होने लगता है।

एक तरफ एक इकाई-सत्ता-शक्ति रूप जो अनेकानेक रूप में जगत् रूप में फैलकर क्षमता हीन अहम् हो गया होता है, से भी ऊपर दूसरी इकाई रूप सत्ता-शक्ति रूप तत् ज्योतिर्मय सः से सम्बन्धित होने-रहने से क्षमतावान् की अनुभूति तथा दूसरे तरफ विशालकाय जन समूह एवं बहुतायत धन-सम्पत्तियों को देखकर पुनः जबर्दस्त अहंकारिक रूप में अपने को स्थित करते हुए, सः को अहँ के तरफ करते-मानते हुए दोनों का संयुक्त रूप में पतनोन्मुखी सोऽहँ मानना, कहना व घोषित करते-कराते हुए 'अहम्' को तत् ज्योतिर्मय सः में मिलाने के बजाय सः (तत्) को ही अहँ से जोड़कर सोऽहँ- 'वही 'मैं' हूँ बनने-घोषित करने लगते हैं जबकि अहँ को तत् (सः) से युक्त करते हुए हँ सो 'मैं वह' था और है, होना चाहिए । जिससे ये उल्टी मति-गति में हो जाया करते हैं अर्थात् हँ सो की स्थिति योगाभ्यास से प्राप्त करने के बजाय पतनोन्मुखी सोऽहँ(सः का पतनोन्मुखी अहँ) जो सहज ही होता रह-रहा को मात्र जान-मान कर सोऽहँ पतनोन्मुखी ही बने रह रहे हैं जिसकी मंजिल पतन नाश-विनाश ही होता है ।

मिथ्याहंकारवश अवतारी

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! यह प्रकरण भी पिछले प्रकरण 'तत् -ज्योतिर्मय सः से प्राप्त क्षमता शक्ति का दुरुपयोग' नामक शीर्षक का ही एक अंश है परन्तु प्रमुख होने के कारण इसे एक पृथक् शीर्षक करके वर्णित किया जा रहा है। 'तत्'-ज्यातिर्मय सः से प्राप्त क्षमता वाले बन्धुगण जब अपने को सोऽहँ रूप तत् (सः) तथा अहँ का संयुक्त रूप घोषित करने-कराने लगते हैं, तब यहीं से इनके मिथ्यात्व एवं अहंकारिक भावना का रूप होने लगता है क्योंकि 'तत्'-ज्योतिर्मय सः के सम्पर्क से अहम् चाहे जितना भी क्षमतावान बने वह अहँ तत्पश्चात् जीवधारी शरीर ही रह सकता है । हँ सो यानी ज्योतिर्मय सः रूप एकीभाव कदापि नहीं हो सकता है। 'तत्' (ज्योर्तिमय

सः) परमप्रभु और शरीरधारी जीव के बीच माध्यम मात्र वाला ही परम प्रभु का कार्यकर्त्ता नियुक्त होता है । इसलिए कोई शरीरधारी अहम् के साथ-साथ सोऽहँ हो और सोऽहँ ही हँ सो भी है । यह कदापि हो ही नहीं सकता है; हाँ यह बात हो सकता है कि सः से दरश-परश एवं मेल-मिलाप के कारण अहम् सः के सहयोग मात्र से कुछ सिद्धियाँ व शक्ति आदि को हासिल कर लेवे, जिससे विशिष्ट क्षमता वाला दिखलाई दे सके, परन्तु यह तो कदापि सम्भव ही नहीं कि कोई शरीरधारी अहम् तथा सः मात्र दो के संयुक्त रूप मात्र ही अवतारी हो।

पूर्णावतार रूप अवतारी ही एकमात्र ऐसा शरीरधारी होता है जिसमें परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् के तीनों इकाई सत्ता-शक्ति के प्रयोग करने-कराने की सक्षमता होती हैं । उसके सिवाय अन्य किसी भी शरीरधारी में तीनों तो तीनों है, दो इकाई सत्ता-शक्ति भी पूर्णतया प्रयोग करने की क्षमता नहीं हो पाती है । एक इकाई सत्ता-शक्ति भी पूर्णतया प्रयोग करने की क्षमता नहीं हो पाती है। एक इकाई सत्ता-शक्ति से सारी सृष्टि तथा डेढ़ (३/२) इकाई में देवता वर्ग तथा दो इकाई के साथ ही आदिशक्ति रूपा महामाया भी क्रियाशील होती रहती है । केवल परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप शब्दब्रम्ह रूप खुदा-गॉड-भगवान् रूप परमप्रभु ही एकमात्र ऐसे हैं, जिसके पास तीनों इकाई सत्ता-शक्ति रूप क्षमता सदा क्रियाशील रूप में पड़ी रहती हैं । चाहें जब जितना वह प्रयोग करें, उन पर कोई अंकुश नहीं होता है ।

इतना ही नहीं; ये योग-साधना-अध्यात्म वाले लोग सोऽहँ तो मिथ्याभिमानवश अपने आप बन ही जाते हैं, साथ ही साथ पतनोन्मुखी सोऽहँ और ऊर्ध्वमुखी हँ सो व ज्योति के साधना को ही तत्त्वज्ञान घोषित करते-कराते हुए स्वयं को योगी-यति, पीर-पैगम्बर प्राफेट, ऋषि-महर्षि, ब्रम्हर्षि के स्थान पर भगवदवतार रूप पूर्णावतारी बन बैठते हैं, जो इन लोगों के मिथ्याहंकारिता का चरम और घृणित रूप है। इस प्रकार एक साथ ही अनेकानेक लोग ही अवतारी बनते हुए अपना-अपना पूजा-आराधना कराने लगते हैं, जो नहीं कराना चाहिए । असलियत तो यह है कि आत्मा-परमात्मा का अन्तर तो दूर है, जीव और आत्मा तक का भी अन्तर इन्हें (तथाकथित सद्गुरुजन-गुरुजन को) मालुम नहीं है । जीव एवं आत्मा और परमात्मा --- ये तीन हैं या दो अथवा एक का ही तीन नाम हैं, इन्हें(तथाकथित सद्गुरुजन-गुरुजन को) तो यह भी मालूम नहीं होता । पतनोन्मुखी सोऽहँ और ऊर्ध्वमुखी हँ सो भी जीव का नाम है या आत्मा का या परमात्मा का ? इन्हें यह भी पता नहीं होता । फिर भी बनने लगते हैं भगवदवतारी और सोऽहँ को भगवान् घोषित करने लगते हैं जो बिल्कुल ही गलत है ।

सोऽहँ तो आत्मा भी नहीं होता फिर परमात्मा कैसे हो सकता है ? परमात्मा तो सोऽहँ और हँ्सो ज्योतिर्विन्दु रूप शिव-शक्ति का भी पिता परमतत्त्वम् रूप 'आत्मतत्त्वम्' शब्दरूप अद्वैतत्त्वम् ही होता है । सोऽहँ तो वास्तव में कोई योग-अध्यात्म की क्रिया भी नहीं होता तो फिर तत्त्वज्ञान कैसे हो सकता है ? हो ही नहीं सकता, कदापि नहीं !

'त्वम्' या 'तुम'

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! पिछले प्रकरणों में --अहम् और -ज्योतिर्मय सः के सम्बन्ध में टूटे-फूटे शब्दों में थोड़ा-बहुत जानकारी आप लोगों ने प्राप्त किया और अब यहाँ पर थोड़ा-बहुत जानकारी 'त्वम्' के सम्बन्ध में किया-कराया जायेगा। 'त्वम्' एक ऐसा बहुचर्चित शब्द है, कि जिसको प्रायः शुद्ध-अशुद्ध सभी ही संस्कृत एवं हिन्दी भाषी जानते होंगे, क्योंकि आये घड़ी या आये दिन आपस में भी 'तुम'-तड़ाम होता ही रहता है। प्रायः हर व्यक्ति ही अपने समक्ष उपस्थित व्यक्ति को 'तुम' के संकेत से ही उच्चारण या सम्बोधन करते हुए वार्त्ता करते हैं। हर व्यक्ति ही वार्त्ता करते समय अपने लिए 'मैं' या हम या अहम् तथा जिससे वार्त्ता करता है उसे तू; तुम या त्वम् कहता है। इस प्रकार अपने लिए 'मैं' और समक्ष दूसरे के लिए 'तुम' यानी मैं तेरे लिए तुम; तुम मेरे लिए तुम; पुनः तुम अपने लिए मैं और मैं अपने लिए मैं; दोनों दोनों के लिए तुम ।

अब यहाँ पर मुख्य बात 'मैं' और 'तुम' तथा 'तुम' और 'मैं' में असलियत कौन का है ? गौर करके देखा जाता है तो मात्र यही दिखलायी देता है कि सभी शरीरों में एक 'मैं' ही दिखलायी देता है और दे भी रहा है, 'तुम' नाम की एक भी शरीर नहीं दिखलायी देती है क्योंकि अपने को कोई 'तुम' कह कर नहीं बोलता है यानी अपने लिए कोई भी तुम का प्रयोग नहीं करता है । इससे स्पष्टतः जाहिर हो रहा है 'तुम' नाम की कोई शरीर धरती पर नहीं है । तब पुनः यह प्रश्न खड़ा होता है कि 'तुम' क्या है ? 'तुम' या त्वम् की यथार्थता क्या है ? यह साधारण बात नहीं अपितु अतिगहन तथ्य 'तुम' है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! विशेष विचारणीय बात एक यह भी है कि वार्ता या बात-चीत के दरम्यान जो व्यक्ति प्रत्यक्ष नहीं होता है या बात-चीत के दरम्यान अनुपस्थित रहता है, तो उसके लिए 'सः' या 'वह' शब्द प्रयुक्त होता है, अनुपस्थित वाले को 'वह' या 'उस' शब्द के उच्चारण या सम्बोधन करके बात-चीत

किया जाता है लेकिन भगवान् या परमेश्वर या परमात्मा या यहोवा या गॉड या खुदा या अल्ला तऽला को विशेषतः 'तुम' या त्वम् का ही सम्बोधन या उच्चारण करके प्रार्थना, प्रेयर या नमाज, बन्दगी, पूजा, आराधना आदि किया जाता है ।

आइये बन्धुओं गहराई में प्रवेश किया जाय, तब यथार्थतः समझदारी होगी या समझ में आयेगा। छिछले अध्ययन से नहीं । इसे बार-बार कहने का भाव-तथ्य की गहनता से है । एक तरफ संसार में रहता है 'अहम्'। 'अहम्' और 'त्वम्' के बीच मध्यस्थता करते हुए दोनों का सम्बन्ध बनाये रखने के लिए सदा ही क्रियाशील रहता है 'सः' । 'अहम्' हो गया सांसारिक जीव तथा 'त्वम्' है परमब्रम्ह या परमेश्वर या खुदा या गॉड या भगवान् और दोनों के बीच मध्यस्थता रूप में रहता है 'सः' । 'त्वम्' ही आदि देव तथा 'त्वम्' ही पुरुष-पुराण भी कहलाता है । तेरे ही कृपा रूप ज्योतिर्मय सः के लगाव से सारे प्राणी स्थित और क्रियाशील रहते हैं । जिस समय 'त्वम्' सम्पर्क काट दे तो जीव को मजबूरन शरीर व संसार छोड़ना पड़ता है यानी शरीर में श्वाँस के माध्यम से सः का प्रवेश रुक जाय, तो शरीरस्थ जीव को शरीर व संसार को हर दशा में ही छोड़ना ही पड़ता है । उस समय कोई शरीर जीव को रोक नहीं सकता है । शरीर का संसार में क्रियाशील रूप में स्थित रहने हेतु 'त्वम्' के तरफ से प्रेषित 'तत्' पुनः सः श्वॉस के माध्यम से शरीर में प्रवेश होना एक सर्व प्रथम अनिवार्यता है जिसके बिना शरीर मुर्दा या मृतक् है। 'आत्म' को 'अहम्' रूप भी होना पड़ता है और माना भी जाता है तथा 'तत्' को सः रूप में भी ग्रहण किया जाता है परन्तु 'त्वम्' एक ऐसा अपरिवर्तित होने वाला शब्द है कि जिसमें किसी भी प्रकार से जाने या अनजाने में भी परिवर्तित न करके सदा 'त्वम्' तुम रूप में ही उच्चारित किया गया यानी 'त्वम्' वैदिक संस्कृत व लौकिक संस्कृत दोनों में ही त्वम् ही है, जबकि वैदिक 'आत्म' और 'तत्' तथा लौकिक में 'अहम्' और सः परिवर्तित रूप है । इस प्रकार 'त्वम्' की अपरिवर्तनशीलता परिलक्षित हो रही है, जो एकमात्र परमप्रभु के अतिरिक्त सृष्टि में कोई ऐसी सत्ता-शक्ति तथा व्यक्ति-वस्तु नहीं है जो अपरिवर्तनशील हो ।

सत्यता, शाश्वतता,सम्पूर्णता, सर्वोत्कृष्टता एवं अपरिवर्तनशीलता एकमात्र परमप्रभु में ही सदा स्थित रहते है । इस प्रकार सर्वसत्ता-शक्ति समाहित रूप 'त्वम्' मात्र ही जो परम आकाशरूप परमधाम में परमब्रम्ह या परमेश्वर या परमात्मा या यहोवा या गॉड या अल्ला तऽला या खुदा या सर्वोच्च सत्ता-शक्ति रूप परम-सत्य रूप परमप्रभु सदा रहने वाला है । इसके सिवाय अन्य कोई ही परमात्मा-खुदा-गॉड

कहलाने योग्य नहीं है । यह परमतत्त्वंरूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप गॉड-अलम् ही सर्वशक्तिसत्ता-सामर्थ्य रूप परमात्मा-परमेश्वर परमब्रम्ह- खुदा-गॉड-भगवान् था - है और रहेगा भी । अहम्-ॐ-सोऽहँ और हँ्सो न कभी भगवान् था न है और न हो सकता है ।

'मैं' और 'तुम' का प्रभाव

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! मैं-मैं और तू-तू के व्यावहारिक रूप में क्या प्रभाव हैं ? एक उदाहरण के माध्यम से आप बन्धुओं के समक्ष रखा जा रहा है जिसे मनन-चिन्तन के साथ अध्ययन करना विशेष लाभदायक होगा । यह उदाहरण बकरी और कुत्ता का है । यह उदाहरण मैं-मैं-मैं और तू-तू-तू के प्रभाव का है ।

बकरी :- सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! बकरी के उदाहरण से मैं-मैं का प्रभाव जाना-समझा-देखा-बूझा जाय । बकरी एक सामान्यतः छोटा आकार का पशु है । जो सही रूप में बहुत ही उपयोगी पशु है । जिससे प्रायः कोई क्षति नहीं होती है । घास-फूस, अन्न आदि खाने वाली तथा अहिंसक पशु है । इसका दूध माँ के दूध के अलावा गाय-भैंस आदि किसी भी दुधारू पशु के दूध से अधिक स्वास्थ्यकर होता है, जो सदा ही एक तरह से औषधि के उपयोग में आता है। प्रायः सबसे सीधा जानवर यही पशु होता है । बकरी की आवाज (बोली) सदा ही मैं-मैं-मैं करके ही निकलती है या होती है । अब इस मैं-मैं-मैं का रहस्यात्मक प्रभाव जो प्राकृतिक रूप से मानव में जानकारी या नाजानकारीवश सामान्यतः व्यवहारवाद में जो होता है, वह यह है कि-'बकरी जैसे लाभदायक स्वास्थ्यकर, निर्दोष, सीधा-सपाट जानवर (पशु) को मांसाहारी लोग गला रेत कर या सिर काट कर मांस तो खाते ही हैं, हड्डी भी अपने दांतों से तोड़-तोड़ कर कुत्ते की तरह चूस-चाट लेते हैं । इतना ही नहीं, उसके चमड़ी तक को ढोलक आदि बना (छा) कर पीट-पीट कर बर्वाद कर-करा देते हैं । यह है, सब प्रकार से लाभदायक एवं हानि रहित सीधा-सपाट जानवर का मात्र मैं-मैं-मैं के आवाज का प्रभाव । यानी मैं-मैं के जीवन वाले की यह ही दुर्गति यमराज के यहाँ होती रहती है जिससे दुःसह दुःख-यातनामय जन्म-मृत्यु बार-बार होता रहता है । चौरासी लाख बार तो एक चक्र में जन्म-मृत्यु के दुःसह यातनाओं से गुजरते हुए मोक्ष पर्यन्त गुजरते ही रहना पड़ता है- पड़ेगा ही । किसी के नहीं मानने सैष्टिक यह व्यवस्था थोड़े ही बदल जायेगी ? हाँ वे इसके लाभ से बंचित अवश्य ही रह जायेंगे । जो इस व्यवस्था को जान-समझ देख-परख करके ऐसे जनम-मृत्यु रूप दुःसह यातनाओं से

'तत्त्वज्ञान' प्राप्त रूप विधान से अपने को जोड़कर बच-बचा नहीं लेते ।

कुत्ता :- सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! कुत्ता एक हिंस्र (हिंसक) पशु है । यह हिंसक जानवर होता है जिसके काटने से मनुष्य प्रायः पागल हो जाया करता है, मर भी जाया करता है । जहर के विशेष कष्टकारक इन्जेक्शन लेना पड़ता है आदि आदि। प्रायः कुत्ता हर प्रकार से मनुष्य के लिए हानिकारक हिंसक जानवर होता है। कुत्ता की आवाज (बोली) भोः, भोः, भोः करके होती है जिसका अर्थ आप-आप-आप होता है। पुनः तू-तू की आवाज करने पर कुत्ता तुरन्त ही पास आ जाया करता है। इसकी कोई गारन्टी नहीं है कि कब किस व्यक्ति या बच्चे को कुत्ता काट ले, काटने पर कब कौन पागल हो जाय या कब कौन मर जाय फिर भी मात्र भोः (आप) भोः (आप) भोः (आप) एवं तू-तू बोलने पर आने वाले होने के कारण ऐसा देखा जाता है कि यदि कोई एक डण्डा हल्का भी मार देता है और वह कांयें-कांयें- यानी क्यों-क्यों कहता हुआ भागता है, तो देखने एवं सुनने वाला मारने वाले को बार-बार कोशने लगता है कि ओह ! कौन इस बेचारे कुत्ते को मार दिया ? आखिर यह उसका क्या बिगाड़ा था ? वह तो बड़ा कसाई है भाई, आदि आदि नाना शब्दों से शापित करने लगता है । कोई भी कुत्ते को काटता-खाता नहीं और न ही उसके चमड़े को कोई बजाता पीटता है ।

बन्धुओं ! मात्र मैं-मैं और भोः-भोः का ही रहस्यात्मक प्रभाव बकरी और कुत्ते को मिलता है । इस बात को प्रयोग करके भी देखा जा सकता है । यह अक्षरशः सत्य है । इस मैं-मैं और तू-तू का वास्तव में रहस्य जानने की जिज्ञासा हो तो थोड़ा सा ही तो गौर करने या ध्यान देने की बात है । वह यह कि आप धनवान, पहलवान, विद्वान, बुद्धिमान, साधक, सिद्ध, महात्मा अथवा ज्ञानी ही क्यों न हों, परन्तु स्वयं अपने मुख से कहीं आप ही अपना वर्णन करके देख लेवें कि आपके आस-पास के लोगों में आपके अपने गुणगान को कितने लोग अच्छा तथा कितने लोग खराब मानते हैं । जाँच से पता चलेगा कि शायद कोई भी व्यक्ति आपके कथन को मानने को तैयार नहीं होगा, भले ही आप सत्य ही क्यों न कह रहे हों । ठीक इसके विपरीत आप अपने आस-पास के बन्धुओं का गुणगान करें, भले ही वह अतिशयोक्तिपूर्ण ही क्यों न हो और अपनी न्यूनता, तुक्षता, अकर्मण्यता आदि को प्रदर्शित करें, तो प्रायः अधिकतर लोग ही उल्टे आप का ही गुणगान और अपने प्रति न्यूनता-तुक्षता की बातें करने लगेंगे । यह है मैं-मैं के वर्णन तथा तू-तू के वर्णन का प्रभाव ।

निष्कर्षः- सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! वास्तविकता तो यह है कि मैं-मेरा अथवा हम-हमार से झूठ, नीच, तुक्ष, बुरा तथा घृणित सारी सृष्टि में भी कुछ भी नहीं

है और मैं-मेरा अथवा हम-हमार कुछ नहीं, जो कुछ भी है सब कुछ ही, यहाँ तक कि मैं-मेरा अथवा हम-हमार भी एकमात्र जगत् नियन्ता सृष्टि-संचालक रूप अल्लाहतऽला-गॉड-परमेश्वर या भगवान् रूप परमप्रभु का ही है । इसलिए हम-आप-सभी उस एकमात्र परमप्रभु के प्रति समर्पित-शरणागत भाव में ही बने रहकर उसे प्राप्त करें तत्पश्चात् शरणागत रहते हुये भक्ति-सेवा करते हुये मानव जीवन को मोक्ष रूप मन्जिल दिलाते हुये सार्थक-सफल बनावें --- यही मानव जीवन का चरम और परम उपलब्धि है । आप भी खुदा-गॉड-भगवान् के प्रति सब कुछ तेरा, केवल एकमात्र तू ही मेरा वाला हो जायें, तो यमराज भी आप का कुछ बिगाड़ नहीं सकता या कोई भी किसी भी प्रकार का पीड़ा यातना नहीं दे सकता निःसन्देह आप नरक-स्वर्ग से ऊपर ब्रम्ह लोक-शिव लोक से भी ऊपर अमरलोक परमधाम के निवासी हो जायेगें।

जीव का आवागमन और मोक्ष

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! आप जीव शरीरमय होता रहता हुआ शारीरिक रूप में संसार में कर्त्ता और भोगता बन बैठे हैं जिसका कुपरिणाम यह होता है कि जीव बजाय आत्मामय और परमात्मामय बनने-होने-रहने के, उल्टे शरीरमय और पुनः परिवार संसारमय बनता हुआ अपने असल अस्तित्त्व रूप परमात्मा एवं आत्मा और जीव को भी भूलकर जड़ जगत् मय बनता-फँसता हुआ सांसारिक माया-मोह- ममता-वासना आदि में जकड़ जाता है । भ्रमवश इसी जड़ जगत् रूप व्यक्ति-वस्तु या शरीर-सम्पत्ति या कामिनी-कांचन में भटकता-फँसता-जकड़ता हुआ विनाश के मुख में प्रवेश करता हुआ जनम-करम-भोग-मरण, पुनः जनम-करम-भोग-मरण पुनः पुनः पुनः में पड़ा रहता है । सृष्टि चक्र में आवागमन के रूप में बराबर आता और दुःख-सुख, कष्ट-परेशानी भोगता हुआ जाता रहता है ।

दुःख-कष्ट भोगने हेतु तब तक यह जीव आवागमन चक्र में पड़ा रहता है, जब तक कि भगवदवतार से होता हुआ इस भू-मण्डल पर यह जीव मानव शरीर के माध्यम से निष्कपटता पूर्वक अनन्य जिज्ञासा-श्रद्धा के साथ सर्वतोभावेन अपना तन-मन-धन भगवद्-धर्म या सत्य-धर्म सेवार्थ (धर्म-धर्मात्मा-धरती रक्षार्थ) पूर्णतः समर्पित करता हुआ भगवदवतार के चरणों में अनन्य भक्ति-सेवा-प्रेम भाव से ही एक मात्र भगवद् शरणागत भाव में होता-रहता हुआ, आजीवन यानी शरीर पर्यन्त स्थित रहता हुआ भगवद्ज्ञान या सत्य ज्ञान या तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता; मुक्ति और

अमरता प्राप्त नहीं कर लेता। अद्वैतत्त्व बोध प्राप्त नहीं कर लेता। शाश्वत् शान्ति एवं शाश्वत् आनन्द रूप सच्चिदानन्द रूप सदा-सदा के लिए सदा आनन्दमय अपने (जीव) को बनाता हुआ यह समझ नहीं जाता कि क्रमशः सालोक्य मुक्ति, सामीप्य मुक्ति, सारूप्य मुक्ति की तरफ जीव अपने को आगे बढ़ते कदम में कदम मिलाकर एकमात्र भगवत् प्रेम-पात्र जब तक बन या हो नहीं जाता, तब तक वह आवागमन का चक्कर बन्द या समाप्त हो नहीं सकता । जीव को जब भी हो, यही करना होगा । जीव की अन्तिम और सर्वोच्च उपलब्धि भोग नहीं अपितु मोक्ष ही होता है ।

जीव का कार्यक्षेत्र

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! जीव का कार्यक्षेत्र मुख्यतः चार भागों में-- चार श्रेणियों में अथवा चार स्तरो पर बंटा होता है । जो क्रमश : इस प्रकार है--

१ संसार एवं शरीर के बीच शरीरमय और शरीर प्रधान रहता हुआ;

२. शरीर और जीव के बीच जीवमय और जीव प्रधान रहता हुआ;

३. जीव और आत्मा के बीच आत्मामय या ब्रम्हमय या ईश्वरमय-शिवमय और आत्मा-ईश्वर-शिव प्रधान रहता हुआ और

४. आत्मा और परमात्मा या परमेश्वर या परमब्रम्ह या खुदा-गॉड भगवान् के बीच परमात्मामय या परमेश्वरमय या परमब्रम्हमय या भगवन्मय खुदा-गॉड-भगवान् प्रधान रहता हुआ ।

क्रियाशील रूप में इन चारों श्रेणियों में जिस श्रेणी में रहता हुआ जिस क्षेत्र में क्रिया-कलाप करता है, उसी क्षेत्र के प्रभाव से वह प्रभावित रहता है। जीव के लिये इन चारों क्षेत्रों में सफलता हेतु चार प्रकार की जानकारी की विधि भी परमप्रभु ने निर्धारित कर रखा है जो इस प्रकार है --

१. शरीरमय रहता हुआ जीव की सांसारिक जीवन में कर्म और भोग की जानकारी हेतु जो जानकारी सुनिश्चित हुई है, वह है शिक्षा (Education) यानी सांसारिक जीवन में सफल करम और भोग हेतु 'शिक्षा' एक अनिवार्यतः विधान है जिसके वगैर करम या भोग की कोई जानकारी और लाभ वास्तविक रूप में नहीं प्राप्त हो सकता। शरीर प्रधान अर्थात् कर्म और भोग प्रधान जीवन मात्र तो पशुवत् उपाधि वाला होता है । नहीं मानना और मानना तो अलग बात है मगर होता है पशुवत् ही

२. जीव भाव में रहते हुए जीव को शरीर और जीव के बीच कार्य करते हुए स्थित रहने वाले जीव (स्व) के लिए जो जानकारी तय या निश्चित की गई है या

निश्चित की हुई है, वह है स्वाध्याय (Self Realization) । जीव भाव रूप (अपने शरीर से पृथक् सूक्ष्म रूप में जीव के अस्तित्त्व को जो इसका अपना 'स्व'रूप है) में कायम या स्थित रहते हुए सांसारिकता में जीवन सफल बनाने हेतु 'स्व' अध्याय (अध्ययन विधान) अर्थात् स्वाध्याय । रूह-सेल्फ-जीव जीवत्त्व या स्वत्त्व भाव के अनुभूति-आनन्दानुभूति हेतु स्वाध्याय एक अनिवार्य विधान है। स्वाध्याय रहित सांसारिकता में जीवन यापन करने वाला शरीरमय जीव, शरीर से पृथक् अपने 'स्व' रूप में कायम नहीं रह सकता है । इसलिए जीव के दर्शन और इस यादगार के लिए कि 'हम' शरीर नहीं है बल्कि 'जीव' है, के लिए सांसारिकता से गुजरते हुए स्वाध्याय नित्यशः सुबह-शाम अवश्य करना चाहिए, अतिरिक्त योगी और तत्त्वज्ञानी के । स्वाध्याय से कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए । उसके लिए (जीव भाव के लिये) स्वाध्याय ही है । शरीर प्रधान अर्थात् कर्म और भोग प्रधान जीवन पशुवत् उपाधि वाला होता है तो स्वाध्यायी जीवन मनुष्यत्व या पुरुषत्व उपाधि वाला । ऐसा ही है। नहीं मानना और मानना तो अलग बात है । मगर सही यह ही है ।

३ जीव का आत्मामय या ब्रम्हमय या शिवमय रहता हुआ शान्ति और आनन्द (PEACE AND PLEASURE) रूप चिदानन्द या ब्रम्हानन्द या चेतनानन्द (BLISS) की अनुभूतिपरक जानकारी प्राप्ति हेतु जो विधान या जानकारी निश्चित् की गई या हुई है, वह है योग या साधना या अध्यात्म (Yoga or Spritualization)। यानी जीव को सांसारिक माया से अपने को बचाकर आत्मा-ब्रम्ह या ईश्वर या नूर या सोल ज्योतिर्मय शिव को जानने-साक्षात्कार करने तथा उससे मेल-मिलाप कायम करते हुये उसीमय रहने के लिए यह अनिवार्यतः विधि-विधान है । योग-साधना या अध्यात्म के क्रियात्मक अभ्यास के वगैर कोई जीव शरीर और सांसारिकता से विलग नहीं हो सकता, तत्त्वज्ञानी या भगवद् ज्ञानी या सत्यज्ञानी के अतिरिक्त।

इसलिए मोह-माया-ममता-वासना आदि के फॅसान से अपने को हटा-छुड़ा या निकाल कर जीव शरीरपर्यन्त आत्मामय या ईश्वरमय या ब्रम्हमय रहता हुआ शरीर छोड़ेगा, तब वह उस आत्मानन्द या दिव्यानन्द या ब्रम्हानन्द या चिदानन्दमय रहता हुआ शिवलोक या ब्रम्हलोक को प्राप्त कर पाता है । यह शिव-शक्ति या आत्म-शक्ति या ब्रम्ह-शक्ति का विधान है । इसलिए शरीर छोड़ने पर शिव लोक या ब्रम्ह लोक ही प्राप्त होता है, अमर लोक या परमधाम नहीं। अमरलोक अथवा परमधाम तो तत्त्वज्ञानी के लिए है । योग-साधना या अध्यात्म और आत्मा-ईश्वर-नूर-सोल-शिव प्रधान जीवन महापुरुषत्व उपलब्धि वाला होता है।

४. जीव को भगवत् प्राप्ति और मुक्ति और अमरता की प्राप्ति-- भगवन्मय हुये-रहे वगैर नहीं हो सकती है । परम शान्ति, परम आनन्द, परम गति, परमपद, परम धाम, मुक्ति व अमरता रूप अमर लोक में निवास आदि की साक्षात् बोध प्राप्ति खुदा-गॉड-भगवान् के सिवाय अन्य कोई भी, ब्रम्हा-इन्द्र-शंकर और आदि-शक्ति भी, नहीं प्रदान कर सकता है । यह सब परमप्रभु रूप खुदा-गॉड-भगवान् से ही सम्भव है। अन्य किसी से भी सम्भव ही नहीं ।

खुदा-गॉड-भगवान् भू-मण्डल पर रहता ही नहीं, फिर उसे कोई अपने प्रयत्न मात्र से कैसे खोज या प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् नहीं पा सकता। खुदा-गॉड-भगवान् सदा-सर्वदा परम आकाश रूप परमधाम रूप अमरलोक या बिहिस्त या पैराडाइज में परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम्-गॉड-अलम शब्दरूप में 'सदानन्दमय' रहता है । उसके पास अपने प्रयत्न से कोई भी नहीं जा सकता, कोई भी नहीं पहुँच सकता । जाना-पहुँचना तो दूर की बात है, उसकी यथार्थतः जानकारी भी उसके तथा पार्षदों के अलावा उसे या उसके परम धाम रूप अमर लोक को कोई जानता तक नहीं । ब्रम्हा और शंकर जी तक को भी उस परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम्-गॉड-अलम् शब्दरूप शब्दब्रम्ह रूप परमब्रम्ह तथा उसके परम आकाश रूप परम धाम रूप अमर लोक तक की जानकारी भी नहीं होती तो और की बात ही क्या की जा सकती है !

यही कारण है कि आदि-शक्ति भी मुक्ति-अमरता प्रदान नहीं कर सकतीं क्योंकि यह एकमात्र परमप्रभु रूप खुदा-गॉड-भगवान् हेतु ही सदा-सर्वदा-सर्वथा आरक्षित एवं सुरक्षित होता या रहता है, जिसे एकमात्र भगवदवतार के अनन्य भक्त, अनन्य सेवक एवं अनन्य प्रेमी गण ही उसी के प्रति सर्वतोभावेन शरणागत होते रहते हुये, उसी का कृपा पात्र होकर, उसी के द्वारा देय ज्ञान, भगवद्ज्ञान या सत्यज्ञान या तत्त्वज्ञान द्वारा प्राप्त कर सकते हैं ।

संसार, शरीर, जीव, ईश्वर और परमेश्वर तक का सम्पूर्ण ज्ञान (अशेष ज्ञान) हेतु जो विधान तय या निश्चित् हुआ है, एकमात्र तत्त्वज्ञान रूप भगवद्ज्ञान रूप सत्यज्ञान ही वह विधान है जिसके अन्तर्गत शिक्षा, स्वाध्याय और अध्यात्म ज्ञान रूप तीनों ही स्थित रहते हैं । एकमात्र तत्त्वज्ञान ही, सत्यज्ञान ही, वास्तव में 'वास्तविक सत्य विधान' है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! यहाँ पर जीव को शरीर के माध्यम से कार्य करने के चारों कार्यक्षेत्रों का विभागीय बँटवारा करके वैसी ही शिक्षा-दीक्षा की भी, व्यवस्था भगवत् कृपा विशेष से हो चुकी है; जिसका साराँश में तो यहाँ पर उल्लेख हो रहा है। जैसे--

विद्यातत्त्वम् में क्रमशः चार श्रेणियाँ

विद्यातत्त्वम् के चारों अंग क्रमशः हैं--

१. शिक्षा (Education); २. स्वाध्याय (Self Realization); ३ योग-साधना या आध्यात्मिक प्रक्रिया (Spiritualization) और ४ तत्त्वज्ञान या भगवद् ज्ञान अथवा सत्य ज्ञान पद्धति (True, Supreme and Perfect KNOWLEDGE)

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' के प्रति आप पाठक एवं श्रोता बन्धुओं के समक्ष भगवत् कृपा विशेष से प्राप्त यह सदानन्द भी एक 'मत' रख रहा है, वास्तविक सत्य हेतु इसकी उपयोगिता भी आप स्वयं अनुभव करें और बोधित होते हुए 'सत्य' को जानें-देखें-परखें-पहचानें।

'विद्यातत्त्वम् पद्धति' इतना आसान नहीं होता कि जो चाहे वही जना दे और जैसे चाहा जाय वैसे जान लिया जाय । भगवत् कृपा से सदानन्द तो इस बात पर जितना जोर दिया जा सकता है, उससे भी अधिक जोर देते हुये यह अकाट्य निश्चयात्मक 'मत' प्रस्तुत कर रहा है कि --

"सृष्टि में यदि कोई गूढ़तर बात है तो उसमें सबसे गूढ़तम् इस 'वास्तविक सत्य' को जानना और देखना-परखना ही है ।"

दो बातें

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जब भी इस 'वास्तविक सत्य' यानी विद्यातत्त्वम् की चर्चा भगवत् कृपा से करना चाहते हैं, तो प्रमुखतया दो बातें इनके सामने खड़ी हो जाती है---

पहली बात यह कि 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' की वास्तविक जानकारी देने पर पाठक बन्धुगण को सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द एक अंहकारी लगने लगता है और दूसरी बात यह है कि भगवद् धर्म या सत्य धर्म रूप सनातन धर्म का संस्थापक एवं संरक्षक होने के कारण यह सत्य से हटकर कुछ लिख ही नहीं सकता है । कारण कि यह 'सदानन्द' शरीर तो भगवान् के ही कार्य सम्पादन के लिये भगवान् द्वारा ही प्रयुक्त एक यन्त्रवत् मानव आकृति मात्र है, जो 'सत्य धर्म' हेतु ही संकल्पित एवं समर्पित है । यह आद्योपान्त सत्य बात है कि सदानन्द नाम रूप वाला यन्त्रवत् मानव आकृति सत्य ही कहने बोलने व लिखने हेतु मजबूर है।" इसलिये भगवत् कृपा विशेष के

सहारे यह सदानन्द यन्त्रवत् मानव आकृति सत्य ही, 'एकमात्र सत्य ही' लिख रहा है । इसे जानना-देखना-समझना तथा आपके स्वभाव के अनुकूल या प्रतिकूल जैसा लगे वैसा ही व्यवहार लेना-देना आप पाठक एवं श्रोता बन्धुओं पर आधारित है ।

यह भी एक 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' का ही अंश होने के कारण सत्य का ही है कि आपके मानने या नहीं मानने से वास्तव में 'विद्यतत्त्वम् पद्धति' पर कोई असर या प्रभाव पड़ने को नहीं है । यदि असर पड़ने वाला है तो वह मात्र आपके जीवन पर ही पड़ने वाला है । इसलिए भगवान् के तरफ से ही, भगवत् कृपा विशेष के सहारे ही 'सदानन्द नाम-रूप वाला यन्त्रवत् मानव आकृति' जो कुछ 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' को जाना और देखा है तथा भगवत् कृपा विशेष से ही जहाँ तक समझ सका हैं, आप पाठक एवं श्रोता-बन्धुओं के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है। इसे जानना-समझना तथा अपने जीवन को 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' हेतु समर्पित-शरणागत होता हुआ ईमान-संयम-सच्चाई से स्थित रहना या न रहना, आपकी बात है । जैसा करेंगे वैसा पायेंगे । यह ही सत्य है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! इस सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड में यदि गोपनीय से भी गोपनीय कोई बात या चीज है तो उसमें सबसे अधिक गोपनीय यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' ही है । इसमें यदि कोई सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कोई बात है तो उसमें यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' उससे भी सूक्ष्म है । इसमें (इस ब्रम्हाण्ड में) यदि विशालकाय से भी विशालकाय कोई बात या वस्तु है तो उसमें यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' उससे भी परम विशालकाय है। इसमें यदि कोई शक्तिमान से भी शक्तिमान है तो उससे भी यह विद्यातत्त्वम् सर्वाधिक यानी सर्वथा परम शक्तिमान है। इसमें यदि कोई उत्तम से भी उत्तम है तो यह उससे भी उत्तम अर्थात् सर्वोत्तम् है । यदि इस ब्रम्हाण्ड में कोई श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर है तो यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' उससे भी अत्यधिक श्रेष्ठ अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है । इसमें यदि कठिन से भी कठिन कोई है तो यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' उससे भी अत्यधिक कठिन है । इसमें यदि कोई आसान (सहज) से भी आसान है तो यह उससे भी अत्यधिक आसान (सहज) है । इसमें यदि कोई सुगम से भी सुगम है तो यह उससे भी अत्यधिक सुगम है । इसमें यदि कोई दयालु से भी दयालु है तो यह उससे भी अत्यधिक दयालु है। इसमें यदि किसी भी विषय-वस्तु-बात-शक्ति-सत्ता वाला है तो यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति'उससे भी अधिक विषय-वस्तु बात-शक्ति-सत्ता अर्थात् परमसत्ता ही है। यदि सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड में ही कोई सत्य-धर्म न्याय-नीति वाला से भी अधिक सत्य-धर्म-न्याय-नीति वाला भी है तो यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' उससे भी अधिक (सर्वाधिक) सत्य-धर्म-न्याय-नीति वाला है । यदि कहीं शिक्षा-स्वाध्याय-अध्यात्मज्ञान आदि

में चाहे जितनी भी अधिक जानकारी क्यों न हो परन्तु इस 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' में उससे भी अत्यधिक अर्थात् सर्वाधिक शिक्षा-स्वाध्याय-अध्यात्म ज्ञान है, क्योंकि 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' ही वास्तव में 'तत्त्वज्ञान' पद्धति है और 'तत्त्वज्ञान' ही सम्पूर्ण ज्ञान है ।

शिक्षा, स्वाध्याय और अध्यात्म ज्ञान रूप तीनों ही 'तत्त्वज्ञान' के क्रमशः अंश मात्र है और वास्तव में यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' ही ज्ञान (तत्त्वज्ञान) है' अर्थात् किसी भी मामले में कोई बड़ा से बड़ा,उँचा से उँचा, उत्तम से उत्तम, सूक्ष्म से सूक्ष्म, विशालकाय से विशालकाय यानी किसी भी मामले में कोई कितना ही क्यों न हो यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' उससे भी अत्यधिक अर्थात् उसी-उसी मामले में सर्वाधिक-सर्वोच्च-सर्वोत्तम है ।

उपसंहार

अन्ततः 'वास्तविक सत्य' अतुलनीय है । इसी 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' में वास्तव में खुदा-गॉड-भगवान् भी है और एकमात्र यही ज्ञेय भी है। इसको प्राप्त होते ही करोड़ो-करोड़ो जन्मों के पाप कुकर्मों से मुक्ति बार-बार करोड़ो बार के जन्म-मृत्यु रूप दुःसह दुःख यातनाओं से मुक्ति, काल-कर्म के चक्कर से मुक्ति और 'मुक्ति और अमरता' भी स्पष्टतः बोध सहित साक्षात् दिखायी देने लगता है।

बन्धुओं ! वास्तव में जो कोई भी इस 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' को जान लेता है-- श्रद्धा-जिज्ञासा एवं अनन्य भक्ति सेवा भाव से निष्कपटता पूर्वक इसे जान लेता है-- प्राप्त कर लेता है-- बोधित हो जाता है, वास्तव में उसे कुछ भी जानना-देखना-पाना शेष नहीं रह जाता । यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' सदा से यानी आदि सृष्टि के आदि से भी पूर्व से सदा एक रूप, सदा एक ही नाम, सदा से एक ही धाम तथा सदा से एक ही ज्ञान वाला हुआ चला आ रहा है और अन्तिम सृष्टि के अन्त के पश्चात् भी यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' उसी एक ही नाम वाला, उसी एक ही रूप वाला, उसी एक ही धाम वाला तथा उसी एक ही ज्ञान वाला भी रहेगा । इसीलिए यह अमर, मुक्त और परमानन्द रूप सदानन्द 'अद्वैत् तत्त्व' ज्ञान वाला है । एक मात्र यही मुक्ति और अमरता वाला है । यह 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' सदा-सर्वदा ही परम भाव-प्रभाव युक्त परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप खुदा-गॉड-भगवान् परमधाम में ही रहता है जो अवतरण बेला में धराधाम पर अवतरित होकर 'सत्य-धर्म' संस्थापित करते-करवाते हुए 'धर्म-धर्मात्मा-धरती' की रक्षा करते-कराते है। ये भगवदवतार रूप पूर्णावतार ही सच्चा सद्गुरू भी होते है ।

व्यक्ति के क्षेत्र-स्थिति और उपलब्धि की यथार्थ पहचान

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! 'वास्तविक सत्य' को जानने समझने, देखने-परखनें-पहचानने-अपनाने के लिये इन(१ शिक्षा २ स्वाध्याय ३ योग-साधना अध्यात्म और ४ तत्त्वज्ञान चारों की यथार्थतः जानकारी होना अनिवार्य है । इसमें शरीरधारी जीव किस कार्य-क्षेत्र में कार्य कर रहा है, उससे बात करने मात्र से ही कुछ ही सेकेण्डों-मिनटों में ही जान-समझ लिया जा सकता है कि यह शरीरधारी जीव किस क्षेत्र में कार्य कर रहा है । जैसे यदि--

१ सांसारिक होने पर उसके वाणी से शिक्षा और शरीर-परिवार सम्बन्ध के विकास-उत्थान का ही गुणगान या महत्ता सुनने-देखने जानने-समझने तथा रहने की चर्चा मिलेगी यानी कर्म और भोग मात्र की प्रधानतया चर्चा-बातें होंगी;

२ स्वाध्यायी होने पर उसके वाणी से स्वाध्याय और 'अहं ब्रम्हास्मि' सहित आनन्दानुभूति सम्बन्धी ही गुणगान या महत्ता सुनने-देखने, जानने-समझने तथा स्वाध्याय करते रहने की चर्चा मिलेगी;

३ आध्यात्मिक होने पर उनके वाणी से योग-साधना अथवा अध्यात्म और आत्मा या ईश्वर या ब्रम्ह या दिव्य या चेतन या नूर या डिवाइन लाइट या सोल, आत्म-ज्योति या ब्रम्ह ज्योति या दिव्य ज्योति या ज्योति रूप शिव सम्बन्धी महत्ता ही सुनने-देखने-समझने तथा योग-साधना.अभ्यास या आध्यात्मिक क्रियाओं का अभ्यास करने और चिदानन्दमय रहने की चर्चा ही मिलेगी तथा अन्ततः

४ तात्त्विक होने पर उनके वाणी से भगवद्ज्ञान या तत्त्वज्ञान या सत्यज्ञान और परमात्मा या परमेश्वर या परमब्रम्ह या अल्लाहतआला या खुदा या गॉड या भगवान् सम्बन्धी गुणगान या महत्ता ही सुनने-देखने, जानने -समझने तथा अनन्य श्रद्धा भक्ति से निष्कपटता पूर्वक सर्वतोभावेन भगवद् शरणागत होने, परम शान्ति और परमानन्द के साथ ही साथ मुक्ति और अमरता का साक्षात् बोध प्राप्त करने, भगवद् भक्ति, भगवद् सेवा, प्रेम, भगवद् गुणगान एवं सत्संग की महिमा आदि की चर्चा ही बराबर सुनने-देखने को मिलेगी। इसमें कर्म-भोग और योग-साधना-अध्यात्म ज्योति आदि का कोई गुणगान-महत्ता आदि नहीं होता ।

इस प्रकार थोड़ी भी सावधानी के साथ किसी शिक्षित व स्वाध्यायी व आध्यात्मिक व तात्त्विक के साथ वार्ता करने पर कुछ सेकेण्ड-मिनट में ही यह स्पष्ट हो जाया करेगा

कि वह व्यक्ति किस क्षेत्र का रहने वाला और कौन है-- शरीरमय है कि 'स्व' रूप (जीव) मय; आत्मामय है कि परमात्मामय । इन चारों में से कौन किस क्षेत्र का रहने वाला है । जिस क्षेत्र का रहने वाला होगा, उसी क्षेत्र के हानि-लाभ-क्षमता-शक्ति-उपलब्धि वाला होगा-उसी वाला ही होगा । दूसरे क्षेत्र वाले को दूसरे-दूसरे क्षेत्र वाला लाभ उपलब्धि नहीं मिल सकता कदापि नहीं मिल सकता-- मिल ही नहीं सकता । सब भगवत् कृपा ।

१. शिक्षा (Education),

२. स्वाध्याय (Self Realization),

३. अध्यात्म (Spiritualization) तथा

४. तत्त्वज्ञान (True, Supreme and Perfect KNOWLEDGE)

अथवा विद्यातत्त्वम् पद्धति । इन चारों पद्धतियों का विस्तृत विवरण आगे दिया गया है ।

शिक्षा (Education)

शिक्षा पद्धति

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! शिक्षा प्रणाली आज की इतनी गिरी हुई एवं ऊल-जलूल है कि आज क्या दी जानी चाहिए ? और शिक्षा क्या दी जा रही है यह तो ऐसा लग रहा है कि शिक्षार्थी तो शिक्षार्थी ही है, यदि शिक्षक महानुभावों से भी पूछा जाय, तो वे महानुभाव भी पूरब के वजाय पश्चिम और उत्तर के वजाय दक्षिण की बात बताने-जनाने लगेंगे। इसमें उनका भी दोष कैसे दिया जाय, क्योंकि जो जैसे पढ़ेगे-जानेंगे, वे वैसे ही तो पढ़ायेंगे-जनायेंगे भी । इसमें उनक्रा दोष देना भी व्यर्थ की बात दिखलाई देती है । दोष तो इस शिक्षा पद्धति के लागू करने-कराने वाली व्यवस्था रूप सरकार को ही देना चाहिए । परन्तु वह भी तो इसी शिक्षा से गुजरे हुये व यहीं शिक्षा पाये हुये लोगों से बनी एक व्यवस्था है । यह बात भी सही ही है कि शिक्षा प्रणाली ही दोषपूर्ण है । यह आभाष तो प्रायः सभी को ही हो रहा है । प्रायः सभी अपने-अपने क्षमता भर आवाज भी उठा रहे है। सभी यह कहते हुये सुनाई दे रहे हैं कि शिक्षा का आमूल परिवर्तन होना चाहिए परन्तु वर्तमान शिक्षा को समाप्त कर क्योंकि वर्तमान शिक्षा पद्धति वही (आसुरी) कामिनी-कांचन प्रधान है जिसे हिरण्य कश्यप (पिता) के सभी प्रयासों के बावजूद भी प्रहलाद ने नहीं पढ़ा था । उसके स्थान पर नई कौन सी

और कैसी शिक्षा हो या होना चाहिए, यह बात या सिद्धान्त या फार्मूला कोई नहीं दे रहा है कि शिक्षा में यह बात या यह विधि-विधान या ऐसी प्रणाली लागू किया जाय ।

'शिक्षा' पूर्णतः ब्रम्हाण्डीय विधि-विधान पर ही आधारित हो

भगवत् कृपा विशेष से प्राप्त सदानन्द का 'मत' तो यह है कि--"शिक्षा पिण्ड और ब्रम्हाण्ड में आपसी ताल-मेल बनाये रखने वाली होनी चाहिए !"

वास्तव में जब तक पिण्ड और ब्रम्हाण्ड के तुलनात्मक अध्ययन के साथ उसमें आपस में तालमेल बनाये रखने हेतु पृथक्-पृथक् पिण्ड और ब्रम्हाण्ड की यथार्थतः प्रायौगिक और व्यवहारिक जानकारी तथा ब्रम्हाण्डीय विधान मात्र ही पिण्ड का भी विधि-विधान यानी स्थायी एवं निश्चयात्मक विधि-विधान ही नहीं होगा तथा एक मात्र ब्रम्हाण्डीय विधि-विधान को अध्ययन पद्धति या शिक्षा प्रणाली के रूप में लागू नहीं किया जायेगा, तब तक अभाव एवं अव्यवस्था दूर नहीं किया जा सकता है, कदापि दूर नहीं हो सकता ।

'यह भगवद् वाणी ही है !'

सियार की तरह से हुआँ-हुआँ-हुआँ तथा कुत्तों की तरह से भौं-भौं-भौं से काम धाम नहीं चलने को है। अभाव एवं अव्यवस्था तब तक दूर नहीं हो सकती । जब तक कि ब्रम्हाण्डीय विधि-विधान को ही पिण्डीय विधि-विधान रूप में शिक्षा विधान को स्वीकार नहीं कर लिया जायेगा । 'शिक्षा को ब्रम्हाण्डीय विधि-विधान अपनाना ही होगा, चाहे जैसे भी हो।' सब भगवत् कृपा पर आधारित ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! यहाँ पर चारों क्षेत्रों में अपने-अपने क्षेत्र में सफल जीवन हेतु अपनी-अपनी जानकारी से सम्बन्धित तय या निश्चित किये हुये विधान के अनुसार ही रहना-चलना चाहिए । शारीरिक और सांसारिक विषय-वस्तुओं को सही-सही समझने हेतु सही जानकारी आवश्यक होता है और सही जानकारी के लिए, सांसारिक जानकारी व पहचान के लिए, शिक्षित होना पड़ेगा। यहाँ 'शिक्षित' शब्द से मतलब है शैक्षिक दृष्टि से युक्त होना । अपनी स्थूल दृष्टि के बावजूद भी शिक्षा भी एक दृष्टि ही होती है, जो एक प्रकार से शारीरिक आँख के साथ ही साथ शिक्षा दृष्टि भी कायम हो जाती है, जिससे पत्र-पत्रिकाओं, ग्रन्थ-सद्ग्रन्थ आदि के माध्यम से एक जानकारी मिलती है, जो भविष्य-जीवन हेतु उत्प्रेरण एवं पथ प्रदर्शन का कार्य करती है ।

नाम और रूप

अब यहाँ पर यह जाना-देखा जायेगा कि हर क्षेत्र में ही लक्ष्य कार्य हेतु जानकारी मुख्यतः दो माध्यमों से होता है । वे हैं-- 'नाम' और 'रूप'। नाम को शब्द के माध्यम से कह-सुनकर तथा रूप को देखकर ही जान-पहचान की प्रक्रिया पूरी होती है । संसार में चाहे जितने भी विषय-वस्तु है, सभी 'नाम-रूप' दोनों से ही अवश्य ही युक्त होते हैं । हालांकि स्पर्श, स्वाद और गन्ध भी जानने-पहचानने में सहयोगी होता हैं, परन्तु मुख्यतः 'नाम-रूप' ही होता है । मगर एक बात याद रहे कि कोई भी भौतिक विधान खुदा-गॉड-भगवान् भगवद् विधान पर लागू नहीं हो सकता ।

सांसारिकता के समान ही शारीरिक जानकारी व परिचय-पहचान भी 'नाम-रूप' से ही होता है । कोई ऐसा सांसारिक प्राणी नहीं होगा, जो 'नाम-रूप' से रहित हो। यही कारण है कि जान-पहचान 'नाम-रूप' मुख्यतः दो के माध्यम से ही होता है । जिस प्रकार शरीर का 'नाम-रूप' होता है । वास्तव में उसी प्रकार जीव का भी इससे पृथक् अपना 'नाम-रूप' होता है । नाम से जानकारी मिलता है तथा रूप से पहचान प्राप्त होता है। जीव को जानने और पहचानने, दोनों से ही युक्त जो विधि-विधान है, वही 'स्वाध्याय' (Self realization) है । 'स्वाध्याय' से तात्पर्य 'स्व' के अध्ययन यानी जानकारी व पहचान से है। इसमें श्रवण, मनन-चिन्तन और निदिध्यासन की क्रिया प्रमुखतया आती या होती है । निदिध्यासन के अन्तर्गत जीव शरीर से बाहर निकल कर क्रियाशील रूप में स्पष्टतः दिखलाई देता है। निदिध्यासन के वगैर अन्य किसी भी पद्धति से जीव का स्पष्टतः दर्शन सम्भव नहीं है । हालाँकि सूक्ष्म दृष्टि के माध्यम से स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर रूप जीव दोनों को अर्थात् दोनों की जानकारी को पकड़ा जाता है। जब भी हमको शरीर से पृथक् सूक्ष्म शरीर रूप जीव का दर्शन होगा, तो अपने को दिखलाई देगा कि हम निदिध्यासन के अन्तर्गत ही हैं और स्वाध्याय से ही हम जीव भाव या 'स्व' रूपमय स्थित भी रह सकते हैं । इसमें इन्द्रियाँ सहायक नहीं होती हैं। इन्द्रियाँ तो पाँच ज्ञान यानी जानकारी करने-कराने वाली तथा पाँच कर्म यानी जानकारी के अनुसार कार्य करने वाली प्रायः प्रत्येक मानव को ही प्राप्त होती हैं ।

सारी सृष्टि ही पाँच पदार्थ-तत्वों से बनी है जो क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और थल नाम से जानी जाती है । चूँकि सृष्टि की प्रायः सभी जड़वत् वस्तुएँ इन्हीं पाँच पदार्थ तत्वों से बनी हुई हैं तो जिसमें जिस पदार्थ तत्व की प्रधानता होती है, उसे उसी विभाग के माध्यम से अच्छी जानकारी और पहचान मिलती है । किसी दूसरे

पदार्थ तत्त्व प्रधान को दुसरे विभाग से अच्छी या ठोस व सही-सही जानकारी व पहचान नहीं मिल सकती है । वे पाँच विभाग पाँचों पदार्थ तत्वों के आधार पर ही बने हैं, जो अपने विधान के अनुसार समान रूप से आदि सृष्टि से ही गतिशील होते आ रहे हैं ।

१. आकाश तत्व विभाग

(Origin and Position of the Sky)

यह आकाशतत्व स्थूल सृष्टि रचनाक्रम में पहले स्थान पर आता है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्य पदार्थों की तरह सामान्यतः यह उत्पन्न और नष्ट नहीं होता-रहता है, बल्कि जैसे इसका 'महत्तत्व' शक्ति से उत्पत्ति होता है वैसे महाप्रलय के समय ही 'महत्तत्व' शक्ति में ही विलीन भी हो जाया करता है। आकाश तत्व विभाग के अन्तर्गत आकाश तथा आकाश से सम्बन्धित वे सारी वस्तुएँ, उनकी जानकारी व पहचान तथा उनके आवश्यकतानुसार प्रयोग-उपयोग सम्बन्धी बातें होती-रहती हैं । आकाश का सूक्ष्म विषय 'शब्द' है, यानी 'शब्द' के माध्यम से ही आकाश तथा आकाश तत्व प्रधान वस्तुओं की जानकारी प्राप्त होती है। आकाश पदार्थ तत्व प्रथम व एक इकाई वाला होने के कारण, वह अन्य किसी भी विभाग से जाना-समझा-पहचाना नहीं जा सकता है । इसकी सही-सही जानकारी एक मात्र 'शब्द' से ही हो सकती है, अन्यथा नहीं । इसमें स्पर्श, रूप, रस या स्वाद तथा गन्ध नाम की कोई बात नहीं होती या रहती है । इसलिए कि उनकी इसमें पहुँच नहीं है । यह उन सभी से अति सूक्ष्म होता है । कान और वाणी ही आकाश तत्व की क्रमशः ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय हैं । इसकी सारी जानकारियाँ और क्रियाकलाप आदि सब कुछ ही 'शब्द' एकमात्र 'शब्द' के द्वारा ही होता हैं । कान जानकारियों को ग्रहण (प्राप्त) करता-रहता है और वाणी जानकारियाँ प्रकट और प्रेषित करती रहती है ।

२. वायु तत्व विभाग

(Origin and Position of the Air)

यह स्थूल सृष्टि रचनाक्रम में दूसरे स्थान पर आता है । अर्थात् सृष्टि रचनाक्रम में पहला आकाश तत्पश्चात् आकाश के अन्तर्गत ही वायु तत्व की रचना या उत्पत्ति की गयी या हुई । वायु तत्व विभाग आकाश तत्व विभाग के अन्तर्गत व अधीन ही रहता हुआ अपने सूक्ष्म विषय 'स्पर्श' के माध्यम से ही वायु प्रधान विषय-वस्तुओं की

जानकारी व पहचान तथा उसके आवश्यकतानुसार प्रयोग-उपयोग सम्बन्धी बातें होती-रहती हैं । वायु तत्व दो इकाइयों से बना होता है, जिसमें एक इकाई आकाश भी उसमें समाहित रहता है । इसलिए वायु तत्व तथा वायु प्रधान विषय वस्तुओं पर गौण रूप से आकाश तत्व विभाग की दृष्टि भी रहती है । यहाँ गौण कहने से तात्पर्य यह है कि वायु तत्व विभाग का अपने लक्ष्य कार्य सम्पादन में यह विरोध व बाधा न उत्पन्न करके बल्कि उसे बढ़ोत्तरी और सहयोग करने हेतु ही होता है । वायु तत्व विभाग से सम्बन्धित विषय-वस्तुओं की जानकारी के लिए शरीर में त्वचा नामक ज्ञानेन्द्रिय तथा हस्त (हाथ) नामक कर्मेन्द्रिय की रचना या उत्पत्ति हुई । यानी वायु तत्व प्रधान जानकारी 'स्पर्श' के माध्यम से 'त्वचा' करेगी तथा उसके पश्चात् आवश्यकतानुसार उसके सहयोगी रूप कर्मेन्द्रिय उसका कार्य करेगी । ज्ञानेन्द्रिय प्रधान और कर्मेन्द्रिय सहायक के रूप में पद स्थापित होते हैं जिसके अनुसार अपना लक्ष्य कार्य सम्पादन करते हैं। वायु तथा वायु तत्व विभाग के विषय-वस्तु को जानने-समझने में शब्द भी सहयोग कर सकता है परन्तु स्पष्टतः पहचान इसका स्पर्श से ही होता है। रूप, रस या स्वाद एवं गन्ध की पहुँच स्पर्श में नहीं होती है क्योंकि स्पर्श इन तीनों से ही अति सूक्ष्म होता है यानी सूक्ष्मताक्रम में 'स्पर्श' के पहले 'शब्द' ही आता है । रूप-रस-गन्ध तो पश्चात् के पदार्थ तत्वों में होता है ।

३. अग्नि तत्व विभाग
(Origin and Position of the Fire)

अग्नि तत्त्व विभाग के अन्तर्गत अग्नि तथा अग्नि से सम्बन्धित वे सारी विषय-वस्तुयें, उनकी जानकारी व पहचान तथा उसके आवश्यकतानुसार प्रयोग-उपयोग सम्बन्धी समस्त जानकारियां व पहचान तथा उसके आवश्यकतानुसार प्रयोग-उपयोग सम्बन्धि समस्त बातें ही होती-रहती हैं । अग्निं तत्व का सूक्ष्म विषय 'रूप' है, यानी रूप के माध्यम से ही अग्नि तत्व तथा उससे सम्बन्धित विषय-वस्तुओं की जानकारी व पहचान होता है । हालाँकि अग्नि तत्व तीन इकाइयों से बना होता है- शक्ति, आकाश और वायु ही तीन मिलकर अग्नि तत्व की रचना या उत्पत्ति करते या होते हैं-- जैसे कि वायु दो इकाइयों 'शक्ति-आकाश' तथा आकाश केवल एक इकाई 'शक्ति' द्वारा ही रचित या उत्पन्न हुआ, जबकि अग्नि में 'शक्ति-आकाश-वायु' तीनों ही समाहित होते हैं । इसलिए इन तीनों की अधीनता क्रमशः शक्ति के अधीन आकाश तत्व विभाग, शक्ति और आकाश तत्व विभाग के अधीन वायु तत्व विभाग तथा शक्ति-आकाश व वायु तत्व विभाग के अधीन अग्नि तत्व विभाग गतिशील होता

है । इसका तात्पर्य यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि वे सब शक्ति-आकाश-वायु अग्नि तत्व विभाग के लक्ष्य कार्य सम्पादन में बाधा डालेंगे । बाधा नहीं अपितु सहयोग ही करते रहते हैं । अग्नि तत्व विभाग अपना लक्ष्य कार्य-सम्पादन 'रूप' के माध्यम से ही करता है ।

शक्ति जब स्वच्छन्द थी, तो उसका प्रभाव गोपनीय था परन्तु क्रमशः रूप बदलते क्रम में प्रभाव का आभाष आसान होता गया, जो शब्द के माध्यम से उत्प्रेरण, स्पर्श के माध्यम से बल तथा रूप के माध्यम से अग्नि का प्रभाव भी दिखाई देने के रूप में होने लगा यानी यह हुआ प्रभाव जो क्रमशः होता है । अग्नि तत्व विभाग रूप और तेज के माध्यम से ही अपने कार्य का सम्पादन करता है, हालाँकि इसका प्रधान कार्य तो 'रूप' ही के माध्यम से होता है । परन्तु जहाँ यह होता है, क्षमतानुसार उसका प्रभाव तेज रहता ही है क्योंकि तेज के वगैर रूप हो ही नहीं सकता ।

आजकल के जढ़ी, मूढ़ एंव अज्ञान रूपी पर्दा से ज्ञान नेत्र बन्द होने के कारण अन्धे वैज्ञानिक जन यह घोषित कर करा रहे हैं कि शक्ति-विद्युत या उर्जा को देखा ही नहीं जा सकता । तो इन जढ़ी-मूढ़ों तथा अन्धों को कौन समझाये कि एकमात्र शक्ति-विद्युत-ऊर्जा ही तो देखा जाता है। अग्नि का रूप प्रकाश या ज्योति ही है । अग्नि 'रूप' में आते-आते वह शक्ति मानव के सीधे जानकारी रूप (प्रकाश रूप) दिखायी देने रूप में प्रकाशित या प्रकट हो जाया करती है ।

अग्नि तथा अग्नि तत्व से सम्बन्धित जानकारी में रस एवं गन्ध का प्रवेश नहीं हो पाता क्योंकि रस एवं गन्ध से 'रूप' सूक्ष्म होता है । हाँ, शब्द और स्पर्श अवश्य उसमें समाहित है। ये सहयोगी हैं अग्नि तत्व विभाग के, जिसके लक्ष्य कार्य-सम्पादन हेतु शरीर में ज्ञानेन्द्रिय रूप में चक्षु-आँख और सहायक रूप में पैर नाम-रूप वाला कर्मेन्द्रिय मिला है, जो अपने आवश्यकतानुसार गतिशील होता रहता है।

४. जल तत्त्व विभाग

(Origin and Position of the Water)

जल तत्व विभाग के अन्तर्गत वे सारी विषय-वस्तुयें, उसकी जानकारी व पहचान तथा उसके आवश्यकतानुसार प्रयोग-उपयोग सम्बन्धी समस्त बातें ही आती हैं जो जल तथा जल से सम्बन्धित होता रहता हैं । जल तत्व का सूक्ष्म विषय 'रस' है यानी रस के माध्यम से ही जल तथा जल तत्व प्रधान विषय-वस्तुओं की जानकारी व पहचान होती है । हालाँकि जल तत्व की रचना या उत्पत्ति चार इकाइयों शक्ति-आकाश-वायु-अग्नि द्वारा होती है । इसीलिए चारों का भी प्रभाव-शब्द-स्पर्श-रूप

आदि अपने मूल सूक्ष्म विषय के माध्यम से 'रस' यानी जल तत्व में समाहित होते हैं अर्थात् शक्ति के अधीन आकाश, शक्ति और आकाश के अधीन वायु, शक्ति-आकाश और वायु के अधीन अग्नि, शक्ति-आकाश-वायु और अग्नि के अधीन व अन्तर्गत जल तत्व विभाग गतिशील होता है । इसीलिए जल में क्रमशः प्रभाव-शब्द-स्पर्श-रूप भी समाहित रहता है यानी जल के पहचान में क्रमशः ये चारों ही 'रस' का सहयोग करते हैं । जल तत्व 'रस' के माध्यम से ही अपना लक्ष्य कार्य का सम्पादन करता है ।

जल तत्व का प्रभाव होता है द्रव, मुलायम या विनम्रता और इसके उत्पत्ति का कारण है । सृष्टि के आदि में परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप परमसत्ता-शक्ति था। वह परमसत्ता रूप परमात्मा अपने प्रभाव को अपने अन्तर्गत ही समाहित करके परम आकाश रूप परमधाम रूप अमरलोक में मुक्त और अमर रूप में सर्वशक्ति-सत्ता सामर्थ्य युक्त सच्चिदानन्द (सत्-चित्-आनन्द) रूप शाश्वत् शान्ति और शाश्वत् आनन्द रूप 'सदानन्दमय' रूप में था, है और रहने वाला भी है। जब सृष्टि रचना की बात उनके अन्दर उठी तब वे ही अपने संकल्प से आदि-शक्ति रूपा अपने 'प्रभा' को प्रकट किया तथा वे इस आदिशक्ति को ऐश्वर्य के रूप में चेतन-जड़ दो रूपों तथा गुण-दोष दो प्रवृत्तियों से युक्त करते हुए सृष्टि रचना का आदेश दिया । तब उस आदि-शक्ति ने सृष्टि रचना रूप अपने लक्ष्य कार्य के सम्पादन हेतु उत्पत्ति या रचना आरम्भ की, जिसे क्रमशः आप देखते आ रहे हैं-- शक्ति-आकाश-वायु-अग्नि-जल तत्व रूप में ।

आदि में जब मात्र परमसत्ता-शक्ति (परमात्मा) ही थे, तब तो प्रभाव ही प्रभाव था । तत्पश्चात् परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप शब्द-ब्रम्ह रूप परमब्रम्ह परमेश्वर या परमात्मा ने अपने में से ही 'आत्म' शब्द को ज्योति रूपा शक्ति तथा उसको 'प्रभाव' से युक्त करते हुए प्रकट करते हुए पृथक् कर दिये, जिससे ज्योतिरूपा शक्ति भी पृथक् हो अपने सूक्ष्म विषय 'प्रभाव' के माध्यम से आकाश की उत्पत्ति की। परमप्रभु से प्रकट 'आत्म' शब्द का ही अंश रूप 'हूँ' प्रकट हुआ, जिससे 'ह्-ॐ' हुआ। आदि-शक्ति 'प्रभा' परमप्रभु से उत्पन्न तथा उन्हीं से प्रभावित रही। इस आदि-शक्ति 'प्रभा' से अपने सहज 'भाव' से 'हूँ' कार उत्पन्न होने से नाम प्रभाव पड़ा। यह इतना ज्यादा या अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न हुआ कि उसे आसानी से काबू यानी वश में नहीं किया जा सकता था। तब तुरन्त आदि-शक्ति 'प्रभा' ने 'हूँ' को विभाजित करके दो भाग कर दिया जिससे 'ह्-ॐ' दो रूपों में पृथक्-पृथक् हो गये । 'ह्' प्रभा से तेज प्राप्त करते ही और ॐ के अलग होते हुये 'ह्' सूक्ष्म रूप से स्थूल रूप

में आकाश का रूप लिया। जिसमें 'ह्' प्रेरित होकर व्यापक रूप आकाशवत् हो गया और उससे शक्ति के प्रभाव से सृष्टि उत्पन्न हुई तथा ॐ प्रेरित होकर देवत्व को उत्पन्न किया और शक्ति की प्रेरणा व सहयोग से ही सृष्टि रचना क्रम से वायु-अग्नि-जल रूपों को अपने अधीन उत्पन्न करता-होता हुआ आगे बढ़ता रहा।

शब्द सूक्ष्म विषय रूप आकाश में तो अभी शक्ति का 'प्रभाव' प्रकट हुआ, परन्तु वह 'बल' रूप में महसूस हुआ था-- प्रभाव का खुल्लम खुल्ला प्राकट्य नहीं हुआ था। अग्नि तत्व के माध्यम से उसका रूप भी भौतिक रूप में प्रकट हो गया जिसमें इतना अधिक तेज था कि उस तेज को प्रयोग-उपयोग में लाने के लिये जल तत्व की उत्पत्ति की गई या हुई ताकि तेज को ठण्डा, मुलायम या द्रवित करता हुआ आवश्यकतानुसार उपयोगी बनाया जा सके। जल के वगैर उसका तेज कम हो ही नहीं रहा था। सर्वथा ही ऊपर बढ़ते ही रहने की प्रवृति या गतिविधि रहती, तो सर्वथा नीचे की ओर चलने वाले जल ने अग्नि के प्रभाव को कुछ सीमित किया अर्थात् रूप से व्यापक और बड़ा 'अंहकार' तब उसके अधीन बल और बल के अधीन तेज तथा तेज के अधीन जल हुआ, जो अपने द्रवित गुण रस से प्रभावित कर उपयोग के योग्य बनाया । इस कारण जल तत्व की उत्पत्ति इस प्रकार हुई । जल तथा जल से सम्बन्धित विषयों की जानकारी हेतु 'रस' के लिये ज्ञानेन्द्रिय रूप में जिह्वा नाम से शरीर में स्थान पाई तथा इसके सहयोग में सहायक का कार्य करती-रहती है उपस्थेन्द्रिय पेशाबद्वार ।

५. थल तत्व विभाग

(Origin and Position of the Earth)

थल तत्व विभाग अंथवा पृथ्वी तत्व विभाग के अन्तर्गत वे सारी वस्तुयें आती हैं तथा उनसे सम्बन्धित .सारे विषय उसकी जानकारी एवं पहचान तथा उसके प्रयोग-उपयोग सम्बन्धी.सारी बातें आती है, जो थल तथा थल से सम्बन्धित होती रहती हैं । थल तत्व या पृथ्वी तत्व का सूक्ष्म विषय गन्ध है यानी थल तथा थल तत्व प्रधान विषय वस्तुओं की मुख्यतः जानकारी व पहचान गन्ध के माध्यम से ही होता है, हालाँकि शक्ति-आकाश-वायु-अग्नि-जल आदि पाँचों इकाइयाँ मिलकर ही आपसी मेल मिलाप से थल तत्व की रचना या उत्पत्ति करती हैं या होती हैं, जिससे कि इन पाँचों के अपने सूक्ष्म विषय रूप प्रभाव-शब्द-स्पर्श-रूप-रस भी इस थल तत्व तथा इसके सूक्ष्म विषय रूप गन्ध में समाहित रहते हैं, इसलिये थल तथा थल तत्व सम्बन्धी विषय-वस्तुओं की सही जानकारी एवं पहचान तथा प्रयोग-उपयोग में काफी

सहायक होते हैं परन्तु प्रधानतया कार्य जान-पहचान का यह 'गन्ध' ही करता-कराता या गन्ध ही के माध्यम से होता है । थल तत्व विभाग गन्ध के माध्यम से ही अपना लक्ष्य कार्य सम्पादन करता-कराता है तथा शेष अन्य प्रभाव शब्द-स्पर्श-रूप-रस आदि भी अपने-अपने अंश तक इसका सहयोग करते हैं ।

शरीर के अन्तर्गत थल-तत्व सम्बन्धी विषय-वस्तुओं की यथार्थतः जानकारी व पहचान तथा प्रयोग एवं उपयोग हेतु और थल तत्व विभाग से सम्पर्क बनाये रखने हेतु 'नाक' (घ्राणेन्द्रिय) या नासिका नाम ज्ञानेन्द्रिय तथा इसके सहयोग या सहायक रूप में 'गुदा' (मल द्वार) नाम कर्मेन्द्रिय अपना स्थान कायम या स्थापित किये । अतः नासिका गन्ध लेने तथा गुदा दुर्गन्ध विशेष या दुर्गन्ध (मल) त्याग का कार्य करता रहता है ।

जल तत्व के द्रवीभूत गुण के कारण कि बिना किसी कड़ाई के या ठोस पदार्थ के जल कहीं ठहर ही नहीं सकता, सदा नीचे की ओर बहता चला जा रहा है, इसलिए शक्ति ने आकाश-वायु- अग्नि-जल चारों से ही मेल-मिलाप कर-कराकर अपने प्रभाव से ही, इस पाँचवें पदार्थ तत्व रूप थल को उत्पन्न किया । ब्रम्हाण्ड में जितनी ठोस वस्तुयें दिखाई दे रही हैं, सभी की सभी ही इस थल तत्व विभाग के अन्तर्गत ही आते हैं ।

क्या ही विचित्र रचना या विधि-विधान है परम प्रभु का कि जल के चारों तरफ थल और थल के चारों तरफ जल दिखाई दे रहा है, जिससे यह कहना भी एक कठिन बात ही है कि जल से थल घिरा है या थल से जल घिरा है । यह तो स्पष्टतः दिखाई दे रहा है । देखें-जानें कि प्रायः जहाँ पर जल दिखाई दे रहा है, उसके नीचे थल तथा जहाँ पर थल दिखाई दे रहा है, उसके नीचे जल स्थित किये हुये है ।

धन्य है, परमप्रभु तेरी महिमा को धन्य ! तेरी विधि व विधान तथा धरती व आसमान धन्य हैं और तुझे तो चाहे जितना भी धन्यवाद दिया जाये, तेरे लिये कम है क्योंकि धन्यवाद भी तो तुम्हीं से आकर, इसको निमित्त मात्र बनाता हुआ तेरे पास चला जा रहा है। धन्य है तेरी महिमा प्रभो! कि सृष्टिकाल में तेरे से ही क्रमशः आत्म-शक्ति-आकाश- वायु-अग्नि-जल-थल तथा इससे उत्पन्न विषय वस्तुयें अन्त में तेरे में ही क्रमशः उल्टी गति से तत्त्वज्ञान महाप्रलय काल में लय कर जाती हैं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! यहाँ जिस क्रमशः पाँच पदार्थ तत्वों की चर्चा की गई है, अति संक्षिप्ततः चर्चा, सारांश रूप में ही की गई है । चूंकि सम्पूर्ण सृष्टि की रचना या उत्पत्ति परम प्रभु के निर्देशन में आत्म-शक्ति रूप 'प्रभा' ने अपने

'हूँ' कार से 'हूँ' से 'ह-ॐ' के साथ आपस में मेल-मिलाप करते हुये जड़ जगत् तथा ॐ से देव तथा देव लोक की रचना या उत्पत्ति की या हुई । आत्म-शक्ति अथवा ब्रम्ह-ज्योति 'प्रभा' शक्ति के आपसी मेल-मिलाप से ही 'ह' अक्षर, शब्दादि सूक्ष्म विषय तथा आकाश आदि पदार्थ तत्व भी क्रमशः उत्पन्न हुये तथा उन्हीं आत्म-ज्योति से ही उत्पन्न ॐ, देव तथा देव लोकों की रचना में माध्यम बना । पूरी सृष्टि इन्हीं पाँच पदार्थ तत्वों से ही युक्त होने के कारण और सम्पूर्ण सृष्टि या ब्रम्हाण्ड का ही समग्र रूपों के अंशतः मेल रूप यह पिण्ड (शरीर) ब्रम्हाण्ड का ही एक इकाई है ।

पिण्ड और ब्रम्हाण्ड का तुलनात्मक रूप

जो कुछ भी ब्रम्हाण्ड में है, उसका अंशवत् रूप कुछ न कुछ इस पिण्ड (मानव शरीर) में निश्चित ही है । यही कारण है कि इस शरीर में पाँच ही ज्ञानेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियों के सहायक रूप में पाँच ही कर्मेन्द्रियाँ भी हैं। पाँच तत्त्वों से सम्बन्धित अपने-अपने सम्बन्ध स्थापित रखने तथा सृष्टि और शरीर अथवा ब्रम्हाण्ड और पिण्ड में आपसी ताल-मेल बनाये रखने हेतु ही रचित एवं निर्धारित की गई या हुई। ब्रम्हाण्ड में जो 'गुण प्रधान दैव वर्ग' है, उसका प्रतिनिधित्व पिण्ड में 'बुद्धि' करती है तथा ब्रम्हाण्ड में जो दोष प्रधान शैतान (असुर) वर्ग है, उसका प्रतिनिधित्व 'मन' करता है। अहंकार जो है वह--जिस प्रकार ब्रम्हाण्ड में सर्वेसर्वा 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप शब्द ब्रम्ह या परमब्रम्ह या परमेश्वर रूप 'परम' ही अधिकार चलाता है, ठीक उसी प्रकार पिण्ड में यह 'अहं' शब्द रूप 'अहंकार' अधिकार चलाता है। पुनः जिस प्रकार ब्रम्हाण्ड पर परमप्रभु का स्वत्त्वाधिकार स्थापित रहता है, ठीक उसी प्रकार पिण्ड पर 'अहं' शब्द सहित सूक्ष्मरूप जीव का स्वत्त्वाधिकार रहता है । जिस प्रकार ब्रम्हाण्ड में देव या सुर और दनुज-दानव या असुर अथवा सज्जन और दुर्जन होते-रहते हैं, ठीक उसी प्रकार पिण्ड में बुद्धि और मन होता-रहता है। जिस प्रकार ब्रम्हाण्ड में सूर्य-चन्द्रमा हैं और वे ब्रम्हाण्ड के ऊपरी हिस्से में आकाश में दिखाई देते है, ठीक उसी प्रकार पिण्ड में भी सूर्य-चन्द्रमा रूप दो आँख पिण्डीय सिर में ऊपरी सामने हिस्से में स्पष्टतया दिखाई देते हैं। जिस प्रकार ब्रम्हाण्ड में रात्रि के अन्धेरे में अगणित तारे दिखाई देते है, ठीक उसी प्रकार पिण्ड में भी ध्यान के समय अन्धकार के बेला में अगणित तारे दिखाई देते हैं । इसे योगी-साधक एवं आध्यात्मिक जन ही क्रियात्मक साधना से देखते हैं । जिस प्रकार पृथ्वी पर नदियाँ हैं, उसी प्रकार पिण्ड में नाड़ियाँ हैं । जिस प्रकार ब्रम्हाण्ड ब्रम्ह-शक्ति का एक क्रीड़ा स्थल है, उसी प्रकार पिण्ड भी सोऽहँ- हँसो का क्रीड़ा स्थल है ।

ब्रम्हाण्ड परमात्मा-परमेश्वर-परमब्रम्ह की शरीर है तो पिण्ड सोऽहँ-हँसो की शरीर है। अतः दोनों समान होने पर भी ब्रम्हाण्ड अंशी और पिण्ड उसका अंश मात्र है। परमतत्त्वम् खुदा या गॉड या लार्ड या यहोवा या भगवान् ही ब्रम्हाण्ड तथा पिण्ड दोनों का प्रधान संचालक हैं, जो परमधाम या बिहिश्त या पैराडाइज में 'सदानन्द' रूप सच्चिदानन्द (ETERNAL BLISS) मय रहता हुआ सभी का संचालन करता-कराता रहता है। वही परमप्रभु युग-युग में पृथ्वी की संचालन व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाने पर, परमधाम से इस भू-मण्डल पर अवतरित होकर, कोई शरीर धारण कर उसी के माध्यम से चाहे जिस तरह भी विधि-व्यवस्था सत्य-धर्म-न्याय-नीति प्रधान हो, संस्थापित कर, शासन कर दिखाकर, पुनः वापस चला जाता है। वही परम प्रभु ब्रम्हाण्ड और पिण्ड दोनों का ही अंशी है तथा दोनों का ही लय-प्रलय रूप भी है।

वही परमब्रम्ह परमेश्वर वर्तमान में भी भू-मण्डल पर अवतरित होकर अपना सत्य-धर्म संस्थापन कार्य प्रारम्भ कर चुका है - कर रहा है। आवश्यकता है उन्हें खोज-जान-देख-परख पहचान कर उनके प्रति समर्पित-शरणागत हो कर धर्म-धर्मात्मा-धरती रक्षार्थ उनके परम पुनीत कार्य में सेवा-सहयोग रूप में जुड़ कर अपने जीवन को सफल-सार्थक बनाते हुए मोक्ष रूप मञ्जिल को प्राप्त करने की।

२. स्वाध्याय (Self Realization)

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! संसार में शान्ति और आनन्दमय मानव जीवन जीने के लिये स्वाध्याय एक अनिवार्य विधान है जो मानव के अन्तःकरण में मानवता का भाव एवं मानवीय गुणों को विकसित करता हुआ, शैतानियत-असुरता एवं पशुवत् के जीवन से ऊपर उठाते हुए, मानवीय जीवन जीने की राह दिखाता है। सही मानव बनाता है। स्वाध्याय विधान से रहित मानव, मानव कहलाने के योग्य नहीं होता। वह या तो पशु या असुर कहलाने योग्य होता है। स्वाध्याय का विधान आध्यात्मिक महापुरुषों एवं तात्त्विक सत्पुरुष के लिये अनिवार्य नहीं होता परन्तु आध्यात्मिक महापुरुषों को भी चाहिये कि स्वाध्याय के उन विधानों को अपने जीवन में अवश्य अपनावें जो आध्यात्मिक विधान में बाधक न हो।

स्वाध्याय मानव जीवन को मानवता हेतु एक अनिवार्य विधान है, जिसके पालन में यदि थोड़ी-बहुत कठिनाई एवं परेशानी भी हो, तो भी अनिवार्यतः इसे प्रायः सभी मानव को ही अपनाना चाहिये क्योंकि जो थोड़ी-बहुत कठिनाई एवं परेशानी भी हो, तो घवड़ाना नहीं चाहिए क्योंकि वह कठिनाई एवं परेशानी मात्र कुछ दिनों तक ही

रहेगी, क्योंकि यह सामान्यतः देखा जाता है कि कोई कार्य चाहे वह कितना ही अच्छा से अच्छा क्यों न हो, प्रारम्भ में थोड़ी-बहुत कठिनाई एवं परेशानी होती ही है । जब उसे अपने जीवन में अथवा अपने जीवन को उस के अनुसार ले चला जाता है ।

वास्तव में सही मानव कहलाने के योग्य वही मानव होता भी है जो कठिनाइयों एवं परेशानियों के बावजूद भी अपने मानवीय अच्छे गुणों से विचलित नहीं होता बल्कि अपने में और ही दृढ़ता लाता है । मानवीय जीवन का सही मूल्याँकन कठिनाइयों एवं परेशानियों के अन्तर्गत ही होता है, ठीक-ठाक स्थिति-परिस्थिति में नहीं । ठीक-ठाक परिस्थिति में तो अधिकतर सभी मनुष्य चल ही लेंगे तो फिर मानवता कि महत्ता कैसे जानी-समझी जा सकती है ? अर्थात् नहीं समझी जा सकती है ! कदापि नहीं जानी जा सकती है ! कठिनाइयों एवं परेशानियों को सही मानव कभी भी जीवन को आगे बढ़ाने में बाधक नहीं मानता बल्कि यह मानव के मानवता को विकसित एवं प्रदर्शित करने-कराने तथा सही मानव के लिये समाज में अनिवार्यतः उत्थान कारक ही होता है ।

अच्छे कार्यों के करने में जिस किसी भी मनुष्य पर कठिनाइयाँ एवं परेशानियाँ आवें तो यह अवश्य ही जान व मान लेना चाहिये कि यह उसके मानवता की परीक्षा यानी मानवता का परिक्षण हो रहा है। यदि वह साहस पूर्वक सहिष्णुता के विधान से दृढ़ता पूर्वक अपने अच्छे पथ या विधान पर स्थिर रहता है तो निश्चित् ही उस परीक्षण में पास होता हुआ वह मानवता के अगली श्रेष्ठतर श्रेणी की तरफ निःसंदेह उठ रहा है । इसमें सन्देह तो कदापि न करें ।

स्वाध्याय एक अद्भुत कारखाना

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! वास्तव में स्वाध्याय वह कारखना है जिसमें अगणित दूषित विचार-भाव-व्यवहार-कर्म वाला मनुष्य आये दिन निर्मल एवं स्वच्छ भाव-व्यवहार-विचार कर्म वाला सही मानव बनता और निकलता रहता है । परन्तु अफसोस ! अफसोस पर अफसोस ! कि मनुष्य मानवता स्थापित करने वाले इस स्वाध्याय रूप अद्भुत् कारखाने को भी बन्द कर करवा दिये हैं तथा यह निकम्मी एवं भ्रष्ट सरकारें भी (विश्व की ही) इस स्वाध्याय रूप अद्भुत् कारखाने को प्रायः हर पाठशाला एवं विद्यालयों तक में भी खोल-खुलवा कर सबके लिये अनिवार्य नहीं कर करवा रही हैं। क्या ही अफसोस की बात है कि देश व दुनियां वाले दूषित मनुष्य से निर्मल एवं स्वच्छ तथा परिष्कृत मानव बनाने व निकालने वाली मानवता के इस अद्भुत एवं इतने बड़े उपयोगी स्वाध्याय वाले कारखाने को खोलने-खोलवाने तथा

चलने-चलाने की आवश्यकता ही महशूस नहीं करते; और दूषित भाव-विचार-व्यवहार-कर्म वाले मनुष्य से युक्त दूषित मानव समाज दम बन-बन कर घूँट-घूँट कर किसी-किसी तरह एक-एक दिन व्यतीत कर रहे है और मनुष्य समाज को अराजक बना-बनाकर चारों तरफ अत्याचार-भ्रष्टाचार एवं आतंक का राज स्थापित किये हुये हैं ।

समय रहते देश-दुनियां की सरकारों द्वारा यदि इस स्वाध्याय रूप मानवता के अद्भुत् कारखाने को छोटे से छोटे और बड़े से बड़े पाठशालाओं और विश्व विद्यालयों तक में सभी शिक्षार्थियों के लिये अनिवार्यतः विषय के रूप में नहीं खोला गया तथा प्रभावी रूप से इस स्वाध्याय रूपी मानवता के कारखाने से प्रायः सभी को गुजरने हेतु प्रभावी विधान बनाकर प्रभावी तरीके से लागू किया-कराया नहीं गया, तो इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् स्वयं विश्व विनाशक प्रलयंकारी रूप प्रकट कर कुछ स्वाध्यायी एवं आध्यात्मिक औरं तात्त्विक क्रमशः पुरुषों, महापुरुषों एवं सत्पुरुषों तथा ऐसे ही बालिकाओं, स्त्रियों आदि का रख-रखाव करते-करवाते हुये विश्व का विनाश ही न कर-करवा दे !

यह भी एक आश्चर्यमय ही नहीं, अपितु महानतम् आश्चर्य की बात है कि पौराणिक गाथाओं तथा वेद-उपनिषद्-रामायण-गीता-पुराण- बाइबिल-कुर्आन आदि सद्ग्रन्थों में ऐसे हजारों हजार सत्य प्रमाणित बातों के बावजूद भी धन-जन-पद के अभिमान में चूर, दुष्ट-असुर एवं भ्रष्ट राजनेता गण, जब तक मधुकैटभ-हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप-रावण-कंस-कौरव-फिर्औन व कुरैश आदि की ही तरह मटियामेट या विनाश के मुख में नहीं जाते; तब तक उन्हें अकाट्य सत्य एवं प्रमाणित बातों पर विश्वास ही नहीं हो पाता है। यदि विश्वास एवं भरोसा हो जाता और ये बातें मान लेते तो प्रह्लाद, ध्रुव, सुग्रीव, विभीषण, उग्रसेन, पाण्डव, इजरायली (मूसा के अनुयायी) या यहूदी तथा मुसलमानों की तरह शान्ति एवं आनन्द से अमन-चैन से अवश्य ही हो-रह जाते ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! खान-पान के पौष्टिक आहर जिस प्रकार से शारीरिक अभाव की पूर्ति एवं पुष्टि करते बनाते हैं, ठीक उसी प्रकार स्वाध्याय जीव के अभाव की पूर्ति एवं तुष्टि प्रदान करता है, जिससे जीव सदा ही अपने स्वरूप को सूक्ष्म दृष्टि से साक्षात् देखता हुआ समाज में निर्मल एवं स्वच्छ मानव के रूप में अमन-चैन के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। परन्तु बार-बार यह कहना पड़ता है कि अफसोस, महानतम् अफसोस की बात है कि मनुष्यों को सच्चे मानवता

से युक्त करने तथा सर्वत्र आनन्दमय रखने वाला स्वाध्याय विधान की ही आवश्यकता मनुष्य नहीं महशूस कर रहा है तथा अभाव एवं अव्यवस्था से बेचैन एवं आनन्द शून्य हुआ, तड़फड़ा-तड़फड़ा कर चैन एवं आनन्द हेतु नाना प्रकार के दूषित विचार एवं कर्मों को अपना-अपना कर नित्य प्रति ही बेचैनी एवं अभाव के घेरे में पड़-पड़ कर तड़फता हुआ, दम घूँट-घूँट कर मानव समाज में नाना प्रकार के दूषित एवं विषाक्त वातावरण स्थापित करता-कराता जा रहा है । थोड़ा सा भी अपने दुर्भावों, दुर्विचारों, दुर्व्यवहारों एवं दुष्कर्मो की तरफ गौर नहीं कर पाता है कि वह इस दूषित भाव-विचार-व्यवहार-कर्म से नित्य प्रति ही और ही दूषित होता हुआ पतनोन्मुख होता हुआ अधोपतन की तरफ बड़े ही तेजी के साथ गिर रहा है, जो कुछ ही दिन-माह-बरष में विनाश के मुख तक में अपने को पहुँचाये वगैर नहीं रूक पाता-गिरता ही चला जाता है ।

बचने का उपाय

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! आज की सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था इतनी दूषित हो चुकी है कि परम प्रभु रूप परमब्रम्ह या परमेश्वर या परमात्मा या खुदा-गॉड-भगवान् को स्वाध्यायी मानव, आध्यात्मिक देव-मानव या महामानव तथा तात्त्विक सत्पुरुषों के रक्षार्थ एवं दुष्ट-दुर्जनता के विनाशार्थ प्रलंयकारी या कियामती या डिस्ट्रायर वाले रूप को प्राकट्य करना मात्र ही अवशेष भी रह गया है, अन्यथा आज का अभावग्रस्त, अव्यवस्था एवं अत्याचारिक व अन्यायी आतंक से युक्त सामाजिक एवं राजनैतिक कुव्यवस्था का सुधार अब असम्भव सा हो गया है। अब संहार एवं विनाश के माध्यम से ही विश्व का मानव समाज 'ठीक' होगा। फिर भी परमपुरुष रूप परमात्मा अभी भी सुधार करने में लगा हुआ है ।

स्वाध्यायी मानवों, आध्यात्मिक महामानवों तथा तात्त्विक परम वाले मानवों से मुझ 'सदानन्द' (सन्त ज्ञानेश्वर) का साग्रह अनुरोध है कि आप मानवों, महामानवों एवं परम वाले मानवों, अपने-अपने स्वाध्याय-आध्यात्मिक क्रियाओं एवं तात्त्विक विधानों को अपना एक मात्र सहारा बनाओ क्योंकि अब विनाश या प्रलय का समय अति समीप अतिवेग से आ रहा है । "आप अपने-अपने विधानों से ही बच पाओगे, अन्यथा अब बचाव का कोई उपाय नहीं है ।" क्या ही अच्छा होता कि सभी के सभी ही दोष-रहित सत्य प्रधान मुक्ति और अमरता से युक्त सवोत्तम जीवन विधान वाले तत्त्वज्ञान विधान के ईमान से स्वीकार कर लेते--जीवन ही सफल सार्थक हो जाया करता ।

स्वाध्याय की महत्ता

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! स्वाध्याय की आवश्यकता एवं महत्ता को देखते हुए ही योग या अध्यात्म के आठ प्रमुख अंगों में से दूसरे अंग रूप नियम में चौथे उपाँग के रूप में या स्थान पर इस मानवता को स्थापित करने-कराने वाले विधान रूप स्वाध्याय को पद स्थापित किया गया है, जिसके पश्चात् ही पाँचवें उपाँग के रूप में या पद पर 'ईश्वर-प्रणिधान' नामक पद को स्थापित किया गया है जो अभी-अभी अगले अध्यात्म वाले शीर्षक में देखा जायेगा। इस विधान यानी स्वाध्याय-विधान से सांसारिक मानव को अपने 'स्व' की जानकारी तथा उसके मनन-चिन्तन व निदिध्यासन के माध्यम से सूक्ष्म-दृष्टि से सूक्ष्म शरीर रूप जीव-रूह-सेल्फ-स्व-अहम् स्पष्ट दिखलायी देते या मिलते ही 'स्व' की जानकारी एवं स्पष्टतः साक्षात् दर्शन ही मानव का शारीरिक एवं सांसारिक जड़ता एवं मूढ़ता रूप शरीरमय भाव से बचाये रखता है। जिसका परिणाम है कि जीव या 'स्व' से प्राप्त होने वाले आनन्द से आनन्दित रहता हुआ शरीर को अपने लक्ष्य-कार्य सम्पादन हेतु सर्व साधन-साधनाओं एवं विधानों से युक्त एक 'सहायक साधन' के रूप में जानता एवं मानता हुआ व्यवहरित होता है ।

मायामुक्त-आनन्दयुक्त कल्याणपरक जीवन का प्रारम्भ यही से

स्वाध्याय अपने में लीन स्वाध्यायी को शारीरिक, पारिवारिक एवं सांसारिक शरीर-सम्पत्ति या व्यक्ति-वस्तु या कामिनी-कांचन में भटकने-फँसने-जकड़ने से बचाता हुआ माया-मोह ममता-वासना आदि रूप माया जाल से अपने 'स्व' रूप जीव को सदा सावधान रखता व सचेत करता हुआ, शरीरमय व सम्पत्तिमय बनने से अपने 'स्व' रूप जीव की हमेशा रक्षा करता-रहता है तथा साथ ही साथ इतना आनन्द प्रदान करता रहता है कि अपने में लीन स्वाध्यायी को आनन्द का थोड़ा भी अभाव होने ही नहीं पाता कि इधर-उधर भटके या दूषित भाव-विचार व्यवहार-कर्म में फँसे । आनन्दानुभूति के कारण ही स्वाध्यायी को न तो कभी आनन्द का अभाव महशूस या आभाष होता है और न उसे बेचैनी होती है यानी स्वाध्यायी चैन का जीवन आनन्दमय रहता हुआ व्यतीत करता है।

आप पाठक और श्रोता बन्धुओं से मुझ सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द का साग्रह अनुरोध है कि आप यदि सर्वप्रथम सर्वोत्तम उपलब्धित-मुक्ति-अमरता वाला

तात्त्विक न बन सकें और मध्यम कोटि शान्ति-आनन्द वाला हँसो ज्योति वाला आध्यात्मिक भी यदि बन सकने की स्थिति में नहीं हैं, तो कम से कम स्वाध्यायी तो अनिवार्यतः हो ही जाइये। हालाँकि अपने आत्मिक उत्थान हेतु आध्यात्मिक तथा मुक्ति और अमरता हेतु तात्त्विक बनने या होने का सदैव प्रयत्न करना चाहिए; करना ही चाहिये क्योंकि यही जीवन का मूल उद्देश्य है । मोक्ष नहीं मिला तो सारा जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिये । क्यों कि जीवन मंजिल-उद्देश्य-अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' ही तो है योग-अध्यात्म व शान्ति-आनन्द मात्र भी नहीं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! शिक्षा जिस प्रकार शरीर एवं संसार के मध्य का एक अध्ययन प्रणाली है, ठीक उसी प्रकार स्वाध्याय 'स्व' रूप जीव(रूह-सेल्फ) एवं शरीर(जिस्म-बॉडी) के मध्य का श्रवण-मनन-चिन्तन एवं निदिध्यासन रूप अध्ययन विधान है। शरीर एवं संसार के मध्य अध्ययन एवं लक्ष्य कार्य सम्पादन हेतु इन्द्रियाँ होती हैं, ठीक उसी प्रकार शरीर और 'स्व' रूप जीव के मध्य अध्ययन एवं लक्ष्य कार्य सम्पादन हेतु श्रवण और मनन-चिन्तन औरं निदिध्यासन होता है। पुनः शरीर के पुष्टि हेतु पौष्टिक आहार के लिए शरीर संसार में अनेकानेक कठिनाइयों एवं परेशानियों को झेलता हुआ अथक परिश्रम करता हुआ, सुख-साधन हेतु शिक्षा ग्रहण करता है, ठीक उसी प्रकार 'स्व' रूप जीव शरीर के अन्दर अपने 'स्वत्त्व' को स्थित एवं तुष्टि हेतु अनेकानेक आन्तरिक एवं बाह्य, मानसिक एवं शारीरिक कठिनाइयों एवं परेशानियों को झेलता हुआ, अनवरत आनन्दित रहता हुआ नियमित रूप से आनन्दानुभूति हेतु स्वाध्याय का विधान नित्यशः करता रहता है। स्वाध्याय विधान शिक्षा से उच्च और श्रेष्ठतर विधि-विधान है क्योंकि शिक्षा मायावी सुख-साधन का हेतु होता है तो स्वाध्याय मायारहित आनन्दमय जीवन का हेतु होता है ।

शिक्षा शरीर का शरीर के सुख-साधन हेतु एक जानकारी है जो शरीरों को उच्च पदों पर पदासीन करती-कराती है, उसी प्रकार स्वाध्याय जीव का, जीव के आनन्द अनुभूति हेतु एक अनुभूतिक जानकारी और उपलब्धि है, जो जीव को स्वाध्यायी एवं दार्शनिक जैसे मानव समाज में अत्युच्च मर्यादा एवं प्रतिष्ठा देता-दिलाता है तथा शिक्षा के माध्यम से पहुंचे हुए उच्च पदासीन पदाधिकारी लोगों को स्वाध्यायी चरणों पर गिरवाता तथा निर्देशन या मार्ग दर्शन हेतु स्वाध्यायी के अधीन करता-करवाता है। इससे यह स्पष्टतः समाज में भी दिखायी दे रहा है कि उच्च से उच्च पदों पर पदासीन पदाधिकारीगण आये दिन ही स्वाध्यायियों एवं दार्शनिकों के यहाँ नतमस्तक होकर

मार्ग दर्शन एवं निर्देशन हेतु उपस्थित होते रहते हैं ।

इतना ही नहीं, शारीरिक विकास चाहे जितना भी हो जाय एवं शैक्षणिक विकास जितना भी हो जाय फिर भी उससे स्वाध्याय और नैतिकता वाली उपलब्धि नहीं हो सकती है । विचार एवं नैतिकता की उपलब्धि जब भी होगी, स्वाध्याय से ही हो सकती है और विचार एवं नैतिकता के वगैर कोई मनुष्य मानवीय सुखों की प्राप्ति तथा मानवीय गुणों का विकास कभी भी कर ही नहीं सकता है । शिक्षा चाहे जितनी भी क्यों न हासिल या प्राप्त कर लिया जाय। शिक्षा शिक्षित बना सकती है परन्तु मानव के आन्तरिक अभाव एवं बेचैनी को दूर नहीं कर सकती है जबकि स्वाध्याय सहजतापूर्वक स्वाभाविक रूप से आन्तरिक अभाव को समाप्त कर आनन्दमय बनाता है, जिससे मनुष्य को आनन्दानुभूति मिलती है और मनुष्य में नैतिकता भरना तथा पशुवत् एवं असुरता जैसे दुर्जनता को भी समाप्त करता हुआ आनन्दित करता-कराता हुआ, विनम्रता प्रदान करता हुआ मानव को मानवता तक पहुँचाने वाला यदि कोई प्रणाली या विधान है तो वह 'स्वाध्याय' ही है तथा 'स्व' को मायावी शरीरमय बन्धन-फांस में होने रहने से बचाये रखकर 'स्व' रूप मय तथा आनन्दमय बनाए रखता है । जिसमें अन्ततः शरीर छूटने पर देव लोक या स्वर्ग में स्वाधायी को मर्यादित एवं प्रतिष्ठित पद एवं मर्यादा मिलती है।

इसलिये सदानन्द तो आप से बार-बार यही कहेगा कि किसी अयोग्यता या अक्षमता के कारण यदि आप तात्त्विक परम मानव या सत्पुरुष तथा आध्यात्मिक महामानव या महापुरुष नहीं बन सके, या ऐसा सुअवसर आपको नही मिल सका, तो कम से कम स्वाध्यायी होते हुये मानवीय उपलब्धि को तो अवश्य ही प्राप्त कर लीजिये अन्यथा सारा जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा । इस बात का आपके मानने-नहीं मानने का दुष्प्रभाव प्राकृतिक विधानों पर कुछ भी पड़ने वाला नहीं है । सृष्टि का यह विधान था, है और सृष्टि रहने तक रहेगा भी । हाँ, दुस्प्रभाव आप पर अवश्य ही पड़ेगा, चेते-सम्भले नहीं तो दुष्प्रभाव से बच नहीं पायेंगे । पुनः कह रहा हूँ कि समय रहत ही चेतें-सम्भलें।

३. अध्यात्म (SPIRITUALIZATION)

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! अध्यात्म जीव का आत्मा से दरश-परश और मेल-मिलाप करते हुए आत्मामय रूप में स्थित-स्थापित करने-कराने का एक क्रियात्मक-साधना पद्धति है। जिस प्रकार शिक्षा से संसार और शरीर के मध्य की

जानकारी प्राप्त होती है तथा स्वाध्याय शरीर और जीव के बीच की 'स्व' का एक अध्ययन विधान है, ठीक उसी प्रकार अध्यात्म जीव और आत्मा के मध्य तथा आत्मा से सम्बन्धित क्रियात्मक या साधनात्मक जानकारी और दर्शन उपलब्धि वाला ही विधान होता है । दूसरे शब्दों में आत्मा से सम्बन्धित क्रियात्मक अध्ययन पद्धति ही अध्यात्म है ।

अध्यात्म सामान्य मानव से महामानव या महापुरुष या दिव्य पुरुष बनाने वाला एक योग या साधना से सम्बन्धित विस्तृत क्रियात्मक एवं अनुभूतिपरक आध्यात्मिक जानकारी है, जिसके अन्तर्गत शरीर में मूलाधार स्थित अहम् नाम सूक्ष्म शरीर रूप जीव का नासिकाग्र स्थित आज्ञाचक्र में पहुँच कर आत्म ज्योति या दिव्य ज्योति रूप ईश्वरीय सत्ता-शक्ति या ब्रम्ह ज्योति रूप ब्रम्ह शक्ति या आलिमे नूर या आसमानी रोशनी या नूरे इलाही या DIVINE LIGHT या LIFE LIGHT या जीवन ज्योति या सहज प्रकाश या परम प्रकाश या स्वयं ज्योतिरूप शिव का साक्षात् दर्शन करना एवं श्वाँस-निःस्वाँस के माध्यम से हँ सो जप का निरन्तर अभ्यास पूर्वक आत्मामय या ईश्वरमय या ब्रम्हमय होने-रहने का एक क्रियात्मक अध्ययन पद्धति या विधान होता है ।

स्वाध्याय तो मनुष्य को पशुवत् एवं असुरता और शैतानियत के जीवन से ऊपर उठाकर मानवता प्रदान करता-कराता है परन्तु यह आध्यात्मिक क्रियात्मक अध्ययन विधान मनुष्य को सांसारिकता रूप जड़ता से मोड़कर जीव को नीचे गिरने से बचाते हुए ऊपर श्रेष्ठतर आत्मा-ईश्वर- ब्रम्ह- नूर-सोल-स्पिरिट दिव्य ज्योति रूप चेतन-शिव से जोड़कर चेतनता रूप दिव्यता (DIVINITY) प्रदान करता-कराता है । पुनः 'शान्ति और आनन्द रूप चिदानन्द' की अनुभूति कराने वाला चेतन विज्ञान ही योग या अध्यात्म है, जिसका एकमात्र लक्ष्य शरीरस्थ जीव को शरीरिकता-पारिवारिकता एवं सांसारिकता रूप जड़ जगत् से लगा-बझा ममता-मोहासक्ति से सम्बन्ध मोड़कर चेतन आत्मा से सम्बन्ध जोड़-जोड़ कर जीवों को आत्मामय या ब्रम्हमय या चिदानन्दमय या दिव्यानन्दमय या चेतनानन्दमय बनाना ही है । मुक्ति-अमरता तो इसमें नहीं मिलता है; मगर शान्ति-आनन्द तो मिलता ही है ।

योग या अध्यात्म की महत्ता

योग या अध्यात्म अपने से निष्कपटता पूर्वक श्रद्धा एवं विश्वास के साथ चिपके हुये, लगे हुये लीन साधक को शक्ति-साधना-सिद्धि प्रदान करता हुआ सिद्ध, योगी, ऋषि, महर्षि, ब्रम्हर्षि, तथा अध्यात्मवेत्ता, योगी-महात्मा रूप महापुरुष बना देने या

दिव्य पुरुष बना देने वाला एक दिव्य क्रियात्मक विज्ञान है, जो शारीरिकता- पारिवारिकता एवं सांसारिकता रूप माया-मोह ममता-वासना आदि माया जाल से जीव का सम्बन्ध मोड़ता हुआ दिव्य ज्योति से सम्बन्ध जोड़कर दिव्यता प्रदान करते हुये जीवत्त्व भाव को शिवत्त्व या ब्रम्हत्त्व भाव में करता-बनाता हुआ कल्याणकारी यानी कल्याण करने वाला मानव बनाता है, जो समाज कल्याण करे यानी शारीरिकता-पारिवारिकता एवं सांसारिकता में फँसे-जकड़े 'जीव' को छुड़ावे तथा आत्मा या ईश्वर या ब्रम्ह से मिलावे और आत्मामय या ईश्वरमय या ब्रम्हमय बनावे ।

कर्म एवं स्वाध्याय और योग-अध्यात्म की जानकारी और उपलब्धि की तुलनात्मक स्थिति

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! स्वाध्याय तो कर्म का विरोधी नहीं बल्कि कर्म को गुणों से गुणान्वित कर, अच्छे कर्मों को करने तथा दूषित भाव-विचार व्यवहार-कर्म से दूर रहने को जनाता-सिखाता तथा नैतिकता से युक्त करता हुआ उसे परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप में ग्रहण करने को सिखाता है जबकि अध्यात्म कर्म का घोर विरोधी एवं जबर्दस्त शत्रु होता है। कर्म और योग या अध्यात्म दोनों ही एक दूसरे का विरोधी, शत्रु तथा विपरीत मार्ग गामी होते हैं । कर्म, मन्त्र और प्रार्थना के माध्यम से इन्द्रियों को मजबूत बनाने का प्रयत्न करता है, तो योग-साधना या अध्यात्म नियम-आसन और प्रत्याहार के माध्यम से इन्द्रियों को कमजोर बनाने तथा विषय वृत्तियों से मोड़-खींच कर उनको अपने-अपने गोलकों में बन्द करने-कराने की क्रिया-प्रक्रिया का साधनाभ्यास या योगाभ्यास करने-कराने की विधि बताता एवं कर्म से मोड़ कर योग-साधना में लगाता है ।

कर्म का लक्ष्य कार्य है जीवमय आत्मा में से जीव का सम्बन्ध काट-कटवा कर चेतन से मोड़ कर शरीर-संसार में माया-मोह, ममता-वासना आदि के माध्यम से प्रलोभन देते हुये भ्रमित करते-कराते हुये माया-जाल में फँसाता-जकड़ता व चेतन आत्मा में से बिछुड़ा- भुला-भटका कर शरीरमय बनाता हुआ पारिवारिकता के बन्धन में बाँधता हुआ, जड़-जगत्मय बना देना ताकि आत्मा और परमात्मा तो आत्मा और परमात्मा है । इसे अपने 'स्व' रूप का भी भान यानी आभाष न रह जाय । यह शरीरमय से भी नीचे उतर कर जड़वत् रूप सम्पत्तिमय या सम्पत्ति प्रधान, जो कि मात्र जड़ ही होता है, बनाने वाला ही कर्म विधान होता है, जिसका ठीक उल्टा अध्यात्म विधान होता है अर्थात् चेतन जीवात्मा जड़-जगत् को मात्र अपना साधन

मान-जान-समझ कर अपने सहयोगार्थ चालित परिचालित करता या कराता है। कर्म चेतन जीवमय आत्मा को ही जड़वत् बनाकर अपने सेवार्थ या सहयोगार्थ अपने अधीन करना चाहता है, चेतन मयजीव को सदा ही जड़ में बदलने की कोशिश या प्रयत्न करता रहता है तथा योग-साधना अध्यात्म जड़-जगत् में जकड़े हुये, फँसे हुये अपने अंश रूप जीव को छुड़ा कर, फँसाहट से निकाल कर, चेतन बनाता हुआ कि फँसा हुआ था, छुड़ाता है ।

इसलिये जीव अपने शारीरिक इन्द्रियों को उनके विषयों से मोड़कर, इन्द्रियों को उनके अपने-अपने गोलकों में बन्द करके तब श्वाँस-निःश्वाँस के क्रिया को करने-पकड़ने हेतु मन को बाँध कर स्वयं 'अहं' नाम सूक्ष्म शरीर रूप जीव मूलाधार स्थित कुण्डलिनी के सहारे आज्ञा-चक्र में पहुँच कर आत्म-ज्योति रूप आत्मा या दिव्य ज्योति रूप ईश्वर या ब्रम्ह-ज्योति रूप ब्रम्ह या स्वयं ज्योति रूप शिव का साक्षात्कार कर, आत्मामय या ब्रम्हमय बनता या होता हुआ अहँ सूक्ष्म शरीर रूप (जीव) हँ्स रूप शिव-शक्ति बन जाता या हो जाता है । यहाँ पर शिव-शक्ति का अर्थ शंकर-पार्वती से नहीं समझकर, स्वयं ज्योति या आत्म ज्योति या ब्रम्ह ज्योति रूप ब्रम्ह शक्ति से समझना चाहिये।

सृष्टि की उत्पत्ति और लय-प्रलय

'शिव' का अर्थ कल्याण होता है । हँ्स रूप ब्रम्ह-शक्ति या शिव-शक्ति की उत्पत्ति 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम्' रूप शब्द-ब्रम्ह गॉड या अलम या परम ब्रम्ह से ही होती है तथा सृष्टि के अन्त में सामान्यतः ब्रम्हाण्डीय विधि-विधान से तथा मध्य में भी भगवदवतार के माध्यम से तत्त्वज्ञान (True Supreme and Perfect KNOWLEDGE) के यथार्थतः विधि-विधान से परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप शब्द-ब्रम्ह या परमब्रम्ह से सोऽहँ तथा हँ्सो से ॐ की उत्पत्ति की प्रक्रिया या रहस्य जना-बता दिखा सुझा-बुझा कर 'अद्वैतत्त्वबोध' कराते हुये जिज्ञासु को खुदा-गॉड-भगवान् से बात-चीत करते-कराते हुए जब अहँ एवं सोऽहँ-हँ्सो के समस्त मैं-मैं, तू-तू को अपने मुख से निकालते हुये, पुनः अपने ही मुख में समस्त मैं-मैं तू-तू को चाहे वह मैं-मैं तू-तू अहँरूप जीव का हो या हँ्स रूप जीवात्मा का या केवल सः या आत्म शब्द आत्मा का ही क्यों न हो, सभी को ही अपने मुख में ही प्रवेश कराते हुये ज्ञान-दृष्टि से या तत्त्व-दृष्टि से दिखाते हुये, बात-चीत करते-कराते हुये जीव (अहं), जीवात्मा (हँ्सो)

व आत्मा (सः या आत्म शब्द) और सृष्टि के सम्पूर्ण को ही 'एक' एकमेव एकमात्र 'एक' अपने तत्त्वम् रूप से अनेकानेक सम्पूर्ण सृष्टि में अपने अंश-उपाँश रूप में बिखेर देते हैं । ऐसा ही अपने निष्कपट उत्कट परम श्रद्धालु एवं सर्वतोभावेन समर्पित शरणागत जिज्ञासुओं को अज्ञान रूप माया का पर्दा हटाकर अपना कृपा पात्र बनाकर अपना यथार्थ यानी 'वास्तविक तत्त्व' रूप परमतत्त्वं रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप अद्वैत्तत्त्वम् को दर्शा देते हैं तथा अपने अनन्य समर्पित-शरणागत भक्तों-सेवको को अपने में भक्ति-सेवा प्रदान करते हुये अपना प्रेम-पात्र बना लेते हैं, तब मध्य में भी लक्ष्य रूप रहस्य को समझा-बुझा कर मुक्ति और अमरता का भी साक्षात् बोध कर-करा देते हैं, तो मध्य में भी अन्यथा सामान्य सृष्टि लय विधान से अन्त में अपने में लय-विलय हो जाया करती है । यही सृष्टि उत्पत्ति और लय है । तत्त्वज्ञान के माध्यम से विलय तथा महाविनाश के माध्यम से महाप्रलय होता है ।

आध्यात्मिक सन्तुलन बिगड़ने से पतन और विनाश भी

अध्यात्म इतना सिद्धि, शक्ति प्रदान करने वाला विधान होता है; जिससे प्रायः सिद्ध-योगी, सिद्ध-साधक या आध्यात्मिक सन्त-महात्मा को विस्तृत धन-जन-समूह को अपने अनुयायी रूप में अपने पीछे देखकर एक बलवती अंहकार रूप उल्टी मति-गति हो जाती है; जिससे योग-साधना या आध्यात्मिक क्रिया की उल्टी गति रूप सोऽहँ ही उन्हें सीधी लगने लगती है और उसी उल्टी साधना सोऽहँ में अपने अनुयायिओं को भी जोड़ते जाते हैं, जबकि उन्हें यह आभाष एवं भगवत् प्रेरणा भी मिलती रहती है कि यह उल्टी है। फिर भी वे नहीं समझते। उल्टी सोऽहँ साधना का ही प्रचार करने-कराने लगते है । अहँ नाम सूक्ष्म शरीर रूप जीव को आत्मा में मिलाने के बजाय सः ज्योति रूप आत्मा को ही लाकर अपने अहँ में जोड़ कर हँ स के स्थान पर सोऽहँ या 'मैं-वह है के स्थान पर 'वही मैं हूँ' का भाव भरने लगते हैं जिससे कि उल्टी मति के दुष्प्रभाव से भगवान् और अवतार ही बनने लगते हैं, जो इनका बिल्कुल ही मिथ्या ज्ञानाभिमानवश मिथ्याहंकार ही होता है। ये अज्ञानी तो होते ही हैं मिथ्याहंकारवश जबरदस्त भ्रम एवं भूल के शिकार भी हो जाते हैं । आये थे भगवद् भक्ति करने, खुद ही बन गये भगवान् । यह उनका बनना उन्हें भगवान् से विमुख कर सदा-सर्वदा के लिये पतनोन्मुखी बना देता हैं। विनाश के मुख में पहुँचा देता है। विनाश के मुख में पहुँचा ही देता है ।

आध्यात्मिक धर्मोपदेशकों का मिथ्याज्ञानाभिमान

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! अध्यात्म विधान स्वाध्याय से ऊपर यानी श्रेष्ठतर तथा तत्त्वज्ञान से नीचे होता है, परन्तु आध्यात्मिक सन्त-महात्मा मिथ्याज्ञानाभिमान के कारण जीव को ही आत्मा और आत्मा को ही परमात्मा, जीव को ही ब्रम्ह और ब्रम्ह को ही परमब्रम्ह, जीव को ही ईश्वर और ईश्वर को ही परमेश्वर; सेल्फ को ही सोल और सोल Divine Light या Life Light को ही (GOD); रूह को ही नूर और नूर को ही अल्लाहतआला या खुदा; जीव या रूह या सेल्फ रूप सूक्ष्म शरीर को ही दिव्य ज्योति और आत्म-ज्योति या दिव्य ज्योति या ब्रम्ह ज्योति या नूर या डिवाइन लाइट या डिवाइन लाइट या जीवन ज्योति या स्वयं ज्योति या सहज प्रकाश या परम प्रकाश तथा हँ्सो के उल्टे सोऽहँ के अजपा जप प्रक्रिया को ही 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप शब्द-ब्रम्ह या परमब्रम्ह' तथा उनका तत्त्वज्ञान पद्धति; आनन्दानुभूति को ही चिदानन्द रूप 'शान्ति और आनन्द' और सूक्ष्म दृष्टि को ही दिव्य दृष्टि और चिदानन्द को ही सच्चिदानन्द, स्वरूपानन्द को ही आत्मानन्द या ब्रम्हानन्द और आत्मानन्द को ही परमानन्द या सदानन्द; चेतन को ही परमतत्त्वं; ब्रम्हपद या आत्मपद को ही परमपद या भगवत्पद; शिवलोक या ब्रम्ह लोक को ही अमरलोक या परम आकाश रूप परमधाम; अनुभूति को ही बोध; आध्यात्मिक सन्त-महात्मा या महापुरुष को ही तात्त्विक सत्पुरुष-परमात्मा या परमपुरुष या भगवदवतार रूप परमेश्वर या खुदा-गॉड-भगवान्; दिव्य दृष्टि को ही ज्ञान-दृष्टि; दिव्य चक्षु को ही ज्ञान चक्षु; सेप्टल आई को ही डिवाइन आई और डिवाइन आई को ही गॉडली आई; अपने पिण्ड को ही ब्रम्हाण्ड; अपने शरीरान्तर्गत अहम् जीव को ही हँ्सो जीवात्मा और जीवात्मा हँ्स को ही ब्रम्हाण्डीय परमब्रम्ह और सर्वसत्ता सामर्थ्य रूप 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप शब्द-ब्रम्ह या परमब्रम्ह'; शान्ति और आनन्द को ही परमशान्ति और परम आनन्द कहते-कहलाते हुये तथा स्वयं गुरु के स्थान पर सद्गुरु बनकर अपने को भगवदवतार घोषित कर-करवा कर अपने साधना-विधान या आध्यात्मिक क्रिया-विधान से हटकर, पूजा-उपासना विधान आदि से युक्त होकर अपने जबर्दस्त भ्रम एवं भूल का शिकार अपने अनुयायियों को भी बनाते जाते हैं।

हँ्सो के स्थान पर उल्टी साधना सोऽहँ करने-कराने में मति-गति ही इन आध्यात्मिक सन्त-महात्माओं की उल्टी हो गई होती है या हो जाती है और वे इस बात पर थोड़ा भी ध्यान नहीं दे पाते हैं कि उनका लक्ष्यगामी सिद्धान्त अध्यात्म या योग है जिसकी अन्तिम पहुँच आत्मा तक ही होती है, परमात्मा या परमेश्वर या

परमब्रम्ह या खुदा-गॉड-भगवान् तक इनकी पहुँच ही नहीं है । आदि में शंकर, सनकादि, सप्त ऋषि, व्यासादि, मूसा यीशु, मोहम्मद साहब, आद्यशंकराचार्य, महावीर जैन, कबीर, नानक, दरिया, तुलसी, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, योगानन्द, आनन्दमयी, मुक्तानन्द, शिवानन्द आदि-आदि वर्तमान के भी प्रायः सभी तथाकथित अध्यात्मवेत्तागण आत्मा को ही परमात्मा या ईश्वर को ही परमेश्वर आदि घोषित करते-कराते रहे हैं जिसमें शंकर, वशिष्ठ, व्यास, मोहम्मद, तुलसी आदि तो अपने से पृथक् परमात्मा या परमेश्वर या अल्लाहतआला के अस्तित्त्व को स्वीकार किये अथवा श्रीराम या श्रीकृष्ण की लीलाओं के बाद समयानुसार सुधर गये। बाल्मीकि भी इसी में हैं तथा जीव-आत्मा से परमात्मा या परमब्रम्ह या परमेश्वर या अल्लाहतआला या खुदा-गॉड-भगवान् का ही, एकमात्र भगवान् का ही, भक्ति प्रचार करने-कराने लगे। प्रायः अधिकतर आध्यात्मिक सन्त-महात्मा प्रॉफेट-पैगम्बर मिथ्याज्ञानाभिमान के भ्रम एवं भूल वश शिकार हो जाया करते हैं तथा आत्मा-ईश्वर आदि को ही परमात्मा-परमेश्वर आदि कहने-कहलवाने, घोषित करने-कराने लगते हैं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! वर्तमान समस्त के योगी, महर्षि, साधक, सिद्ध तथा आध्यात्मिक सन्त-महात्मनों से सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस का अनुरोध है कि योग-साधना या अध्यात्म कोई विशेष छोटा या महत्त्वहीन विधान या पद नहीं है । इसकी भी अपनी महत्ता है । इसलिये अध्यात्म या योग को ही तत्त्वज्ञान पद्धति या सत्यज्ञान पद्धति घोषित तथा आत्मा को ही परमात्मा या ईश्वर को ही परमेश्वर या ब्रम्ह को ही परमब्रम्ह तथा सोऽहँ-हँसो एवं आत्म-ज्योति को ही 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप शब्द-ब्रम्ह या परमब्रम्ह' घोषित न करें और मिथ्या ज्ञानाभिमानवश अध्यात्म को ही तत्त्वज्ञान कथन रूप झूठी बात कह कर अध्यात्म के महत्त्व को न घटायें ।

अध्यात्म को तत्त्वज्ञान का चोला न पहनावें अन्यथा अध्यात्म पाखण्डी या आडम्बरी शब्दों से युक्त होकर अपमानित हो जायेगा । आत्मा को परमात्मा का या ब्रम्ह को परमब्रम्ह का या ईश्वर को परमेश्वर का चोला न पहनावें क्योंकि इससे आत्मा कभी परमात्मा नहीं बन सकता; ईश्वर कभी भी परमेश्वर नहीं बन सकता; ब्रम्ह कभी भी परमब्रम्ह नहीं बन सकता । इसलिये परमात्मा या परमेश्वर या परमब्रम्ह का चोला आत्मा-ईश्वर या ब्रम्ह को पहनाने से पर्दाफास होने पर आप महात्मन् महानुभावों को अपना मुख छिपाने हेतु जगह या स्थान भी नहीं मिलेगा ।

इसलिये एक बार फिर से ही सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द अनुरोध कर रहा

है कि अपना-अपना नकली चोला उतार कर शीघ्रातिशीघ्र अपने शुद्ध अध्यात्मवेत्ता, आत्मा वाला असल चोला धारण कर लीजिये तथा परमात्मा या परमेश्वर या परमब्रम्ह का चोला एकमात्र उन्हीं के लिये छोड़ दें, क्योंकि उस पर एकमात्र उन्हीं का एकाधिकार रहता है । इसलियें अब तक पहने सो पहने, अब झट-पट अपने अपने रूपों को असली में बदल लीजिये । अन्यथा सभी का पर्दाफास अब होना ही चाहता है ! तब आप सभी लोग बेनकाब हो ही जायेंगे । नतीजा या परिणाम होगा कि कहीं मुँह छिपाने का जगह नहीं मिलेगा । इसलिये समय रहते ही चेत जाइये। चेत जाइये ।

अब परमप्रभु को खुल्लम खुल्ला अपना प्रभाव एवं ऐश्वर्य दिखाने में देर नहीं है। उस समय आप लोग भी कहीं चपेट में नहीं आ जायें । इसलिये बार-बार कहा जा रहा है कि चेत जायें ! चेत जायें !! चेत जायें !!! अब नकल, पाखण्ड, आडम्बर, जोर-जुल्म, असत्य- अधर्म, अन्याय-अनीति बिल्कुल ही समाप्त होने वाले हैं । अब देर नहीं, समीप ही है ! इसे समाप्त कर भगवान् अब अतिशीघ्र सत्य-धर्म न्याय-नीति का राज्य संस्थापित करेगा ही करेगा, देर नहीं है। 'सत्य' को स्वीकारने-अपनाने में भय-संकोच से ऊपर उठकर यथाशीघ्र स्वीकार कर या अपना ही लेना चाहिये । क्योंकि देर करना पछतावा-प्रायश्चित का ही कारण बनेगा । चेतें।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! सृष्टि की रचना या उत्पत्ति दो पदार्थों से हुई है जो जड़ और चेतन नाम से जाने जाते हैं । इस जड़ से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी तो भौतिक शिक्षा के अन्तर्गत आती है और चेतन तथा चेतन से सम्बन्धित या चेतन प्रधान जीव-आत्मा आदि के सम्बन्ध के बारे में क्रियात्मक जानकारी मात्र ही योग या अध्यात्म है। अध्यात्म, स्वाध्याय और तत्त्वज्ञान के मध्य स्थित जीव का परमात्मा से तथा परमात्मा का जीव से सम्पर्क बनाने में आत्मा ही दोनों के मध्य के सम्बन्धों को श्वाँस-निःश्वाँस के एक छोर (बाहरी) पर परमात्मा तथा दूसरे छोर (भीतरी) पर जीव का वास होता है । आत्मा नित्य प्रति हर क्षण ही निर्मल एवं स्वच्छ शक्ति-सामर्थ्य (ज्योतिर्मय सः) रूप में श्वाँस के माध्यम से शरीर में प्रवेश कर जीव को उस शक्ति-सामर्थ्य को प्रदान करती-रहती है और शरीरान्तर्गत गुण-दोष से युक्त सांस्कारिक होकर जीव रूप से निःश्वाँस से बाहर हो जाया करती है । यही निःश्वाँस स्थित 'हँ' को श्वाँस स्थित 'सः' से निरन्तर के जाप से दोनों का आज्ञा चक्र में मेल-जोल कराया जाना ही धारणा और ध्यान के अन्तर्गत साधनात्मक जप है ।

जब अहँ रूप जीव भगवत् कृपा से सः रूप आत्म-शक्ति का साक्षात्कार करता है तथा सः से युक्त हो शान्ति और आनन्द की अनुभूति पाता है, तब यह जीव

आत्मविभोर हो उठता है । इस जीव को आत्मामय या ब्रम्हमय या चिदानन्दमय ही, पूर्व की अनुभूति, जिससे कि यह जीव संसार में बिछुड़ा-भटका कर तथा सांसारिकता में फँसा दिया गया था, अपना पूर्व का सम्बन्ध याद हो जाता है कि शारीरिक -पारिवारिक-सांसारिक होने के पूर्व 'मैं' जीव इसी आत्मा या ब्रम्ह के साथ संलग्न था; जिससे सांसारिक-पारिवारिक लोगों ने नार-पुरइन या ब्रम्ह-नाल काट-कटवा कर मुझे इस आत्मा या ब्रम्ह से बिछुड़ा दिया था, जिससे 'मैं' जीव शान्ति और आनन्द रूप चिदानन्द के खोज में इधर-उधर चारों तरफ भटकता और फँसता तथा जकड़ता चला गया था । यह तो परमप्रभु की कृपा विशेष से मनुष्य शरीर पाया। तत्पश्चात् परमप्रभु की मुझ पर दूसरी कृपा विशेष हुई कि मुझे सद्गुरु जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ तथा परमप्रभु की यह तीसरी कृपा हुई कि मेरे अन्दर ऐसी प्रेरणा जागी, जिससे सद्गुरुजी की आवश्यकता महसूस हुई और गुरु जी के सम्पर्क में आया। तत्पश्चात् परमप्रभु जी के ही कृपा विशेष, जो सद्गुरु कृपा के रूप में हमें 'आत्म' रूप सः से पुनः साक्षात्कार तथा मेल-मिलाप कराकर पुनः मुझ शरीर एवं संसारमय जीव को संसार एवं शरीर से उठाकर आत्मामय जीव रूप में स्थापित कर-करा दिया। सद्गुरु कृपा से अब पुनः हँ्स हो गया। ध्यान दें कि हँ्स ही जीवात्मा है, जो अध्यात्म की अन्तिम उपलब्धि है। अध्यात्म हँ्स ही बना सकता है, तत्त्वज्ञानी नहीं ! तत्त्वज्ञान आत्मा के वश की बात नहीं होता और अध्यात्म की अन्तिम बात आत्मा तक ही होती है। आत्मा मात्र ही योग या अध्यात्म की अन्तिम मञ्जिल होता है, परमात्मा नहीं ।

आध्यात्मिक सन्त-महात्मन् बन्धुओं को मिथ्या ज्ञानाभिमान रूप भ्रम एवं भूल से अपने को बचाये रहते हुये सदा सावधान रखना चाहिये जीव को ही आत्मा और आत्मा को ही परमात्मा, जीव को ही ईश्वर और ईश्वर को ही परमेश्वर, जीव को ही ब्रम्ह और ब्रम्ह को ही परमब्रम्ह आदि तथा आध्यात्मिक सोऽहँ-हँ्सो-ज्योति को ही 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् और योग-साधना या अध्यात्म को ही तत्त्वज्ञान कह-कहवा कर अध्यात्म के महत्त्व को मिथ्यात्त्व से जोड़कर घटाना या गिराना नहीं चाहिये । सन्त महात्मा ही झूठ या असत्य कहें या बोलना शुरू करें तो बहुत शर्म की बात है और तब 'और' समाज की गति क्या होगी ?

अतः हर किसी को ही झूठ या असत्य से हर हालत में ही बचना चाहिए । सन्त-महात्मन बन्धुओं को तो बचना ही बचना चाहिए । क्योंकि धर्म का आधार और मञ्जिल दोनों ही 'सत्य ही तो है । सत्य नहीं तो धर्म नहीं ।

४. तत्त्वज्ञान (Supreme KNOWLEDGE)

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! 'तत्त्वज्ञान' ही वह 'अशेष ज्ञान' विधान है जिसे यथार्थतः जान लेने के पश्चात् कुछ भी जानना और पाना शेष नहीं रह जाता। 'तत्त्वज्ञान' एकमात्र परमप्रभु हेतु आरक्षित एवं सुरक्षित विधान है जिसका एकमात्र प्रयोगकर्त्ता परमात्मा-खुदा-गॉड-भगवान् ही जब परम आकाश रूप परमधाम से भू-मण्डल पर अवतरित होता है, हुआ भी है, वह ही होता है । भगवदवतार के सिवाय किसी को भी 'तत्त्वज्ञान' के वास्तविक रहस्य का पता ही नहीं होता । यही कारण है कि भगवदवतार के पहचान का एकमात्र आधार तत्त्वज्ञान ही बना ।

वास्तव में तत्त्वज्ञान वह ज्ञान है जिसके अन्तर्गत पूरे ब्रम्हाण्ड के जड़-चेतन तथा दोष-गुण के साथ ही साथ 'सम्पूर्ण कर्म विधान' तथा परिपूर्णतः योग-साधना या अध्यात्म विधान के अलावा परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम्' या खुदा-गॉड-भगवान् की यथार्थतः जानकारी, साक्षात् दर्शन एवं स्पष्टतः बात-चीत करते-कराते हुये परिचय-पहचान साक्षात् प्राप्त होता है; साथ ही साथ इसमें अद्वैतत्त्वबोध भी समाहित होता है । सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड में जड़-चेतन तथा परमतत्त्वम् आदि जो कुछ भी है, सब की ही रहस्यात्मक जानकारी कराने की क्षमता एकमात्र इसी तत्त्वज्ञान विधान में ही समाहित रहता है ।

दूसरे शब्दों में बड़े ही सहजता के साथ कहा जा सकता है कि खुदा-गॉड-भगवान् के द्वारा ही भू-मण्डल पर सदा-सर्वदा के लिये प्रमाणित एवं सत्यापित भगवत् परिचय एवं पहचान तथा उनके कार्य करने का विधान वास्तव में 'तत्त्वज्ञान' ही एकमात्र एक है । भगवान् ने इसीलिये 'तत्त्वज्ञान' विधान एकमात्र अपने लिये ही आरक्षित एवं सुरक्षित कर लिया । अन्ततः यह 'तत्त्वज्ञान' ही 'अशेष ज्ञान' विधान भी है। तत्त्वज्ञान ही परमसत्य और सम्पूर्ण ज्ञान वाला विधान भी है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड पाँच भागों में स्पष्टतः हर स्तर से जानने में आ रहा है तथा बना भी है। ये क्रमशः संसार, शरीर, जीव, आत्मा और परमात्मा हैं । प्रथम चारों का ही आदि-अन्त (उत्पत्ति-लय) परमात्मा से ही परमात्मा में ही सुनिश्चित है। परमात्मा से ही चेतन आत्मा तथा जड़-जगत् की उत्पत्ति होती है परमात्मा द्वारा ही संचालित एवं नियंत्रित होता है और अन्ततः परमात्मा में ही जड़-जगत् तथा चेतन आत्मा भी लय-विलय भी कर जाता

है । यह आदि-अन्त सहित सम्पूर्ण रहस्य विधान एकमात्र 'तत्त्वज्ञान' में ही सदा-सर्वदा समाहित रहता है । जिस प्रकार परिचय-पत्र तथा परिचय-पत्र धारक दोनों के एक साथ रहने पर ही परिचय-पत्र की सार्थकता जाहिर या स्पष्ट होती है, अलग-अलग यानी दोनों के पृथक्-पृथक् रहने पर उपयोगिता नहीं महसूस होती, ठीक उसी प्रकार भू-मण्डल पर परमधाम से भगवदवतार के वगैर तत्त्वज्ञान भी अनुपयोगी रूप में सद्ग्रन्थों में छिपा पड़ा रहता है जिसका परिणाम यह होता है कि तत्त्वज्ञान लोगों के बीच जब भी प्रकट होता है तो जनमानस परम आश्चर्य में पड़ जाता है क्योंकि तत्त्वज्ञान की वार्ता वर्तमान युग में वर्तमान अवतार के पूर्व में कभी कोई सुना तो होता नहीं । अवतार के साथ ही तत्त्वज्ञान का विधान सुनने-जानने-देखने को भी मिलता है फिर भी उसका महत्त्व स्थापित होने लगता है और स्थापित हो ही जाता है ।

तत्त्वज्ञान पूर्णतः आश्चर्यमयता वाला विधान

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! तत्त्वज्ञान के प्रति आश्चर्य व्यक्त करना कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि यह तो आश्चर्यों में का परम आश्चर्यमय विधान है । भगवान् तो जहाँ कहीं भी रहेगा, उसमें सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड सूक्ष्मतम् रूप में समाहित रहेगा ही । जिस प्रकार भगवान् में सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड सदा-सर्वदा ही समाहित रहता है, ठीक उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड की आश्चर्य से भी आश्चर्यमयी रहस्यात्मक जानकारी भी सदा-सर्वदा तत्त्वज्ञान में समाहित होती या रहती है । जिसमें से जब, जैसी, जितनी आवश्यकता पड़ती है, प्रकट होती या हो जाया करता है । अर्थात् जब, जैसा, जितना और जिसकी आवश्यकता पड़ी कि तब, तैसा और उतना ही विषय-वस्तु, व्यक्ति-वस्तु, शरीर-सम्पत्ति, सिद्धि-शक्ति-सत्ता भगवान् से सदा-सर्वदा प्रकट या उपलब्ध होता रहता है । इसकी वैसी और उतनी ही जानकारी भी तत्त्वज्ञान से सदा-सर्वदा प्रकट होता रहता और जानने-देखने को मिलता है ।

भगवद्ज्ञान या सत्यज्ञान या तत्त्वज्ञान एक ही बात है । परिस्थितियों के अनुसार पृथक्-पृथक् शब्दों में उच्चारित या व्यवहरित होता है मगर आत्मज्ञान या ब्रम्हज्ञान या अध्यात्मज्ञान ही तत्त्वज्ञान नहीं होता है। आत्मज्ञान तो तत्त्वज्ञान का अंशमात्र होता है। इसमें कोई किसी भी प्रकार का अन्तर या भेद नहीं है। यदि सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड में कोई आश्चर्य है, तो उसमें सबसे बड़ा या परम आश्चर्य 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम्' रूप शब्द-ब्रम्ह रूप परमब्रम्ह या परमेश्वर या परमात्मा या खुदा-गॉड-भगवान् तथा उससे सम्बन्धित परिचय-पहचान रूप तत्त्वज्ञान या

भगवद्ज्ञान या सत्यज्ञान ही एकमात्र होता है।

शारीरिक-पारिवारिक एवं सांसारिकों में आश्चर्यमयी बात तो जीव तथा जीव से सम्बन्धित जानकारी ही होती है । उससे बढ़कर आश्चर्य की बात आत्मा या ईश्वर या शिव तथा आत्मा या ईश्वर या शिव से सम्बन्धित जानकारी होती है तथा इस सबसे भी बढ़कर यानी परम आश्चर्य की बात परमात्मा तथा परमात्मा से सम्बन्धित जानकारी होती है ।

यदि कोई बात आश्चर्यमय है तो आश्चर्यमय होने का मतलब झूठ नहीं होता, अपितु आश्चर्य का मतलब कल्पनातीत प्राकट्य विश्वास से परे के स्थिति से है। अर्थात् जब कोई आश्चर्य की बात सामने प्रत्यक्ष या प्रकट होती है जिसकी सम्भावना ही न हो और जो सत्य लग रही हो परन्तु उसकी असम्भाव्यता ही उसके सत्यता एवं विश्वसनीयता में संदेह उत्पन्न कर रही हो, तब उसी स्थान एवं समय व परिस्थिति में एक तरफ प्रत्यक्षतः सत्य का लगना तथा दूसरी तरफ उसकी असम्भाव्यता तथा उससे उत्पन्न संदेह यानी दोनों में जब एक दूसरे के प्रतिकूल खींचतान होती है, तब वहीं आश्चर्य प्रकट होता है । इससे तो स्पष्ट हो जाता है कि 'आश्चर्य' का मतलब 'झूठ नहीं'। असम्भाव्यता के बावजूद सत्य का प्राकट्य होना ही आश्चर्य है।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! वास्तव में तत्त्वज्ञान जड़ जगत् से सम्बन्धित समस्त कर्म-विधान तथा चेतन आत्मा से सम्बन्धित योग-साधना या अध्यात्म भी, परिपूर्ण रूप में ही दोनों का ही आदि-अन्त से युक्त होते-रहते यानी दोनों की ही उत्पत्ति तथा दोनों का ही अन्त इसी तत्त्वज्ञान के अन्तर्गत परमात्मा से ही तथा तत्त्वज्ञान अन्तर्गत परमात्मा में ही होता है ।

तत्त्वज्ञान सम्पूर्णता वाला विधान

इस प्रकार तत्त्वज्ञान अन्तर्गत परमात्मा के अन्दर दोनों ही परिपूर्ण रूप में समाहित रहते हैं, जो उसके लिये उचित या ठीक ही है । परन्तु व्यवहारतः मुख्य परेशानी की बात तो यह होती है कि तत्त्वज्ञानदाता के पास कोई यदि कर्म-काण्डी कुछ जानने-समझने आता है, तो वह यह तो पाता ही है कि उसकी जितनी भी बातें या शंकायें थी, सभी सटीक एवं पुष्ट व्यावहारिक प्रमाणों के साथ समाधान हो जाता है, जिससे वह यह तो कबूल या स्वीकार करता है कि इनके (ज्ञानदाता के) पास अथाह जानकारी है या प्रायः ये सब, सब कुछ ही जानते हैं । परन्तु वह कर्मकाण्डी उस समय भ्रम का शिकार हो जाता है, जब वह किसी अन्य योगी-साधक या आध्यात्मिक

के साथ वार्ता को सुनता है, क्योंकि कर्मकाण्डी योग या आध्यात्मिक साधना का विरोधी तथा आध्यात्मिक कर्मकाण्ड के घोर विरोधी होने के कारण, दोनों ही अपने विरोधी बातों से युक्त उन्हें जब देखते हैं तो अपने-अपने विरोधी बातों के कारण भ्रमित हो जाया करते हैं । वे यह नहीं देखते कि जिन शंकाओं को लेकर वे आये थे, उनका समाधान उन्हें बोधगम्य तरीके से मिला है। उनकी कोई ऐसी शंका नहीं रही है जो सहजता पूर्वक एवं बोधगम्यता रूप में समाधान उन्हें न प्राप्त हुआ हो, चाहे वे कर्मकाण्डी हों या योगी-साधक अथवा आध्यात्मिक । उन कर्मकाण्डी और आध्यात्मिक बन्धुओं को तो यह सोचना चाहिये कि यह कौन है, जो, जो कोई भी जिस किसी प्रकार की भी शंका लेकर आता है, उसे सटीक सहजता पूर्वक एवं बोधगम्य तरीके से सप्रमाणित समाधान देता है, चाहे कर्मकाण्डी की शंका रही हो या योगी-साधक-आध्यात्मिक की । यह तो उनके पल्ले ही नहीं पड़ती । पल्ले पड़ती है विरोधी बात-व्यवहार और जानकारी जो उन्हें भ्रमित किये वगैर नहीं छोड़ती !

किसी भी व्यक्ति को अपनी शंका समाधान से मतलब रखना चाहिये। यदि दूसरे के शंका-समाधान से भी मतलब रखना है तो रहस्य भाव में ही सुनना जानना, उचित मनन-चिन्तन द्वारा उसके सत्यता को जानना-समझना चाहिये । ऐसा प्रायः देखा जाता है कि अपने शंका-समाधान से किसी को भी असन्तुष्टि नहीं होती । सभी के सभी ही सन्तुष्ट हो जाते हैं । परन्तु अपने विधान के प्रतिकूल आचरण-क्रिया कलाप एवं व्यवहार कर्मकाण्डी, योगी-साधक-आध्यात्मिक जैसा ज्ञानदाता को करते-कराते हुये देख-देखकर सदा ही भ्रमित होते रहते हैं । यदि यह भी देखने की कोशिश करते कि इसकी यथार्थता क्या है, तो अवश्य ही पाते कि ज्ञानदाता सब कुछ करता हुआ भी अकर्त्ता तथा कुछ नहीं करने के बावजूद भी सब कुछ का कर्त्ता है। अर्थात् ज्ञानदाता आध्यात्मिकों के लिये श्रेष्ठतम् आध्यात्मिक तथा कर्मकाण्डियों के लिये श्रेष्ठतम् कर्मकाण्डी जैसा बोलते-चलते-करते हुये भी अध्यात्म तथा कर्मकाण्ड दोनों से ही सर्वथा परे भगवद् लीलामय भी रहता हुआ अपना लक्ष्य कार्य सम्पादन करता रहता है जो अति रहस्यात्मक एवं परम गोपनीय विधान से करता रहता है । अपने भगवद् लीला का रहस्य वह सदा ही गोपनीय रखता है । कभी कभी अपने अनन्य प्रेमियों, अनन्य सेवकों तथा अनन्य भक्तों से ही कुछ रहस्यात्मक भेद बताता है । अन्यथा भगवद् लीला का रहस्य किसी को भी बताना उसका एकमात्र अपना निजी विधान है जिसको चाहे बताये या जिसको चाहे न बताये ! यह परम गोपनीय विधान होता है ।

जोर-जुल्म-भ्रष्टाचार में ही भगवदवतार

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! वास्तव में भगवदवतार तो उसी बीहड़ परिस्थितियों यानी संसार से सत्य-धर्म-न्याय-नीति के प्रायः लुप्त हो जाने और उसके स्थान पर जब असत्य-अधर्म-अन्याय-अनीति का जोर जुल्म दुराचार-अत्याचार दूषित भाव-विचार दूषित व्यवहार एवं दूषित कर्म का ही चारों तरफ बोलबाला एवं साम्राज्य हो जाता है । सत्य-धर्म न्याय-नीति असहाय एवं दूषित होता हुआ समाप्ति के अन्तिम रूप में पहुँच कर दम घुटता रहता है और चारों तरफ ही शैतान तथा शैतान मण्डली अपने जोर जुल्म अत्याचार-भ्रष्टाचार के माध्यम से सत्य-धर्म-न्याय-नीति को भू-मण्डल से ही सफाया करने पर उतारू हो जाता है । ठीक उन्हीं परिस्थितियों के मध्य खुदा-गॉड-भगवान् का परम आकाश रूप परमधाम से इस भू-मण्डल पर अवतरण होता है तथा किसी शरीर को ग्रहण या धारण कर उस शरीर के जीव-आत्मा को अपने आप परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप शब्द-ब्रम्ह रूप परमब्रम्ह में विलय कर-करा कर उस शरीर विशेष से स्वयं निरीक्षण-सर्वेक्षण, तत्पश्चात् परीक्षण करता-कराता हुआ, गुप्त रूप से यत्र-तत्र-सर्वत्र भ्रमण करता-रहता है । तत्पश्चात् उचित समय एवं परिस्थितियों के अनुसार अपने क्रिया-ज्ञान-बल-ऐश्वर्य आदि को प्राकट्य करता हुआ अपने वास्तविक परिचय-विधान व कार्य विधान रूप तत्त्वज्ञान या भगवद्ज्ञान या सत्यज्ञान के माध्यम से ही परिचय-पहचान देता हुआ अपना मुख्य कार्य सत्य-धर्म-न्याय-नीति में से पहले चरण के दो को (सत्य और धर्म को) लेकर सांसारिक जन मानस में बीजारोपण यानी सत्य-धर्म की स्थापना का कार्य आरम्भ करता-कराता है ।

प्रभावकारी रूपों में सत्संग करता-कराता हुआ जन मानस में सत्य-धर्म को जगाकर प्रचार-प्रसार करता-कराता है। तत्पश्चात् दृढ़तापूर्वक सहज रूप से साक्षात् बोधगम्यय तरीका अपना कर शंका-समाधान के माध्यम से लोगों में भरे हुए असत्य एवं अधार्मिक भाव को प्रभावकारी, व्यावहारिक एवं शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा शंका-समाधान करता कराता हुआ जनमानस के अन्दर प्रविष्ट भ्रमों का निवारण करता कराता है । हालाँकि शैतान और शैतान मण्डली इन कार्य-क्रमों (सत्संग एवं शंका-समाधान वाले कार्यक्रमों) का मनगढ़न्त अनेकानेक बातों-विधानों से आलोचना निन्दा, विरोध, संघर्ष एवं लड़ाई-झगड़ा किये वगैर नहीं मानते । फिर भी भगवदवतार रूप तत्त्वज्ञानदाता सहिष्णुता का सिद्धान्त अपने व्यवहार में प्रयोग करता-कराता

यानी सब कुछ झेलता सहता हुआ सर्वप्रथम सत्य-धर्म का प्रभावी तरीके से बीजारोपण कर कुछ मजबूत साधन तैयार करता या बनाता या उत्पन्न करता है । तत्पश्चात् उन्हीं साधनों के माध्यम से दुष्ट-दलन पहले सुधार का भरपूर अवसर देते हुए, न सुधरने पर अन्त में संहार की प्रक्रिया अपनाता है।

भगवदवतार किसी का भी निन्दक विरोधी नहीं अपितु 'सत्य—धर्म' संस्थापक

भगवदवतार वास्तव में न तो किसी का विरोधी होता है और न ही किसी का निन्दक, बल्कि वह तो सत्य-धर्म का संस्थापक-पोषक एवं सच्चा प्रचारक-प्रसारक तो होता ही है और सामान्य तरीके से नहीं बल्कि हलचल मचाता, घोषित करता कराता हुआ सत्संग कार्यक्रमों की रचना एवं उसका प्रभावी तरीके से उस क्षेत्र में घोषित करता कराता हुआ पहले पहल तो पूरे क्षेत्र में ज्ञान-क्रान्ति का हलचल मचा-मचवा देता है तथा समस्त मिथ्या ज्ञानाभिमानियों, अभिमानियों, आडम्बरियों, पाखण्डियों तथा तान्त्रिकों-यान्त्रिकों, विद्वानों, वैज्ञानिकों, योगियों, आध्यात्मिकों, आचार्यों-पण्डितों, अधिकारियों-कर्मचारियों, नास्तिकों आदि-आदि प्रायः सभी के कानों तक किसी भी सम्बन्ध में शंका-समाधान तथा शास्त्रार्थ हेतु चुनौती पूर्ण घोषणायें भी कर-करा देता है कि भगवदवतार हो गया है जो जैसा चाहे जान-समझ कर या जिस प्रकार भी चाहे भगवत् परीक्षण विधान एवं तत्त्वज्ञान का परीक्षण कर-करा सकता है । इस प्रकार से जिस क्षेत्र में भी प्रवेश करता है, भगवद्ज्ञान की एक क्रान्तिपूर्वक हलचल सी मच जाती है । इस प्रकार सत्य-धर्म-संस्थापन तथा उसका प्रचार-प्रसार करता-कराता है।

किसी के भी पीछे—पीछे नहीं अपितु सभी के ही आगे—आगे रहने वाला ही होता है तत्त्वज्ञान विधान

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! तत्त्वज्ञान को अपने मति-गति के अनुसार प्राप्त करने, परीक्षण करने तथा अपने जीवन में उसे उतारने या लेकर चलने का कभी भी प्रयत्न करना तो प्रयत्न करना होता है, सोचना व कल्पना भी नहीं करना चाहिए । भगवत् प्रदत्त ठीक प्राकृतिक विधान ही है कि बड़ी विषय-वस्तु छोटी या समान गुण-व्यवहार वाले विषय-वस्तुओं को अपने में विलय या विलीन या मिलान कर-करा लेता है । इस प्रकार तत्त्वज्ञान पूरे ब्रम्हाण्ड में ही अतुलनीय है ।

जब ब्रम्हाण्ड की कोई या किसी विषय वस्तु या शक्ति-सत्ता से तुलना नहीं की जा सकती है (क्योंकि सम्पूर्ण ब्रम्हाण्डीय विधि-विधान ही इसी तत्त्वज्ञान से उत्पन्न तथा इसी तत्त्वज्ञान में विलय कर जाता है) फिर इसमें तत्त्वज्ञान के तुलना की बात करना-कराना तो दूर रहा, सोचना भी नहीं चाहिए।

अब यहाँ पर थोड़ा बहुत मनन-चिन्तन की तथा सूझ-बूझ की आवश्यकता है कि ऐसा और इस क्षमता वाले तत्त्वज्ञान को कोई भी अपने मति-गति के अनुसार पाना या अपने मति-गति के अनुसार परीक्षण करना चाहे तथा अपने मति-गति के अनुसार अपने पास इस तत्त्वज्ञान को रखना तथा ले चलना चाहे, तो वह मात्र मूढ़ एवं जढ़ी ही कहलाने लायक नहीं है, बल्कि विकृत मष्तिस्क तथा दिमागी भ्रष्ट एवं शैतान प्रेरित मति-गति वाला ही है जो ऐसा सोच सकता है, अन्यथा ऐसी कल्पना भी अकल्पनीय ही होनी चाहिए। इसलिये समस्त जिज्ञासु एवं ज्ञानियों को चाहिये कि तत्त्वज्ञान पद्धति के सिद्धान्त के अनुसार ही इसे जानें-पायें और सर्वतोभावेन यानी तन-मन-धन से ही अपने को इसके प्रति समर्पित कर दें। और शरणागत होते रहते हुए चलें-रहें।

एकमेव एकमात्र एक भगवदवतार का ही और के लिए—'तत्त्वज्ञानविधान'

संसार में भी प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सामान्य व्यक्तियों या वस्तुओं से कुछ लाभ लेना होता है, तो लाभ के अनुसार उन व्यक्तियों या वस्तुओं के अनुसार होकर ही लाभ लिया जाता है। जब सांसारिक तुच्छ सामानों हेतु ऐसा विधान है तब तो 'तत्त्वज्ञान' जैसी सर्व शक्ति-सत्ता-सामर्थ्य एवं समस्त ज्ञान का भण्डार होने-रहने वाला किसी के अधीन, किसी के अनुसार या किसी के पास कैसे जा-रह या हो सकता है।

थोड़ा भी सोचा जाये कि एकमात्र भगवदवतार के सिवाय पूरे सृष्टि या ब्रम्हाण्ड में भी क्या कोई ऐसा है कि इस तत्त्वज्ञान को अपने मति-गति के अनुसार ही जाने, पावे, परीक्षण करे तथा जैसा मन करे चलावे। तो ऐसा न कभी कोई था, न है और न कभी कोई हो ही सकता है! यह एकमात्र भगवत् परिचय एवं पहचान तथा भगवत् कार्य विधान होने के कारण भगवान् से पृथक् हो ही नहीं सकता। जब, जहाँ, जैसे भी भगवान् या भगवदवतार रहता है, यह तत्त्वज्ञान उन्हीं के साथ ही, तब वहाँ वैसा ही रहता है।

यह तत्त्वज्ञान तथा भगवान् दोनों ही दो नहीं हैं, अपितु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक पहलू 'तत्त्व' है तो दूसरा उसका 'ज्ञान' या एक पहलू 'ज्ञान' है तो उसका दूसरा पहलू है 'तत्त्व'। इस प्रकार तत्त्व और ज्ञान का एक दूसरे के साथ ऐसा

अनन्य सम्बन्ध होता है जिसे दो कहना भी भ्रम ही पैदा करने जैसे लगता है । यह दो होते हुये भी एक ही होता है तथा एक ही होता हुआ भी दो प्रकार से प्रयुक्त होता है या कहा जाता है । ठीक ही है एक ही सिक्के का दो पहलू ।

इस प्रकार तत्त्वज्ञान को कभी भी अपने अनुसार नहीं सोचना-समझना चाहिए। हमसे कोई ऐसा कार्य-व्यवहार तो नहीं हो रहा है जो भगवान् तथा सद्गुरु के विधान से रत्तीभर भी पृथक् या विरोधाभाष या भ्रमवश की जा रही है और यदि है तो तुरन्त ही क्षमा माँगता हुआ क्षमा या क्षमा याचना का निष्कपटता पूर्वक अनन्य श्रद्धा-भक्ति-निष्ठा के साथ अनन्य भक्ति, अनन्य सेवा एवं अनन्य प्रेम व्यवहार में रहता हुआ, सदा ही यह प्रयत्न करते रहना चाहिए कि हम हर पहलू से भगवदवतार रूप सद्गुरु या परमप्रभु के प्रसन्नता एवं प्रेम पात्र बने रहें, जिससे कि परमप्रभु सदा ही अपने प्रेम पात्रों के साथ लीला व्यवहार करते रहे।

तत्त्वज्ञान ग्रहिता को तो सदा ही अपना सौभाग्य मनाते रहना चाहिए कि परमप्रभु ने उसे अपनी विशेष कृपा दृष्टि का पात्र बना-बनवाकर ही अपना 'तत्त्व' रूप तत्त्वज्ञान के माध्यम से स्वयं ही जनाया, दर्शाया तथा स्वयं बात-चीत करते-कराते हुये अद्वैतत्त्व बोध तक करा दिये । ऐसे परमप्रभु को अपने साथ किस प्रकार रखा जाय ! कैसे भक्ति-सेवा-प्रेम दिया जाय कि परम आनन्द रूप सदानन्द रूप सच्चिदानन्द प्रभो सदा ही आनन्दमग्न रहें !

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सभी मनुष्य ही शान्ति और आनन्द एवम् पद और प्रतिष्ठा--इन चारों की प्राप्ति हेतु ही संसार में अनेकानेक कठिनाइयों को झेलता हुआ अथक परिश्रम करता रहता है तब भी ये चारों नहीं प्राप्त कर पाता। शान्ति और आनन्द योगी- साधक या आध्यात्मिक साधना में रहने वाले पाते हैं, तो पद और प्रतिष्ठा शारीरिक-पारिवारिक-सांसारिक जनों के पास ही जाती है । ऊँचे से ऊँचे पदों पर पद-स्थापितों को शान्ति और आनन्द नहीं मिलता । वे सर्वदा अशान्त या बेचैन तथा अनेकानेक सुख साधनों से युक्त होने-रहने के बावजूद भी आनन्द शून्य ही रहते हैं। कर्म विधान, पद और प्रतिष्ठा दिलाता है तो अध्यात्म विधान शान्ति और आनन्द। कर्म विधान वाले को तो शान्ति और आनन्द तो प्राप्त हो ही नहीं पाता, अध्यात्म विधान में लीन सिद्ध- साधक, योगी तथा आध्यात्मिक सन्त-महात्मागण माया जाल में फँसने-भटकने के डर से पद-प्रतिष्ठा से दूर ही रहते हैं ।

इस प्रकार शान्ति और आनन्द तथा पद और प्रतिष्ठा ये चार ऐसे संकेत प्रदान

कर रहे हैं कि किसी भी आध्यात्मिक और सांसारिक अथवा सांसारिक और आध्यात्मिक में से किसी को ही ये चारों एक साथ कदापि नहीं उपलब्ध हो सकते। परन्तु क्या ही आश्चर्यमयी बात एवं आश्चर्यमयों में भी परम आश्चर्यमय विधान 'तत्त्वज्ञान' का है कि वास्तव में जो कोई ही निष्कपटतापूर्वक श्रद्धा एवं विश्वास के साथ, सर्वतोभावेन अपना तन-मन-धन भगवद् अर्पण करता हुआ अनन्य भक्ति, अनन्य सेवा, अनन्य प्रेम भाव से भगवदवतार के प्रति पूर्णतः शरणागत भाव में शरीर पर्यन्त रहने का संकल्प देता तथा उस संकल्प का पालन करता है, तो वह चार ही क्या, 'तत्त्वज्ञान' उसे कितना और क्या देता है, कहाँ और कैसे पहुँचाता है--यह बिल्कुल ही अकथनीय बात है । एक ही बात कही जा सकती है कि प्राप्तकर्त्ता को पूरे ब्रम्हाण्ड में ही कुछ जानना और पाना शेष ही नहीं रह जाता ! यह अकाट्य सत्य बोध गम्य बात है । परम शान्ति, परम आनन्द, परम पद, सच्चिदानन्द, शाश्वत् शान्ति और शाश्वत् आनन्दमय एवं सदानन्दमय, अद्वैतत्त्व बोध, परम गति, परम हंस, परम भाव, परम सत्य, परम तत्त्व, अर्थात् 'परम' को ही, जो किसी में हो, 'परम' की प्राप्ति तत्त्वज्ञान सहजतापूर्वक प्रदान करता है । इतना ही नहीं जिस मुक्ति और अमरता को प्रदान करने का अधिकार शंकरजी व आदि-शक्ति भी नहीं रखते, और की बात क्या कहा जाये । उस मुक्ति-अमरता का भी साक्षात् बोध यहाँ तत्त्वज्ञान अपने शरणागत-भक्त सेवकों को सहजता के साथ करा देता है । तत्त्वज्ञान और कुछ नहीं बल्कि एकमात्र 'परम' से ही युक्त करता हुआ, परम भाव का ही साक्षात् बोध अपने शरणागत रहने वाले भक्त-सेवकों को करा देता है-- हर स्तर में परम ही परम।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! मानव शरीर प्राप्त करना सृष्टि में सौभाग्य की बात है, क्योंकि देवता लोग भी इस मानव शरीर को प्राप्त करने के लिये तरसते हैं क्योंकि मुक्ति और अमरता देने दिलाने वाले तत्त्वज्ञान की प्राप्ति एकमात्र मानव शरीर से ही सम्भव है, अन्यथा किसी भी शरीर से नहीं । यह बात अलग की है कि परमप्रभु किसी भी जीव को ही चाहे तो उसे मुक्त और अमर बनाने के लिये उसकी कृपा विशेष ही काफी है, लेकिन यह कृपा विशेष अपवाद स्वरूप ही किसी-किसी को मिल जाया करती है, परन्तु वैधानिक रूप में मुक्ति और अमरता का साक्षात् बोध करा देना तथा अन्ततः उसे उपलब्ध भी करा देना एकमात्र आरक्षित अधिकार तत्त्वज्ञान को ही है और एक मानव शरीर के अतिरिक्त अन्य किसी भी शरीर धारण करने वाले जीव-जीवात्मा-आत्मा को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति और मुक्ति-अमरता का साक्षात् बोध हो नहीं सकता । मानव शरीर सृष्टि के अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट

एवं सर्वोत्तम रचना है । ऐसे मानव शरीर को पाना, जिसके लिये देवतागण भी तरसते हैं, वह शरीर आप जीव-जीवात्मा को मिली ही एकमात्र अपने जीवन लक्ष्य रूप मुक्ति और अमरता का साक्षात् बोध प्राप्त करने के लिये ।

दूसरी बात यह है कि मनुष्य शरीर भी तो लोगों को मिलती और समाप्त होती रहती है । अनेकानेक मनुष्य अनेकानेक विधान के खोज के माध्यम से मुक्ति और अमरता की खोज करते रहे, लेकिन उपलब्ध नहीं हो सका । इसलिये मनुष्य शरीर पाने मात्र से ही अमरता मिल ही जायेगी-- यह तो कोई गारण्टी (पक्का वचन) तो दी नहीं गई है । मनुष्य उन भगवदवतारियों से यदि उस समय मिले, जब परमप्रभु का भू-मण्डल पर अवतरण होकर भ्रमण हो रहा हो, तब वह तत्त्वज्ञान द्वारा ही उस मुक्ति-अमरता को प्राप्त कर सकता है। ऐसा सुअवसर भी प्रायः युग-युग में एक-एक बार ही जानने-देखने-जानने-पाने को मिलता है यानी सत्ययुग में श्रीविष्णु जी, त्रेतायुग में श्रीराम चन्द्र जी, द्वापरयुग में श्रीकृष्ण जी तथा वर्तमान में कलियुग में सदानन्दजी भी वही तत्त्वज्ञान दे रहे हैं, जिसे वे तीन दिये थे ।

पहले तो मनुष्य शरीर ही दुर्लभ, दूसरे भगवदवतार कालीन-समय में होना तो अत्यधिक ही दुर्लभ होता है, उसमें भी भगवदवतार की जानकारी मिलना तथा उनके सम्पर्क में आना तो उससे भी अत्यधिक दुर्लभ बात है और उससे भी दुर्लभ बात है परमप्रभु की कृपा विशेष प्राप्तकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर बोधित होना । तत्पश्चात् सबसे दुर्लभ यानी परम दुर्लभ बात यह है कि तत्त्वज्ञान हासिल करने के पश्चात् निष्कपटतापूर्वक सर्वतोभावेन भगवद् अर्पण करता-होता हुआ अनन्य भक्ति-सेवा-प्रेम भाव में परमप्रभु की कृपा विशेष से प्रेम पात्र बनकर शरीर (जीवन) पर्यन्त अनन्य भाव से शरणागत रहना ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक एवं श्रोता बन्धुओं ! प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब बरसात का मौसम आता है और बाढ़ का पानी आ जाता है तो छोटे-छोटे गड्ढों में जल उफनने लगता हैं ताल-तलैया, नदी-नाला में भी चारों तरफ जल ही जल दिखाई देने लगता है । छोटे-बड़े नदी नालों से आकर मिलने से बड़ी-बड़ी नदियाँ सागर जैसी (जो सागर न देखा हो, उसके लिये) दिखाई देने लगती हैं । साथ ही साथ छोटे-छोटे गड्ढों के पास अनेकानेक मेंढक भी आकर प्रायः सभी यही आवाज लगाते हैं कि टर्र-टर्र, टर्र-टर्र यानी सभी यही कहते हैं कि हम आ गये हैं तू सब टर्र या हट जा ! टर्र यानी हट जा ! अर्थात् सब के सब प्रायः यही कहने लगते हैं कि अब हम आ गये हैं, तू सब टर्र-हट जा, क्योंकि जो कुछ हैं सो मैं ही हूँ और कोई कुछ नहीं है!

इसी प्रकार सभी टर्र-टर्राने लगते हैं ।

इसी प्रकार कुछ पूर्व से ही अवतार सम्बन्धी भविष्य वाणियाँ आदि होने लगती हैं जिसे सुन-पढ़कर सामान्य से सामान्य साधक, सिद्ध, योगी, महर्षि तथा आध्यात्मिक सन्त-महात्मागण भी प्रायः सैकड़ों की संख्या में ही अपने को भगवदवतार घोषित करने-कराने लगते हैं । इस प्रकार सभी केवल घोषणा करते तथा अपना-अपना प्रचार-प्रसार करते रहते हैं । लगता है कि उनके पास केवल मुख ही है जिससे वे बोल रहे हैं कि धरती पर एक बार केवल एक ही अवतार होता है और वह अवतार मैं ही हूँ । सोऽहँ-हँ्सो तथा आत्म-ज्योति या दिव्य-ज्योति या ब्रम्ह-ज्योति या नूर या डिवाइन लाइट या जीवन-ज्योति आदि एकमात्र मैं ही जानता हूँ । मेरे सिवा अन्य कोई नहीं जानता । आदि-आदि ऐसा प्रायः सभी ही घोषित करने लगते हैं ! प्रायः सब के सब एक ही श्वाँस-निःश्वाँस से हँ्सो का वह भी उल्टा क्योंकि सीधे की उन्हें जानकारी ही नहीं । उल्टा-सीधा जाप से नुकसान-फायदा या हानि-लाभ क्या होता है, क्या नहीं-- यह भी उन्हें पता नहीं। प्रायः सभी ही उल्टा जाप सोऽहँ-ज्योति को भगवान् का नाम-रूप कहकर अपने अनुयायियों को जना-दर्शा रहे हैं ! कुछेक नाद बिन्दु तो कुछेक खेचरी करा रहे हैं तथा इसी सोऽहँ-ज्योति को ही 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप खुदा-गॉड-भगवान् तथा आध्यात्मिक सोऽहँ वह भी हँ्सो भी नहीं; के साधना को ही तत्त्वज्ञान कहकर अपने ही अवतारी बन जा रहे हैं। थोड़ा भी दूसरे की नहीं सुनते कि ऐसा ही सैकड़ों-हजारों कह रहे हैं तो इसमें सही कौन है ? सभी के सभी ही अपना-अपना राग अलाप रहे हैं, जबकि थोड़ी सी यही सोऽहँ व ज्योति, खेचरी व अनहद के सिवाय उन्हें कुछ पता भी नहीं, फिर भी वे भगवान् या अवतारी सद्गुरु आदि बन-बनकर समाज को ठगते और गुमराह करते यानी धन-धर्म दोनों का ही दोहन-शोषण करते-कराते चले आ रहे हैं ! आज भी ऐसे ही कर-करवा रहे हैं । सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग में भी श्रीविष्णु-राम-कृष्ण जी के समय भी ऐसा ही हुआ था। वर्तमान में भी हो रहा है ।

अब सभी का नकली नकाब हट रहा है । अब पर्दाफास हो जा रहा है । आप सभी झूठे हो-- असल 'तत्त्वज्ञान' यह है कि वास्तविक रूप, असल रूप भगवदवतार के आने पर अवतरण के पूर्व से ही अवतारी बन-बनकर चारों तरफ घोषणाओं पर घोषणायें करते रहते हैं परन्तु समाज में अराजकता एवं आतंक तथा अत्याचार एवं भ्रष्टाचार का साम्राज्य छाया हुआ है। सब कैसे ठीक होगा ? क्या केवल राग अलापने से सत्य-धर्म की स्थापना हो जायेगी तथा वे भगवान् बन जायेंगे ? ये मिथ्यावादी एवं

मिथ्या ज्ञानाभिमानी सत्य-धर्म-न्याय-नीति का हाल क्या जानेंगे ? अथाह धन-सम्पत्ति तथा विशालकाय शिष्य एवं अनुयायी समाज बना-बनाकर उसी में फूले हुये हैं कि हमारे पास इतने काफी संख्या में अनुयायी हैं तो हमारे पास इतने आश्रम, केन्द्र व कार्यालय हैं, आदि आदि । जबकि ये सब घोषित करते हैं कि भौतिक सारी चीजें मायावी हैं जो सद्गुरु की पहचान नहीं हो सकती । सद्गुरु की एकमात्र पहचान उनके द्वारा देय तत्त्वज्ञान होता है ।

इन मिथ्या वादियों तथा मिथ्या ज्ञानाभिमानियों को कैसे समझाया जाय कि देवताओं का राजा इन्द्र भगवान् नहीं होता ! धन का भण्डारी कुबेर भगवान् नहीं होता ! योग-साधना या अध्यात्म के सर्वोच्च पद पर पदासीन सबसे लम्बे समय तक समाधि लगाने वाले शंकरजी भी भगवान् नहीं होते! पुनः योग के विशेषज्ञ पातन्जलि भगवान् नहीं हुये ! मायावी व चमत्कारी रावण आदि राक्षस भगवान् नहीं कहलाये । अठासी हजार ऋषियों के लिये एक 'विश्वायतन' चलाने वाले शौनक भी भगवान् नहीं हुये ! ये सभी ही मायावी (धन-जन- आश्रम-मान-प्रतिष्ठा) रूपी चकाचौंध के शिकार हो चुके हैं । अब इन्हें समझाना भी आसान नहीं रह गया है ।

हम तो इन मिथ्यावादियों एवं मिथ्या ज्ञानाभिमानियों को चुनौती के साथ सूचना भिजवा चुके हैं तथा इन लोगों को सूचित कर-करवा दिये हैं कि सोऽहँ व ज्योति-साधना 'तत्त्वज्ञान' नहीं होता । यह सोऽहँ तो अध्यात्म जीवात्मा की साधना भी नहीं है, भगवान का तत्त्वज्ञान तो कदापि नहीं । आत्मा कभी भी परमात्मा नहीं; ईश्वर कभी भी परमेश्वर नहीं; ब्रम्ह कभी भी परमब्रम्ह नहीं; चेतन कभी भी करतार (कर्त्ता) नहीं; हँस कभी भी परमहंस नहीं; सोऽहँ व ज्योति कभी भी 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम्' नहीं; चिदानन्द कभी भी सच्चिदानन्द नहीं; अध्यात्म कभी भी तात्त्विक पद्धति-तत्त्वज्ञान नहीं; गुरु कभी भी सद्गुरु नहीं। अधिक धन-जन-आश्रम, प्रसार, मान-प्रतिष्ठा- साधन भगवान् की पहचान नहीं । अब से भी तो आप लोग अपने को मात्र योगी-यती-ऋषि-महर्षिगण, आध्यात्मिक सन्त-महात्मा तथा आत्मा वाला गुरु मात्र ही रहो । मिथ्यावादिता व मिथ्याभिमान छोड़ो, गुरु ही कहलायें, सद्गुरु न बनें। आपका भी महत्त्व सही रहने में ही बढ़ेगा। वास्तविक अवतार प्रकट हो चुका है । आप सब लोग अब से भी तो संभल जायें, अन्यथा कहीं ठिकाना नहीं मिलेगा ।

अतः वास्तविक सत्य एकमात्र यही 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप परम भाव-प्रभाव वाला परमब्रम्ह परमात्मा या खुदा-गॉड-भगवान'

ही है, जिसे एकमात्र तत्त्वज्ञान से ही जाना-देखा-परखा-पहचाना जा सकता है । शिक्षा और स्वाध्याय को कौन कहे, योग-साधना अथवा अध्यात्म की भी पहुँच यहाँ तक नहीं होती । आध्यात्मिक की अन्तिम पहुँच आत्मा तक ही होती रहती है ।

सम्पूर्ण कर्म तथा सम्पूर्ण अध्यात्म का आदि श्रोत तथा अन्तिम लय रूप एकमात्र यही तत्त्वज्ञान भगवद्ज्ञान रूप सत्यज्ञान ही है जो खुदा-गॉड-भगवान का ही एकमात्र परिचय-पहचान और लक्ष्य विधान है । सत्ययुग में श्रीविष्णुजी, त्रेतायुग में भी श्रीराम चन्द्र जी तथा द्वापरयुग में श्रीकृष्ण जी के साथ ही 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम्' था तथा वर्तमान में एकमात्र सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस ही उस 'परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम्' और 'तत्त्वज्ञान' वाले हैं। परीक्षा कर सकते हैं !

वर्तमान में पूरे भू-मण्डल का ही एकमात्र तत्त्वज्ञानदाता सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस ही हैं, अन्य कोई भी नहीं । जिस किसी को भी कर्म-अध्यात्म और तत्त्वज्ञान-- तीनों की ही सम्पूर्ण जानकारी, जिससे जीव एवं ईश्वर और परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान का विराट पुरुष से भी बात-चीत करते हुये साक्षात् दर्शन व मुक्ति-अमरता का साक्षात् बोध भी प्राप्त होता है। चाहिये तो उसे एकमात्र सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस (सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद् वाले) से ही मिल सकता है । जो चाहे भगवद् समर्पित शरणागत भाव में होते-रहते हुए जान-देख परख-पहचान प्राप्त कर सकता है ।

जिस प्रकार विद्यातत्त्वम् में ये चार श्रेणियाँ हैं, ठीक उसी प्रकार बालक या विद्यार्थियों तथा समस्त मानव समाज भी चार श्रेणियों (स्तरों) में ही है। उसे स्पष्टतः पृथक्-पृथक् रूप में जानने-समझने हेतु पृथक्-पृथक् गुण-कर्मों में विभक्त कर देना चाहिये तथा जो जिस योग्यता एवं क्षमता को रखता हो, उसको उसी श्रेणी के कर्त्तव्य-कर्मों से युक्त कर-करा देना चाहिये। विद्यार्थी अथवा मानव का चार श्रेणियाँ अग्रलिखित हैं--

१ अधम; २ निम्न; ३ मध्यम और ४ उत्तम ।

उसी योग्यता और क्षमता के अनुसार कर्त्तव्य कार्य के श्रेणियों का बँटवारा भी होना चाहिए । मात्र भौतिक 'शिक्षा' कर्म-भोग प्रधान वाले को अधम श्रेणी में, स्वाध्याय वालों को निम्न श्रेणी में, योग-साधना अथवा अध्यात्म वालों को मध्यम श्रेणी में और तत्त्वज्ञान या सत्यज्ञान पद्धति वालों को उत्तम श्रेणी में रखते हुये उसी योग्यता और क्षमता के अनुसार कर्त्तव्य कार्य के श्रेणियों का भी बँटवारा होना

चाहिये। चतुर्थ वर्ग के कर्त्तव्य कार्य भौतिक वाले के लिये, तृतीय वर्ग के कर्त्तव्य कार्य को स्वाध्यायी वाले के लिये, द्वितीय वर्ग के कर्त्तव्य कर्म को योग-साधना अथवा अध्यात्म और प्रथम श्रेणी वाले कर्त्तव्य कर्मों को तत्त्वज्ञान या सत्यज्ञान पद्धति वाले को ।

विद्या भेदभाव रहित हो

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! विद्या का क्षेत्र प्रत्येक बालक के लिये समान होना चाहिए । जन्म के आधार पर कोई भेद-भाव या बँटवारा कदापि नहीं होनी चाहिये । विद्या का क्षेत्र प्रत्येक बालक के लिए समान रूप से खुला होना या खुला रहना चाहिये। विद्या अध्ययन के श्रेणियों में विद्यार्थियों का योग्यता एवं क्षमता के अनुसार ही, न कि जनम (वर्ग- जाति) के अनुसार प्रवेश मिलना चाहिये। विद्या हेतु आये हुए बालकों को समान रूप में बारह साल तक सहज-सामान्य शिक्षा दिया जाय । पुनः उसके बुद्धि-विवेक की निष्पक्षता पूर्वक परीक्षा लिया जाय और परीक्षा के प्राप्त अंकों के आधार पर ही चतुर्थ श्रेणी में आने वालों को भौतिक शिक्षा विभाग में, तृतीय श्रेणी में आने वालों को स्वाध्याय विभाग में, द्वितीय श्रेणी में आने वाले को योग साधना अथवा आध्यात्मिक प्रक्रिया विभाग में और प्रथम श्रेणी में आने वाले को तत्त्वज्ञान पद्धति अथवा सत्य ज्ञान पद्धति अथवा विद्यातत्त्वम् पद्धति वाले विभाग में निष्पक्षता पूर्वक प्रवेश मिलना चाहिये ।

यहाँ पर चतुर्थ श्रेणी की भी बात की गयी है जिसपर आप सोचेंगे कि परीक्षा में चतुर्थ श्रेणी होता ही नहीं तो यहाँ पर यह बता देना जरूरी समझ रहा हूँ कि परीक्षा में वास्तव में चार श्रेणियाँ हैं, मगर घोषित रूप में मात्र तीन ही हैं । अब यहाँ चारों को क्रमशः देखें । चतुर्थ श्रेणी में ३३ प्रतिशत से भी नीचे अंक पाने वाले अनुत्तीर्ण-अधम, तृतीय श्रेणी में ३३ से ५० प्रतिशत तक वाले तृतीय-निम्न, द्वितीय श्रेणी में ५० से ६० प्रतिशत तक अंक वाले द्वितीय-मध्यम और ६० प्रतिशत से ऊपर ७५ प्रतिशत तक वाले प्रथम-उत्तम श्रेणी और ७५ प्रतिशत से ऊपर वाले जो विशिष्ट अथवा ऑनर-सम्माननीय उपाधि वाले हैं, आते हैं । यह बात हर किसी को याद रहे कि ये श्रेणियाँ केवल पढ़ाई-लिखाई के आधार पर ही नहीं अपितु बुद्धि और विवेक को भी उसमें महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए । तब ही निर्णय सही हो पायेगा अन्यथा निर्णय आध-अधूरे और गलत कहलाने लगेगा और व्यक्ति के क्षमता-शक्ति-सामर्थ्य का सही सही आकलन हो ही नहीं पायेगा, फिर तो निर्णय का महत्त्व ही क्या रह

जायेगा? अर्थात् कुछ भी नहीं ।

उपर्युक्त जो चार श्रेणियाँ बताई जा रही हैं, वास्तव में ये 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' की नहीं हैं अपितु 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' में क्रमशः नीचे से ऊपर स्थित चार श्रेणियों-- शिक्षा (Education), स्वाध्याय (Self Realization), योग-साधना या अध्यात्म (Spiritualization) और 'तत्त्वज्ञान रूप परम ज्ञान रूप सम्पूर्ण ज्ञान रूप सत्यज्ञान (True, Supreme and Perfect KNOWLEDGE) में प्रवेश पाने हेतु पात्रता का आधार होना चाहिये ।

प्रवेश-पात्रता का आधार

ईमान-सच्चाई-संयम-सेवा होना चाहिये

'विद्यातत्त्वम् पद्धति' में प्रवेश पाने हेतु पात्रता-निर्धारण के लिये उपर्युक्त अंकीय प्रतिशत वाली चार श्रेणियाँ हैं, वे शैक्षणिक परीक्षा के आधार पर नहीं, अपितु ईमान-सच्चाई-संयम-सेवा के आधार पर होनी चाहिये अर्थात् पात्र में कितने प्रतिशत ईमानदारी, कितने प्रतिशत सच्चाई, कितने प्रतिशत संयम और कितने प्रतिशत सेवा भाव है-- इस आधार पर परीक्षण-प्रतिशत निकाले जाने चाहिये । इससे थोड़ा और खुलासा करके जाना-देखा जाये तो बेहतर होगा । जैसे कि---

पहला-- जो बिल्कुल ही झूठ बोलने वाला हो, बेइमान-चोर हो अर्थात् जिसमें झूठ बोलने, बेइमानी-चोरी करने वाली वृत्ति हो, जो आसक्ति-ममता-स्वार्थ से ग्रसित हो, सुधारने-सवाँरने पर भी अपने को न सुधार-सवाँर पा रहा हो-- उसको शिक्षा के अन्तर्गत प्रवेश देना चाहिये । सर्विस में भी-- नौकरियों में भी चतुर्थ श्रेणी में ही उसे स्थान देना चाहिये और उससे कठिन से भी कठिन शारीरिक श्रम से गुजारना चाहिए ताकि कठिन श्रम के भय से झूठ-चोरी-बेइमानी आदि दुष्प्रवृत्तियों को अपनाये ही नहीं और अपनाया भी हो तो डर-भयवश सहज ही छोड़ दे ।

दूसरा-- जिसमें बेइमानी-झूठ-छल-कपट आसक्ति-ममता-स्वार्थ तो हो, मगर छोड़ने-सुधारने के प्रयास में लगा हो, उसे स्वाध्याय के अन्तर्गत प्रवेश और नौकरी-चाकरी में तृतीय श्रेणी में स्थान दिया जाना चाहिये । शिक्षा विभाग में इन दो श्रेणियों (चतुर्थ एवं तृतीय) में से किसी को भी कभी भी नियुक्ति न दी जाय क्योंकि यदि ये नियुक्ति पा जायेंगे तो अपने समान ही झूठा-छली-कपटी-स्वार्थी छात्र-विद्यार्थी भी उत्पन्न करेंगे ।

तीसरा-- अगले श्रेणी (योग-साधना अथवा अध्यात्म) में उन्हें प्रवेश दिया जाय

जो बेइमानी-झूठ-कपट आसक्ति-ममता-स्वार्थ को बिल्कुल ही त्यागने में लगे हैं । भूल-चूक और मजबूर परिस्थिति मात्र में ही अपने आपको नहीं रोक पा रहे हैं, फिर भी उन्हें छोड़ने और श्रेष्ठतर श्रेणी में होने-रहने-बने रहने के लिये प्रयत्नशील हैं। तब उन्हें योग- साधना अथवा अध्यात्म में प्रवेश मिलना चाहिये और नौकरी-चाकरी में भी द्वितीय वर्ग के अधिकारी की श्रेणी उपलब्ध होनी चाहिये । कमी और परिस्थिति-अभाववश इन्हें भी विद्या विभाग में नियुक्त किया जा सकता है। और

चौथा-- जो झूठ-बेइमानी-चोरी-छल-कपट आसक्ति-ममता-स्वार्थ से परे हों अथवा इन्हें हर हालत में छोड़कर ईमान-सच्चाई-संयम-सेवा को धारण कर चुके हों अथवा धारण करने के सत्प्रयास के अन्तिम श्रेणी में हों, इन्हें 'तत्त्वज्ञान रूप सम्पूर्ण ज्ञान रूप सत्यज्ञान रूप परमज्ञान' में प्रवेश मिलना चाहिये । हर सम्भव प्रयास करके शिक्षा विभाग (विद्यातत्त्वम् विभाग) इन्हीं के जिम्मे सुपुर्द कर देना चाहिये और सारे विधि-विधानों एवं संचालन का निर्देशक और संचालक इन्हें ही नियुक्त करना चाहिये। सकल समाज में इस विधान को प्रभावी से प्रभावी रूप में सरकारों द्वारा यथाशीघ्र लागू कर-करा देना चाहिये । तब जाकर सुखी-समृद्ध, दोष रहित, सत्य प्रधान, उन्मुक्तता और अमरता से युक्त जीवन विधान वाला समाज स्थापित होगा । सर्वत्र सुख-समृद्धि खुशयाली छायी रहेगी । हर मानव निर्भयता और सम्पूर्णता का जीवन सहज ही उपलब्ध कर लेगा । यही जीवन की सार्थकता और सफलता भी होगी । जन्म के आधार पर नौकरियों और रहन-सहन में पद-स्थिति-वर्ग का बँटवारा न होकर 'विद्यातत्त्वम् पद्धति' के आधार पर ही बँटवारा होना चाहिये। अवतार और तत्त्वज्ञान के अनुपस्थिति में संयम-भक्ति-सेवा को आधार बनाकर पढ़ाई रहन-सहन-व्यवहार स्थित-स्थापित करना-कराना चाहिये ।

प्रारम्भिक पाँच साल तक की शिक्षा-दीक्षा

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! प्रारम्भिक पाँच साल के शिक्षा-दीक्षा में सत्यवादिता, संयम, अनुशासन, शिष्टता, विनम्रता, धैर्य, त्याग, साहस आदि सदाचारिता की प्रधानता होनी चाहिये। परीक्षा प्रश्न पत्रों में दो तिहाई प्रश्न इन्हीं क्षेत्रों के होने चाहिये। शिक्षा-दीक्षा विशुद्ध निष्पक्षता पूर्वक अपना बालक, जानते-मानते-समझते हुए दिया जाना चाहिये । इस बात को सदा याद रखना चाहिये कि गुरु के प्रति किसी भी विद्यार्थी को अपने में ऐसा भेद व भ्रम कदापि नहीं होने देना चाहिये कि अमुक विद्यार्थी पर अधिक दृष्टि है और अमुक पर कम; और गुरुजनवृन्द में विद्यार्थियों को सदा ही प्रेरित

करते हुए उत्तम यानी प्रथम श्रेणी में लाने का प्रयत्न होना चाहिये। अधम और निम्न श्रेणी में विद्यार्थियों के जाने पर सभी गुरुजन बन्धुओं को ग्लानि होना चाहिये कि अपना ही बालक अधम और निम्न (शिक्षा वाले) श्रेणी में जा रहा है। अध्यापन कार्य उत्तम और उत्तमतर यानी सम्मानित क्षेत्र वाले को ही मिलने की बात होनी चाहिये। रिक्ततावश ही मध्यम (योग-साधना अथवा अध्यात्म वाले) श्रेणी के अगुओं को लेना चाहिये जो मात्र कुछ कमी के कारण ही उत्तम (तत्त्वज्ञान रूप सम्पूर्ण ज्ञान वाले) क्षेत्र या श्रेणी में नहीं पहुँच पाये थे। सद्भाव एवं सत्प्रेम आपस में चारों से चारों को रहे, यह सबसे अधिक ध्यान देने की बात है। व्यवहार में अधम और उत्तम श्रेणी वाले दोनों बन्धुओं को ही एक ही परिवार के दो सदस्यों के रूप में देखना व स्वीकार करना चाहिये।

आप विद्यार्थी बन्धुओं से मेरा बार-बार, अनेकानेक बार साग्रह निवेदन है कि बिना किसी सांसारिक चेष्टा के सम्माननीय (महापुरुष और सत्पुरुष) श्रेणी का अन्यथा उत्तम श्रेणी के विद्यार्थी ही बनने का प्रयत्न हो क्योंकि सम्माननीय (महापुरुष और सत्पुरुष) श्रेणी का अन्यथा उत्तम श्रेणी आप बन्धुओं को देवताओं का भी सिरमौर बनने-बनाने वाली है । आप अपने विद्यार्थी जीवन रूप सुनहरे समय को व्यर्थ में न गवायें अपितु सार्थक-सफल बनावें। आने वाले वंशजों के लिए अपने-अपने पीछे सद्बुद्धि उत्प्रेरक गाथाएँ आप सब को रख छोड़ना चाहिए । तब ही तो मानव जीवन सफल सार्थक होगा। आप सब थोड़ा सोचें तो सही कि क्या ऐसा ही नहीं होना चाहिये ? अवश्य होना चाहिए । होना ही चाहिए ।

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! विद्यार्थी जीवन एक तरफ तो सुनहरा जीवन होता है; परन्तु वहीं दूसरे तरफ खतरनाक जीवन भी होता है; क्योंकि विद्यार्थी एक चौराहे पर खड़ा हुआ पथिक के समान होता है जहाँ से चारो तरफ चार रास्ते (मार्ग) —

१. भौतिक शिक्षा पद्धति रूपी मार्ग; २. स्वाध्याय पद्धति; ३. योग-अध्यात्म पद्धति और ४. तत्त्वज्ञान पद्धति (अवतार और तत्त्वज्ञान के अनुपस्थिति में भक्ति-सेवा प्रधान पद्धति) चारो तरफ जाते हैं, जिसमें

१. भौतिक शिक्षा मार्ग मात्र शारीरिक-पारिवारिक रूप सांसारिक मार्ग है। इसमें कर्म और भोग मात्र की ही प्रधानता होती-रहती है जिससे सुख-दुःख, हर्ष-शोक, स्वर्ग-नरक आदि के साथ ही पारिवारिक स्तर पर सर्वनाश की प्राप्ति होती है । इसमें मानव जीवन का लक्ष्य रूप मोक्ष (मुक्ति-अमरता) बिल्कुल ही नहीं होता क्योंकि यह भोग प्रधान है । इसलिये आवागमन रूप चौरासी लाख योनियों वाला बार-बार

जनम-मरण जनम-मरण रूप दुःसह पीड़ा दायक दुख कष्ट (बीच-बीच में कभी-कभार सुख भी) भोगते ही रहना पड़ता है ।

२. स्वाध्याय मार्ग देव लोक तक जाता है जहाँ पर आनन्द, दैवपद एवं ऋद्धियों-सिद्धियों सहित पुण्य रहने तक स्वर्गीय सुख की प्राप्ति होती है । मुक्ति-अमरता रूप मोक्ष इसमें भी नहीं है क्योंकि यह भी भोग प्रधान ही होता है। यह पहले वाला से थोड़ा अच्छा होता है । मात्र इसी में भरमें-भटकें-लटकें नहीं; आगे बढ़ने, ऊपर उठने हेतु सदा प्रयत्नशील रहें ।

३. अध्यात्म अथवा योग मार्ग आत्मपद एवं ब्रम्ह पद तथा शिवलोक या ब्रम्हलोक तक जाता है जहाँ पर शांति एवं आनन्द, शिवत्त्व, ब्रम्हत्त्व, आत्मानन्द आदि चिदानन्द की प्राप्ति होती है । मगर मुक्ति-अमरता रूप मोक्ष से इस मार्ग वाले भी बंचित ही रह जाते हैं क्योंकि यह मार्ग भी मोक्ष रूप मंजिल को नहीं जाता । बीच में ब्रम्हलोक या शिव लोक में ही भटका-लटका देता है; हालांकि इस मार्ग वाले भ्रम-भूल-मिथ्याहंकार वश यह माने बैठे रहते हैं कि हमारा मोक्ष हो जायेगा क्योंकि यह ही मोक्ष का मार्ग है, मगर वास्तविकता ऐसी है नहीं । यह तो आत्मा-ईश्वर-शिव तक का ही मार्ग होता है, जो मोक्ष देने में बिल्कुल ही अक्षम-अस्मर्थ होता है । मोक्ष देने का एकमात्र एकमेव एक केवल परमात्मा-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान् का ही एकाधिकार है । अन्य कोई भी नहीं दे सकता । योग-अध्यात्म में रहने-चलने वाले को भी यहीं (योग-अध्यात्म में ही) ठहर नहीं जाना चाहिये बल्कि आगे बढ़ने ऊपर उठने हेतु सतत प्रयत्नशील होना-रहना चाहिये । तत्त्वज्ञान रूप भगवद् ज्ञान पाने का हर सम्भव यत्न करना चाहिये क्योंकि तत्त्वज्ञान में ही सम्पूर्णत्व सहित मोक्ष की भी प्राप्ति होती है ।

४. तत्त्वज्ञान मार्ग भगवद्धाम रूप मुक्त, अमर एवं परम पद तक जाता है, जहाँ पर परम शांति, परम आनन्द, मुक्ति-अमरता, शाश्वंतता आदि सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है। यह ही एकमेव एकमात्र मुक्ति-अमरता मोक्ष दिलाने वाला होता है। यह ही परमसत्य और सम्पूर्णत्त्व देने वाला मार्ग है, अन्य कोई भी नहीं ।

उपर्युक्त चारों पद्धतियों का मार्ग-मंजिल-उपलब्धियों का यह सूत्रवत विवरण है। यह यहाँ बतलाने की बात महती आवश्यकता समझते हुये बतलाया जा रहा है कि विद्यार्थियों में दूरदर्शिता आ सके तथा वे सदा ही सम्माननीय-आदरणीय नहीं तो कम से कम उत्तम कोटि में पहुँचने हेतु श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ अथक परिश्रम करते हुये, सम्माननीय-आदरणीय नहीं तो कम से कम उत्तम कोटि में पहुँच कर, वहाँ भी

सम्माननीय-आदरणीय नहीं तो कम से कम उत्तम अवस्था में बने रहें ।

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! सम्माननीय अथवा आदरणीय नहीं तो कम से कम उत्तम कोटि के अन्तर्गत अपने को लाने हेतु पाँच बातों को भी सदैव याद रखना होगा। वे पाँच बातें हैं--

पहला, आपकी चेष्टा कौवा की तरह हमेशा सावधानी में रहना चाहिये; ताकि आपके अन्दर किसी भी प्रकार का छोटा से छोटा भी दोष प्रवेश न कर सके । यदि दैवकारण वश प्रवेश भी कर गया हो तो उसे तुरन्त निकाल बाहर कर या त्याग कर दें। सही और सम्माननीय अथवा आदरणीय नहीं तो कम से कम उत्तम होने-रहने के लिये झूठ-दोष को हर प्रकार से त्याग कर अपने आप को भगवद् समर्पित-शरणागत करके भगवद् भाव में ही बने रहना चाहिये । यही एकमात्र सबसे सुगम और सरल उपाय है, सम्पूर्णत्त्व प्राप्ति के लिये ।

दूसरा, बगुले की तरह आपका ध्यान होना चाहिए अर्थात् यदि विद्या अध्ययन करने आये हैं तो आपको सदा एकमात्र विद्या प्राप्ति में ही ध्यान होना चाहिये। सांसारिक वृत्तियों-प्रवृत्तियों, चेष्टाओं आदि से कोई मतलब नहीं होना चाहिये । यदि सांसारिक सुख उपलब्ध भी होता हो तो उसे भी त्याग करने का सदा ही प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि सुख अपने तरफ धीरे-धीरे आकर्षित करते हुये आपका विद्या के प्रति भाव कम कर देगा और जब विद्या के प्रति भाव कम होने लगेगा तो निःसंदेह आपका सामाजिक पतन भी होने लगेगा । विद्या तो मिल ही नहीं पायेगी, आगे चलकर सुख भी आपको छोड़ देगा क्योंकि सुख विद्या (विद्यातत्त्वम्-तत्त्वज्ञान) वालों के साथ होने-रहने-चलने के लिये मजबूर होता रहता है । अतः सुख त्याग कर भी विद्या हासिल कर लेना ही सही और उचित होगा । सही और सम्पूर्णत्त्व प्राप्ति के लिये विद्यातत्त्वम्-तत्त्वज्ञान प्राप्त करना और अपने को ज्ञानमय-ज्ञान प्रधान बनाए रखना अनिवार्य है ।

तीसरा, श्वान (कुत्ता) के समान आपकी नींद होनी चाहिये अर्थात् सोवें तो ऐसे सोवें कि जरा सा भी तिनका खरखराये यानी थोड़ा सा भी यानी धीमी आवाज भी हो तो नींद खुल जाय; ताकि शरीर में आलस्य एवं सुस्ती न आने पावे; क्योंकि आलस्य एवं सुस्ती तो विद्या की घोर बैरी है। इसलिए आलस्य एवं सुस्ती को अपने पास आने ही न दें । यदि आ भी गयी तो उसे यथाशीघ्र अपने पास से हटाने का प्रयास करें। आगे बढ़ना है, ऊपर उठना है तो आलस्य-प्रमाद को अपने से हर हालत में हटाना ही होगा ।

चौथा, विद्यार्थी को सदा सात्त्विक और अल्प आहार ही प्रयोग करना चाहिये

यानी लेना चाहिये । यह बराबर ही याद रखना चाहिये कि आहार में राजसिक का भी प्रयोग न होने पावे, तामसिक आहार को तो सदा ही बर्जित (त्याज्य) रखना चाहिये, क्योंकि राजसिक से वृत्ति भी राजसिक होने लगेगी और तामसिक से तामसिक वृत्ति। तामसिक वृत्ति दानवता है तो राजसिक मानवता और सात्त्विक आहार-वृत्ति दैवत्त्व की होती है । हर किसी को दैवत्त्व वृत्ति में अपने को होने-रहने-बनाये रखने का सर्वदा प्रयास होना चाहिये । साथ ही आहार अल्प होना चाहिये जिससे कि शरीर में आलस्य न आने पावे। आहार अधिक होने पर आलस्य आयेगा ही । इसलिए सदा अल्पाहार ही लें । भूल जाइये कि अल्पाहार लेंगे तो कमजोर हो जायेंगे । अल्पाहारी शरीर रोग रहित और स्वस्थ रहती है । रोग रहित और स्वस्थ शरीर जल्दी कमजोर नहीं होती है बल्कि बलजोर होती है ।

पाँचवा, विद्यार्थी को विद्या अर्जन करने हेतु पारिवारिक सम्बन्धों से बिल्कुल ही दूर रहना चाहिये । गृह त्याग विद्यार्थी के लिए आसक्ति-ममता तथा प्रमाद एवं अहंकार और स्वार्थ से बचने के लिये अनिवार्य होता है, भले ही इसे अस्वीकार किया जाय या स्वीकार किया जाय । जैसी करनी वैसी भरनी।

अति विशिष्ट ग्रहणीय तथ्य-- उपसंहार

सद्भावी विद्यार्थीयों ! अन्ततः मैं आप लोगों को ग्रहणीय, अनिवार्यतः ग्रहणीय-- सबसे प्रमुख यादगारी रखने की बात तो यह है कि चाहे परिवार का दोष हो या सरकार का, चाहे गुरुदेव का दोष हो, या समाज का, परन्तु मारे जायेंगे आप, बर्बाद तो होंगे आप, समाज में मूढ़, अज्ञानी, मूर्ख, अनपढ़, अशिक्षित बेवकूफ आदि अपमान सूचक शब्द तो सुनने पड़ेंगे आप को, समाज में दर-दर का ठोकर खाना पड़ेगा आप को, समाज में सर्वत्र अपमान एवं बेइज्जत होंगे आप, विद्वत् समाज में बैठने से बंचित होगे आप, जीवन भर कष्ट व परेशानी उठानी पड़ेगी आपको, दिन भर भी श्रम करने पर भी भर पेट भोजन के लिये तरसेंगे आप, पौराणिक एवं ऐतिहासिक महापुरुषों के विचारों को ज़ानने-देखने-समझने से बंचित रहेंगे आप, ऊँची एवं अच्छी सेवाओं और नौकरियों से बंचित रहेगे आप, सुख-शांति साधनों से बंचित रहेगें आप, पारिवारिक बाल-बच्चे कष्ट भोगेंगे आपके तथा कोशेंगे और श्राप देंगे आप को-- आदि-आदि समस्त मानवीय सुख-सुविधाओं से बंचित होंगे आप । तो बन्धुओं इन उपर्युक्त समस्त बातों को एकबार पढ़ें तब पाँच मिनट अपने जीवन में भुगतने में मिलने वाले कष्टों का अनुभव करें । पुनः दूसरे बार पढ़ें और फिर पाँच

मिनट वैसा ही अनुभव करें। इस प्रकार आप कम से कम इसे तीन बार पढ़ें और पाँच-पाँच मिनट इसके कष्टों को अपने जीवन में सोचें और अनुभव करें । तब अपने विषय में निर्णय लेवें कि आपको विद्या अर्जन करना चाहिये या नहीं ? तब जरूर निर्णय आयेगा कि चाहे जितना कष्ट भी होवे तो क्या, सर्व प्रथम हम विद्या अर्जन करेंगे और करेंगे ही। बिल्कुल ही विद्या अर्जन करेंगे ही । यहाँ पर विद्या से मतलब 'विद्यातत्त्वम् रूप तत्त्वज्ञान' से है ।

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! चौथे श्रेणी यानी अधम श्रेणी वाला मात्र भौतिक शिक्षा को ही जब आप प्राप्त करते हैं तब आपको ऊँची-ऊँची नौकरियाँ, विधायक, सांसद, एस०पी०, डी०एम०, जज, सचिव, मन्त्री, राज्यपाल आदि- आदि स्थान मिलेगा । आप भौतिक शिक्षा को अधम में रखने पर सोचेंगे तो, आप सुने होंगे कि 'तप चुक राज, राज चुक नरक । पुनः यदि आप तीसरे श्रेणी यानी निम्न श्रेणी वाले स्वाध्याय विधान के ज्ञान को प्राप्त करेंगे तो सिद्धि, भूत-भविष्य की जानकारी प्राप्त होता है । तब सिद्ध ऋषि-महर्षियों वाला दैवी स्थान प्राप्त होता है । उसमें आपके इच्छानुसार सिद्धियाँ काम करती हैं जिससे कि संसार में आपको बहुत ही मर्यादा-महत्त्व मिलता है । पुनः यदि दूसरे श्रेणी या मध्यम श्रेणी वाले योग-साधना या आध्यात्मिक साधना को प्राप्त करते हैं तब ऋषि, महर्षियों योगी-यतियों यानी सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, शंकर, वाल्मीकि, बशिष्ट आदि सप्तर्षियों, याज्ञवल्क्य, अष्टाबक्र, व्यास, पातन्जलि आदि-आदि योगी-यतियों वाला स्थान मिलेगा । यीशु, आद्यशंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकान्द, स्वामी रामतीर्थ, योगानन्द, माँ आनन्द मयी आदि-आदि वाला बनेंगे और ऊपर से पहले श्रेणी या उत्तम कोटि के विधान यानी तत्त्वज्ञान या सत्यज्ञान या भगवद्ज्ञान को प्राप्त करके और उसी के अनुसार अपने आप को होते-रहते-चलते हैं तब तो आप को शंकर, नारद-गरुण, हनुमान, ध्रुव, प्रहलाद, हरिश्चन्द, विभीषण, सुग्रीव-केवट-सेबरी, काक-भुसुण्डी-जटायु, अर्जुन-ऊद्धव, विदुर-मैत्रेय, राधा, गोपियों आदि-आदि जैसा स्थान व मर्यादा मिलेगा!

विद्यार्थी सदा गुण-ग्राही बनें

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! मेरा विद्यार्थी बन्धुओं से साग्रह निवेदन है कि आप केवल गुण-ग्राही बनें । गुण-ग्राही से मेरा तात्पर्य यह है कि सच्चा अथवा यर्थाथतः विद्यार्थी वही होता है जिसको दूसरों के दोष-दुर्गुण से कोई मतलब न होवे; परन्तु अच्छा गुण चाहे जहाँ भी और जिसमें भी हो और जैसे भी मिले, उसे अवश्य अपना

लेवें। दूसरे की बुराई, गड़बड़ी अथवा दोष-दुर्गुण देखना अपने दृष्टि को दूषित बनाना है । मगर यह सिद्धान्त अध्यापक और उपदेशक गुरुजनवृन्द पर लागू नहीं होगा क्योंकि उन्हें अपने विद्यार्थियों-शिष्यों के समक्ष उनके दोष-दुर्गुणों को जना-दिखा कर ही उनका सुधार करना पड़ता है, मगर जहाँ स्वयं के लिये ग्रहण की बात आयेगी, वहाँ यह सिद्धान्त अध्यापक और उपदेशक-गुरुजन वृन्द पर भी लागू हो जायेगा । विद्यार्थी को सदा ही मात्र विद्यातत्त्वम् से मतलब होना चाहिये । देश-काल- परिस्थिति से कोई बात यानी मतलब नहीं रखना चाहिये । यदि मतलब रखना भी हो तो मात्र उतना ही मतलब रखना चाहिये जितना से कि विद्यातत्त्वं में सहयोग मिल सके अथवा अपने जीवन को सही, उचित और उत्तम बनाये रखने में जहाँ तक बाधक-अवरोधक न बनकर सहायक-सहयोगी बन सके । याद रहे कि आप का जीवन एक अनमोल रतन है जो व्यर्थ न जाये अपितु यह उचित मूल्य, उचित कीमत और उचित स्थान पाये और अपने को जनमानस में धन्य-धन्य बनाये ।

यह प्रमाणित सिद्धान्त है कि दोष-दुर्गुण देखते-देखते आदमी दोषी बनता है तथा गुण देखते-देखते गुणी । इसीलिये कहा जा रहा है कि विद्यार्थी को दूसरे किसी का दोष-दुर्गुण नहीं देखना चाहिये, गुणग्राही ही बनना चाहिए । यदि स्थिति-परिस्थितिवश दोष-दुर्गुण दिखलाई भी दे तो घृणा भाव से उसे त्याग देना चाहिये । इसका अर्थ दोषी-दुर्गुणी का त्याग नहीं अपितु दोष-दुर्गुण का त्याग समझना चाहिये । कर्म क्षेत्र में रहने पर माता-पिता और धर्म क्षेत्र में रहने पर सद्गुरु और भगवान् में तो दोष की बात सुनना-देखना तो सुनना-देखना है, स्वप्न तक में भी कल्पना नहीं करना चाहिये। इनमें यदि कोई दोष दिखलाई भी दे तो उसे अपना दोष (दृष्टि दोष) स्वीकार कर यथाशीघ्र उसे भी दूर करने का सत्प्रयास होना चाहिये-- होना ही चाहिये । तत्पश्चात् तुरन्त यह मानना चाहिये कि यह हमारा दृष्टि-भ्रम है। हालाँकि दृष्टि-भ्रम होने वाले को यह नहीं महशूस होता है कि हमें दृष्टि-भ्रम हुआ है। उसे तो यही महशूस होता है कि हम ही सही हैं और जो हमें दृष्टि-भ्रम की बात करता है, वही गलत है ।

थोड़े देर के लिए माना जाय कि गुरु जी में यदि कोई दोष ही है तो हम उनके दोषों को ग्रहण करने तो आये-गये नहीं हैं । हम तो आये-गये हैं उनके गुणों को ग्रहण करने के लिए । उनके में निहित विद्या को ग्रहण करने के लिये; उनके उपदेशों को ग्रहण करने के लिए; न कि उनका आचरण-व्यवहार अथवा दोष देखने के लिये । उनका आचरण-व्यवहार उनके लिये है, दोष का परिणाम उनको भुगतना पड़ेगा, हमको-आपको नहीं । अंशावतारी दत्तात्रेय जी ने तो वेश्या से ही यह शिक्षा (गुण)

ग्रहण किया कि 'आशा ही परमं दुःखं, नैराश्यं परमं सुखम्!' अर्थात् आशा ही सबसे बड़ा (परम) दुःख है तथा निराशा ही सबसे बड़ा (परम) सुख है। वे तो यह कभी नहीं सोचे कि हम अंशावतारी हैं, हमें वेश्या शिक्षा क्या देगी ? वे वेश्या के अन्दर समस्त अवगुणों (दोषों) के बावजूद भी उसे अपना गुरु ही माने। उसके वेश्यापनी को कदापि नहीं देखे। मगर गुरुजी का ज्ञान अवश्य ही जाना-देखा जायेगा कि उत्थान- कल्याण मूलक है कि नहीं ? अपूर्ण है या पूर्ण ? पतनकारक या अपूर्ण हो तो त्याग कर पूर्ण को, सत्य को पाने का हर हालत में प्रयास होना चाहिये।

सच्चे गुरु की पहचान—ऐसे करें

गुरु में दोष देखने वाले कभी पवित्र हो ही नहीं सकते हैं और उनकी मति-गति सदा दूषित होती-रहेगी जिसका दुष्परिणाम यह होगा कि उनके दिल व दिमाग में कभी भी विमल विवेक यानी पवित्र-ज्ञान उत्पन्न अथवा ग्रहण हो ही नहीं सकता है। मगर इस बात पर सदा सावधान रहना है कि यह गुरु की महत्ता वाला उद्धरण आडम्बरी-ढोंगी-पाखण्डी आध-अधूरे गुरुओं के लिये नहीं है अपितु पूर्ण-सम्पूर्ण ज्ञान वाले सच्चे गुरु-सद्गुरु के लिये है। झूठे और आध-अधूरे गुरुओं के प्रति यदि इस फार्मूला को लागू किया जायेगा तब तो अर्थ के जगह पर घोर अनर्थ हो जायेगा। इसलिये यहाँ विशेष सावधानी की अनिवार्यतः आवश्यकता है। गुरु वही जो 'ज्ञान (तत्त्वज्ञान-सम्पूर्णज्ञान)' दे। 'ज्ञान' वही जिसमें खुदा-गॉड-भगवान् मिले। भगवान् वही जिसमें सम्पूर्ण की सम्पूर्णतया ज्ञान सहित मुक्ति-अमरता का साक्षात् बोध रूप मोक्ष मिले।

सम्पूर्ण का ज्ञान सहित मुक्ति-अमरता का साक्षात् बोध नहीं तो मिलने वाला खुदा-गॉड-भगवान् सही नहीं और असल (वास्तविक) सही खुदा-गॉड-भगवान् का मिलन नहीं, तो वह 'ज्ञान' (तत्त्वज्ञान) सही नहीं और जब मिलने वाला ज्ञान ही सही और सम्पूर्ण नहीं तो गुरु भी सही और पूर्ण नहीं और जब गुरु सही और पूर्ण नहीं तो वह गुरु गुरु ही नहीं, क्योंकि गुरु शब्द की महत्ता 'ज्ञान' से है। 'ज्ञान' की महत्ता मिलने वाले खुदा-गॉड- भगवान् से है और भगवान् की महत्ता विराट दर्शन सहित एकत्त्वबोध रूप मुक्ति-अमरता रूप मोक्ष के साक्षात् बोध से है। इस कसौटी पर कसे वगैर किसी को गुरु स्वीकार करना-मानना अपने को धोखे में डालना-रखना-रहना है। ऐसे ही सच्चे गुरु के महत्ता के सम्बन्ध में यह उपर्युक्त उद्धरण है।

विद्यार्थियों को अपने गुरु के प्रति सदा ही दोष रहित दृष्टि रखना चाहिये जिससे कि विद्यार्थी का सदा उत्तरोत्तर विकास होता रहे। विद्यार्थी को तो गुरु के बर्तन माँजकर,

कौशिक मुनि की तरह से उत्तम विद्या प्राप्त कर लेना चाहिये। दासता यानी निष्कपट भाव से गुरु सेवा ही किसी भी विद्यार्थी को उत्तम कोटि में पहुँचा तथा उसमें स्थिर रख सकता है । गुरु में श्रद्धा-विश्वास हीन कभी भी उत्तम कोटि में नही पहुँच सकता है । यदि किसी कारण यानी गुरु कृपा से पहुँच भी गया हो तो वह वहाँ टिक नहीं सकता है । मगर यहाँ पर फिर याद रहे कि यह बात सच्चे गुरुजन के लिये है, झूठों के लिये नहीं । आडम्बरी-ढोंगी गुरुओं पर यह विधान उलट देना चाहिए ।

अधम-मध्यम-उत्तम तीन कोटि यहाँ हैं । अधम वह है जो गुरु या माता-पिता के आज्ञा पालन में कतराता है । मध्यम वह है जो आज्ञा होने पर सावधानी पूर्वक यथाशीघ्र उस आज्ञानुसार रहे-चले और उत्तम वह विद्यार्थी होता है जो गुरु या माता-पिता के आज्ञा के पूर्व ही उनके भावों को जान-समझ कर उसको पूरा किया रहता है ।

कोई गड़बड़ी या दोष कहीं भी दिखलायी दे तो विद्यार्थी को उसका दायित्त्व सदा अपने ऊपर ले लेना तथा उसका तुरन्त अपने अन्दर सुधार कर लेना चाहिए यदि वह अपने में है तो। यदि अपने में दोष नहीं भी हो मगर भले भावना से अन्य के दोषों को भी अपने पर स्वीकार कर लिया जाता है तो इस विश्वसनीयता और भरोसा को दृढ़ता पूर्वक धारण किये रहना चाहिये कि मेरा मालिक (खुदा-गॉड-भगवान्) सब कुछ का जाननहार है । वह यह सब जानता है । इसलिये इस दोष को स्वीकार कर लेने से मेरा कुछ बिगड़ने वाला नहीं है । मुझे मेरे भले भावना का फल भला ही मिलना है क्योंकि दूसरे पर झूठा दोष मढ़ना स्वतः ही एक दोष होता है । मगर एक बात बहुत ही समझदारी की है कि मेरे सत्य बोलने रहने-चलने से किसी को निन्दा-शिकायत-दोष लगे, तो ऐसे में सत्य को ही महत्व दें ।

'मोह पाश काट,
महापुरुषत्त्व-सत्पुरुषत्त्व साट'

सद्भावी विद्यार्थी बन्धुओं ! आप विद्यार्थी बन्धुओं से तो मैं बार-बार ही यही कहना चाहूँगा कि भावी समाज के सुधार और उद्धार का समूचाभार आप विद्यार्थियों को ही दुःख या सुख के साथ वहन भी करना पड़ता है । विद्यार्थी बन्धुओं ! यही घड़ी और यही बेला है, जो आप अपने को मोहपाश पिंजरा को तोड़-काट कर, स्वच्छ परमाकाश में उन्मुक्त विचरण करते हुए, परमशान्ति और परम आनन्द का साक्षात् बोध प्राप्त करते हुए सृष्टि के समस्त बन्धनों को काटते हुए, आत्मा और परमात्मा

अथवा ईश्वर और परमेश्वर अथवा ब्रम्ह और परमब्रम्ह अथवा नूरे इलाही और इलाह अल्लाहतआला अथवा सोल और गॉड अथवा आत्मशक्ति और परमसत्ता अथवा हंस और परमहंस अथवा आदि शक्ति और भगवान् अथवा गुरु और सद्गुरु अथवा योगी-आध्यात्मिक महापुरुष और तात्त्विक परमपुरुष रूप सत्पुरुष रूप अवतारी से उन्मुक्त सम्बन्ध स्थापित करने का, उससे जीव एवं आत्मा और परमात्मा अथवा रूह एवं नूर और अल्लाहतआला अथवा सेल्फ एवं सोल और गॉड अथवा जीव एवं शिव और भगवान् अथवा जीव एवं ब्रम्ह और परमब्रम्ह का स्वाध्याय एवं अध्यात्म और तत्त्वज्ञान या सत्यज्ञान या भगवद्ज्ञान अथवा मोहकम एवं मुतशाबिहात् और हुरुफमुक्तऽऽत अथवा सेल्फ रिअलाइजेशन एवं स्प्रीच्युलाइजेशन और ट्रू, सुप्रीम एण्ड परफेक्ट नॉलेज द्वारा अनुभूति और साक्षात् बोध प्राप्त करते हुए, आनन्द एवं चिदानन्द या दिव्यानन्द और परमशान्ति या शाश्वत्शान्ति और शाश्वत् आनन्द या सच्चिदानन्द या मुक्तानन्द या अमर बोध या परम अद्वैत् बोध या भगवदानन्द अथवा रूहानी एवं नूरानी और मेहरबानी अथवा सेप्टलिटी एवं डिवायनिटी और मर्सी प्राप्त करने या हासिल करने या गेन करने का । पुनः इसके सहयोग और कृपा से आत्मपद या ब्रम्हपद या दिव्य पद और परम पद या मुक्त पद या अमर पद, अथवा जन्नत और बिहिस्त अथवा हिवेन और पैराडाइज या गोल तक पहुँचने का; तथा सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, पुलह, पुलस्त्य, अंगीरा, क्रतु, हरि, कवि, प्रवुद्ध, बशिष्ट-याज्ञवलक्य, बाल्मीकि, कश्यप, अगस्त्य, संदीपन, गौतम, शाण्डिल्य, भारद्वाज, ऋषभ, भृगु, निदाघ, दुर्वासा, दत्तात्रेय, पराशर, अष्टाबक्र, शौनक, व्यास, शुकदेव, पातञ्जलि, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, महावीर, यीशु (मसीह) कबीर, आद्यशंकराचार्य, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, शिवानन्द, सिस्टर निवेदिता, योगानन्द, मुक्तानन्द, स्वरूपानन्द, पूर्णानन्द, सेन्ट पाल, धर्मपाल और शंकर जी, काक भुसुण्डि, नारद, गरुण, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, केवट, सेवरी जटायु, ध्रुव, प्रहलाद, सत्यकाम, सुग्रीव, विभीषण, अंगद, नल, नील, जाम्वन्त, कौशल्या, तारा, मंदोदरी, राधा, गोपियाँ, उद्धव, मैत्रेय, अर्जुन, युधिष्ठर, ग्वाल बाल, चैतन्य महाप्रभु, मुहम्मद साहब, तुलसीदास, मीराबाई, सूरदास आदि आदि बनते हुए महापुरुष और भगवद् पार्षद रूप सत्पुरुष बनने का बन्धुओं यही समय है। योग-साधना- अध्यात्म के माध्यम से महापुरुषत्त्व और ज्ञान (तत्त्वज्ञान) भक्ति-सेवा के माध्यम से सत्पुरुषत्त्व अपनाकर अपने जीवन को कृत-कृत्य (धन्य-धन्य) बना लेना चाहिये ।

यदि सांसारिक लुभावना में फँस-फँसा जायेंगे तो बहुत अधिक से अधिक उपलब्धि उपलब्ध करेंगे तो सांसारिकता में यदि आप एस०पी, डी०एम०, जज, बैरिष्टर, नेता, मन्त्री, राज्यपाल, सेनापति या राष्ट्रपति आदि हो जायँ तो क्षणिक सुख को प्राप्त हो सकते है; परन्तु महापुरुषत्त्व और सत्पुरुषत्त्व की प्राप्ति तथा पौराणिक महत्ता के समान किसी धर्म गाथा के पात्र नहीं बन सकते । मात्र सांसारिकता के मोह-पाश में फँस-भटक कर विनाश को ही प्राप्त हो जायेंगे जबकि मानव जीवन का उद्देश्य सत्पुरुषत्त्व को प्राप्त करते हुए उन्मुक्तता पूर्वक अमरत्त्व को पाना होता है। इसे पाने का सत्प्रयास होना ही चाहिये। महापुरुष और भगवद् पार्षद बनने हेतु आत्मा और परमात्मा के शरणागत सर्वतोभावेन होना-रहना ही पड़ेगा । यही घड़ी और यही बेला है आपको अपना मार्ग चुनने का कि आप कौन सा मार्ग चुनकर किधार बढ़ रहे हैं। यह अनिवार्यतः विचारणीय बात है। बार-बार ही, हजार बारभी कहूँगा कि आपका मानव जीवन देव दुर्लभ अनमोल रतन है । चेतिये, सम्भलिये ! इसे सार्थक-सफल बनाइये ! निन्दनीय नहीं, बन्दनीय बनिये-बनाइये !

सद्भावी सत्यान्वेषी विद्यार्थी बन्धुओं ! मेरा मतलब किसी भी महापुरुष को निन्दित करने अथवा अस्तुति करने से नहीं है, बल्कि किसी भी महापुरुष एवं सत्पुरुष के महानता एवं सत्पुरुष के 'सत्य' से है कि वे इन उपाधियों से युक्त कैसे हुये ? क्या वैसे हमारे अन्य युवा बन्धु हो सकते हैं या नहीं ? यदि नहीं, तो क्यों नहीं ? यदि हाँ, तो कैसे? किस उद्यम, साधना एवं ज्ञान के सहारे हो सकते हैं ? उसी को क्यों नहीं मूलतः समाज में प्रचारित-प्रसारित किया जाय, जिससे कि एक नहीं अपितु अनेकानेक 'बुद्ध' समाज में बन-बनाकर समाज- सुधार एवं समाजोद्धार किया-कराया जाय । हालाँकि बुद्ध अभी 'उद्धारकर्त्ता' नहीं बन पाये थे । बन भी नहीं पाते क्योंकि उद्धारकर्त्ता बनने का पद ही नहीं है । यह तो था, है और सदा रहने वाला पद है जो खुदा-गॉड-भगवान् के लिये सुनिश्चित और सुरक्षित है । बुद्ध सुधारक मात्र ही थे, उद्धारक के सहायक भी नहीं । फिर भी महापुरुष थे ।

महापुरुषत्त्व और सत्पुरुषत्त्व हेतु युवको का आह्वान

सर्वप्रथम युवा बन्धुओं ! इस बात को अपने दिल-दिमाग से निकाल कर बाहर फेंक दिया जाय कि अब ध्रुव-प्रहलाद-बुद्ध- मूसा- ईशु-मोहम्मद- कबीर-नानक-तुलसी-मीरा-गोरखनाथ- आद्यशंकराचार्य- रामकृष्ण-विवेकानन्द आदि-आदि महापुरुष

बना ही नहीं जा सकता है और यह जान लेवें कि अवश्य बना जा सकता है--मुझ सन्त ज्ञानेश्वर से मिलें और बनने-होने का प्रयास करें। मुझसे हर प्रकार का सहयोग आप को मिलेगा; आगे आवें और बनें।

युवा बन्धुओं ! यह आप की सबसे बड़ी कमजोरी है कि पहले ही यह मानकर कि 'हम' महापुरुष और सत्पुरुष या खुदा का प्यारा या भगवान् का प्रेमी या परमेश्वर का पुत्र-प्रिय सेवक बन ही नहीं सकते हैं। बन्धुओं ! मैं किस प्रकार से आपको बताऊँ, समझाऊँ कि बना जा सकता है। बना जा सकता है !! बिल्कुल ही बना जा सकता है !! थोड़ा सा सर्वप्रथम संकल्प के साथ अपने को परमप्रभु से, एकमात्र प्ररमप्रभु से अपने को अनन्य भाव से जोड़ लेना और उसी के अनुसार अपना रहन-सहन बना लेना है, शेष सब होता जायेगा और आप देखते ही देखते हो जायेंगे। प्रयत्न आप स्वंय करें और परिणाम खुदा-गॉड-भगवान् पर छोड़े। सब हो जायेगा।

खुदा या गॉड या भगवान् या यहोवा या परमेश्वर या सर्वोच्च शक्ति-सत्ता सामर्थ्य या परमसत्य को साक्षी बनाकर, एकमात्र उसी परमप्रभु को साक्षी बनाकर कह रहा हूँ। उसी परम प्रभु के विशेष कृपा के आधार पर ही कह रहा हूँ कि युवा वर्ग सत्य संकल्प के साथ समाज में उसी महानता एवं सत्यता को हासिल करने के लिए आगे बढ़ें। निश्चित ही वर्तमान में एक ध्रुव ही नहीं अनेकानेक ध्रुव, एक प्रहलाद ही नहीं अनेकानेक प्रहलाद, एक बुद्ध ही नहीं अनेकानेक बुद्ध, एक महावीर ही नहीं अनेकानेक महावीर, एक आद्य शंकराचार्य ही नहीं अनेकानेक आद्य शंकराचार्य, एक गोरखनाथ ही नहीं अनेकानेक गोरखनाथ, एक ईशु ही नहीं अनेकानेक ईशु, एक मुहम्मद ही नहीं अनेकानेक मुहम्मद साहब, एक मूसा ही नहीं अनेकानेक मूसा, एक कबीर ही नहीं अनेकानेक कबीर, एक नानक ही नहीं अनेकानेक नानक देव जी, एक तुलसी ही नहीं अनेकानेक तुलसी, एक मीरा ही नहीं अनेकानेक मीरा, एक रामकृष्ण परमहंस ही नहीं अनेकानेक रामकृष्ण परमहंस, एक विवेकानन्द ही नहीं अनेकानेक विवेकानन्दबना जा सकता है।

आखिरकार मेरा एक ही सवाल है कि 'आप युवक ये महापुरुष एवं सत्पुरुष क्यों नहीं हो सकते?' आप थोड़ा धीरज धारण कर, गम्भीरता पूर्वक सोच-समझ कर स्वयं एकान्त में बैठ कर निर्णय लेवें तथा स्वंय से एक बात पूछें कि आज क्या वह परमसत्ता नहीं है ? जो इन उपर्युक्त या ऐसे ही अन्य आध्यात्मिक महापुरुषों एवं तात्त्विक सत्पुरुषों जिनका नाम यहाँ छोड़ दिया गया हो या छूट गया हो, उन महापुरुषों और सत्पुरुषों जैसा भी महापुरुष और सत्पुरुष बनाने वाला वही परमसत्ता आज भी

नहीं है ? आज उसमें वह शक्ति-सामर्थ्य नहीं है ? वह अवश्य है। वही सदा रहने वाला है । वही सर्व शक्तिमान है । उसके शक्तिसत्ता में कोई अपना दखल नहीं जमा सकता है । वही एकमात्र परमप्रभु सबका है, सबके लिए है। वह जब जिसको जो चाहे बना दे। जितना चाहे, दे दे। जहाँ चाँहे वहाँ भेज दे। वह सर्व शक्तिमान है, एकमात्र वही परमप्रभु मात्र ही महापुरुषत्त्व और सत्पुरुषत्त्व प्रदाता तो है ही, मोक्षदाता भी एकमात्र वही ही है । उसके सिवाय दूसरा कोई नहीं । किसी को कुछ भी बना देने को अधिकार एकमात्र परमप्रभु का है और सदा-सर्वदा परमप्रभु में ही रहेगा भी ।

युवा बन्धुओं ! घबड़ाओ नहीं, मैदान में आओ ! आगे बढ़ो। रूको नहीं। युवा तुम हो, कार्य को तेज गति से पूरा करने वाले तुम हो! जाहिल मत बनों ! प्रमादी मत बनों ! उठो ! जागो ! सत्यता और श्रेष्ठत्त्व को स्वीकार करो ! क्षणिक सुख रूपी भोग-व्यसन वाला कर्मचारी-अधिकारी-नेता नहीं बल्कि महापुरुष-सत्पुरुष बनने होने के लिए विवेकानन्द के तरह आगे बढों । अपने मानव जीवन का मञ्जिल प्राप्त करो ।

समय की पुकार है, परमप्रभु की ललकार है ।
बनना हो तो बन ले भाई, पछताना बेकार है ।।
ऐसे सुअवसर को हाथ से मत जाने दो,
सेवा-श्रम-परिश्रम करो, सदानन्द की राह धरो ।।

सद्भावी सत्यान्वेषी युवा बन्धुओं ! आप लोग यह कह सकते हैं कि कभी ऐसा हो नहीं सकता है ! यह सब एक भ्रामक बात है । भ्रम में डाल कर फँसाने वाली बात है । यह सब सदानन्द का अहंकार है परन्तु ऐसा कह कर ही आप क्या हासिल कर सकते हैं? अपने को इतना बुजदिल (कमजोर) क्यों समझते हो कि सबको सदानन्द फंसा ही लेगा ! सभी को भ्रमित ही करेगा । थोड़ा भी तो सोचो कि आखिर सदानन्द आप को फँसाता भी है, तो क्यों ? क्या अपने घर-दुआर का कार्य कराने के लिये ? आप लोग इतने कमजोर दिमाग के हो कि सदानन्द के कार्यों को जान-देख-समझ नहीं सकते हो ? इतने मूर्ख हो कि सदानन्द सबको फँसा कर खेती या व्यापार करायेगा ? यदि कराता भी है तो क्या वह खेती-बारी-व्यापार अपना और अपनों मात्र के लिये अथवा आप सब और आप सब के अपना होने-रहने वाले के लिये भी ? आप को आँख नहीं है, दिल-दिमाग नहीं है ? सूझ-बूझ नहीं है कि सदानन्द आप को फँसा कर क्या कर करा रहा है ? वास्तविकता तो आप लोग पहले जानें--

यह कहना बेकार है कि 'सदानन्द' का अहंकार है ।

आप बन्धुओं दुनियाँ के दुर्जनों को 'ठीक' करने के लिये -सज्जन बनाने के

लिए बुलाये जा रहे हो, तो क्या सदानन्द सत्य नहीं होगा, तो आप लोग इसको 'ठीक' नहीं कर सकते हो ? यदि आप सत्य हो और सदानन्द असत्य होगा, तो आप लोग उसी परमप्रभु की कृपा से सदानन्द को भी 'ठीक' कर दीजियेगा लेकिन असलियत तो यही है कि--

सदानन्द तो कहता है कि मेरा क्या अहंकार है, भगवन् की पुकार है। आना है तो आ जाओ प्यारे, बातें अधिक बेकार है ।।

बन्धुओं ! इतना तो आप अवश्य जानते ही होंगे कि किसी को बिना जाने-समझे अपने मनगढ़न्त बातों से निन्दित नहीं किया जाना चाहिये । यदि आप करेंगे भी तो सदानन्द का क्या बिगड़ेगा? सदानन्द सचमुच में यदि परमप्रभु वाला ही होगा और परमप्रभु की कृपा वाला ही सदानन्द रहा तो निन्दक अपने द्वारा ही अपने को ही निन्दित करेगा । परमप्रभु की विशेष कृपा रही तो अब वह दिन दूर नहीं कि सदानन्द परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम्-काल अलम्-गॉड शब्दरूप खुदा-गॉड-भगवान् रूप अकाल पुरुष रूप परमसत्य वाला ही सबको (जिज्ञासु भक्तों को) दिखाई देने लगेगा। सदानन्द का कार्य एकमात्र परमप्रभु वाले कार्यों का सम्पादन करना यानी 'सत्य-धर्म की स्थापना तथा उसका प्रचार-प्रसार करना तथा उसी के माध्यम से सकल समाज को भगवन्मय बनाते हुये 'धर्म-धर्मात्मा-धरती' की रक्षा करना-कराना अर्थात् धरती को असत्य-अधर्म-अन्याय-अनीति विहीन बनाते-करते हुये सत्य- धर्म-न्याय-नीति प्रधान बनाना-बनवाना ।' यही सदानन्द को परमप्रभु की कृपा विशेष से ही परमप्रभु के ही इस काम को करना-कराना है।'

"सदानन्द का काम नहीं, काम है भगवान् का"

युवकों आपको सदानन्द का कार्य करने के लिए पुकार नहीं हो रहा है, परमात्मा-परमेश्वर बल्कि खुदा-गॉड-भगवान् के कार्य के लिए ही आप का पुकार हो रहा है । आप लोग अच्छी प्रकार से सोच समझ-कर देख-जाँच-परखकर सकते हैं । यहाँपर दुनियाँ में जब भी, जहाँ भी जो कोई भी आध्यात्मिक महापुरुष या पैगम्बर, प्राफेट्स तथा तात्त्विक सत्पुरुष जो कोई भी बना है, खुदा-गॉड-भगवान् के कार्य को करके ही बना है । अपना-पराया या परिवार-संसार के कार्य करके नहीं।

युवा बन्धुओं ! अपने पर सन्देह क्यों करते हैं ? जब आप अपने पर ही सन्देह करोगे कि हम फंस जायेगें, हम भटक जायेगें, तो कार्य क्या करेंगें ? महापुरुष कैसे बनोगे ? नहीं बन पाऐंगे। इसलिये अपने पर ही संदेह करना छोड़ कर महापुरुष-सत्पुरुष बनने के लिये आगे आओ।

सद्भावी सत्यान्वेषी युवक बन्धुओं ! आप युवकों सर्वप्रथम अपने पर आस्था रखो । अपने पर विश्वास रखो । आप युवा हो। आप में कुछ भी कर-करा देने की क्षमता है । आप अपने युवा शरीर के क्षमता का सदुपयोग करो । आगे बढ़ो । महापुरुष बनो; सत्पुरुष बनो । आप ही पर समाज का कल्याण आधारित है। समाज का सुधार और समाज का उद्धार आप युवा बन्धुओं से ही है । मात्र शारीरिक सुख भोग व्यसन हेतु कर्मचारी-अधिकारी-नेता बनकर अपने सर्वोत्तम मानव जीवन को व्यर्थ मत गवांओ--बर्वाद मत करो । आओ आगे बढ़ो महापुरुष बनों-सत्पुरुष बनों। समय का लाभ लो।

सदानन्द का पुकार है, आप का सुधार है ।
आना है तो आओ बन्दों भ्रम करना बेकार है ।।

बन्धुओं ! खुदा-गॉड-भगवान् के कार्य करने में घबराते क्यों हो? भगवान् का ही कार्य करके तो सब महापुरुष बने हैं, फिर आप को भी महापुरुष एवं सत्पुरुष हेतु भगवान् का ही कार्य करना पड़ेगा। एक बात मैं आप बन्धुओं से पूछना चाहूँगा कि आप बिना काम किए संसार में रह सकते हैं ? नहीं ! नहीं !! कदापि नहीं !!! किसी न किसी का काम, किसी न किसी की गुलामी तो आप को करनी ही पड़ेगी तो फिर भगवान् का काम (सेवा-भाव) करने से घबड़ाते क्यों हो ? क्या दुनियाँ वालों से कम सुविधायें और महत्ता भगवान् ही देगा ? कदापि नहीं ! दुनिया वाले क्या दे सकते हैं? कुछ नहीं ! आँख हो तो दुनियाँ के कार्यकर्त्ताओं को और भगवान् के भजन-भक्ति-सेवा कर्त्ताओं को देख लो । दिल-दिमाग हो तो समझ लो । जिस भगवान् को बिना जाने-देखे भी मात्र नाम जपते हैं, मात्र भजन करते है, तो उनकी भी स्थिति और सांसारिकों की भी स्थिति का, परलोक को अभी रहने दें, पहले लोक ही वाला तो तुलना कर-करा लेवें। यदि आप का परलोक पर विश्वास नहीं है तो फिर इन असत्य-सत्य, अधर्म-धर्म, अन्याय-न्याय तथा अनीति-नीति से क्या काम ? मगर जीवन को सत्यता-सम्पूर्णता-सर्वोच्चता चाहिये तब तो आपको मेरे यहाँ आना ही पड़ेगा क्योंकि पूरे पृथ्वी अथवा सारी धरती पर ही यहाँ के सिवाय यह (सत्यता सर्वोच्चता और सम्पूर्णता वाला मुक्ति-अमरता) कहीं भी अन्यत्र मिलता ही नहीं है।

अगर आप अपने को ऊपर ऊठाने अथवा सत्यता- सर्वोच्चता-सम्पूर्णता पाने हेतु महापुरुष-सत्पुरुष बनने हेतु आगे नहीं बढ़ोगे तब तो आप को मुझे यही कहना पड़ेगा कि खाओ-पीओ

मौज मनाओ, जीते जी तू भाड़ में जाओ ।

युवा बन्धुओं ! यही सुअवसर है महापुरुष बनने का । यही सुअवसर है सत्पुरुष बनने का । दुनियादारी तो मात्र मायावी जाल है, फँसाने वाला काल है। आँख खोल कर देख लो महापुरुषों की जीवनियाँ, सत्पुरुषों की गाथाएँ और दुनियादारी की व्यथायें । सदानन्द यदि आप को भ्रमित भी करता है तो संसार से और फँसाता है तुझे, तो खुदा-गॉड-भगवान् में । अरे! नादानों अब से भी तो सम्भल ! अब से भी तो चेत !! आप सृष्टि के सर्वोच्च-सर्वोत्तम योनिवाले हो । इसलिए सर्वोच्च-सर्वोत्तम परमात्मा-खुदा-गॉड-भगवान् वाले उपलब्धि को उपलब्ध करो और ध्रुव-प्रहलाद-गरुण-नारद-हनुमान आदि आदि के तरह भक्त-सेवक और विवेकानन्द आदि के तरह महापुरुष-सत्पुरुष बनों। दुनियां में अमर गाथा स्थापित करो । इसी में जीवन की सार्थकता-सफलता है ।

सदानन्द की बात नहीं, बात है भगवान् की ।

आप सत्य हो तो आप अपने-अपने मूल सद्ग्रन्थ को हाथ में लो और आकर सदानन्द का ठीक से परीक्षण कर लो । फिर से कह रहा हूँ कि

भगवान् की पुकार है, तेरा इन्तजार है।

आना हो तो आओ प्यारे, घबड़ाना बेकार है ।।

सद्भावी सत्यान्वेषी युवा बन्धुओं ! बुजदिल न बनो। कायर न बनो। मानव शरीर का सदुपयोग करो। अपने 'हम' जीव को जानते देखते हुए मुझसे 'आत्मा-ईश्वर-ब्रम्ह' को भी जानते-साक्षात् देखते हुए उन से अपने को जोड़कर या स्थित-स्थापित कर आध्यात्मिक महापुरुष बनो और परमात्मा-खुदा-गॉड-भगवान् से सम्बन्धित यानी समर्पित-शरणागत हो तत्त्वज्ञानी या तात्त्विक सत्पुरुष बनो, तो तुम्हें दोनों-- लोक लाभ भी मिलेगा और परलोक लाभ भी। आप यह भूल जाइये कि सत्पुरुष बनने में सांसारिक परेशानियाँ झेलनी होंगी और मान भी लें कि परेशानियाँ ही झेलनी पड़ेंगी तो मैं डंके की चोट पर सत्यता को समक्ष रखकर कह रहा हूँ कि उतनी परेशानियाँ नहीं हैं। बहुत कम, बहुत कम, वह भी आप को उसका दुःख नहीं होगा, उसका दुःख भी उन्हीं अज्ञानियों को ही होगा जो मात्र दूर से-- बाहरी-बाहरी रूप में देखने में लगे हैं; बशर्ते कि आप निष्कपटता पूर्वक अपने को सर्वतोभावेन भगवद् समर्पण-शरणागत करते और रहते हुये आगे बढ़ें तो पायेंगे कि जो दुःख-कष्ट-परेशानियाँ दिखाई दे रही थीं; वही आगे चल कर आप को यश-कीर्ति

दिलाने वाली गाथाएँ हो गयी हैं ।

दूसरी सबसे बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सत्पुरुष या सर्वतोभावेन भगवत् शरणागतों को नाचीज परिवार प्रधान रहने के अपेक्षा भगवत् प्राप्त होकर सीधे भगवद् प्रधान अर्थात् भगवत् शरण में रहने का परम शुभ अवसर प्राप्त होता है जो मानव जीवन का चरम और परम उद्देश्य है । बशर्ते कि सत्य-धर्म के संस्थापना के बेला में धर्म-संकट को समाप्त करने हेतु प्रारम्भ में कुछ दिन-माह-साल तक ही त्याग-परेशानी या कठिनाई हो सकती है । फिर भी उसमें भी आप सचमुच यदि निष्कपटता पूर्वक हैं तो निश्चित ही आप अपने को सदा ही परमशान्ति और परम आनन्द के साथ ही साथ मुक्ति और अमरता के साक्षात् बोध से युक्त बिल्कुल ही अमन-चैन से रहेंगे । परेशानी तो मात्र देखने वालों को ही होती है और होगी भी। आप तो सदा आनन्दित रहेंगे। फिर थोड़े समय तक रहने वाले धर्म-संकट के पश्चात् तो आप ध्रुव, प्रह्लाद, सुग्रीव, विभीषण, पाण्डव आदि की तरह सांसारिक राज सुख भी भोगेंगे और शरीर छोड़ने पर परम आकाश रूप परमधाम-अमरलोग में भी भगवत् पार्षद बन कर परमपद मय हुये अमरत्त्व से युक्त रहेंगे। परमधाम-अमरलोग में सदा के लिए आप का निवास सुरक्षित रहेगा । दुनियाँ में मन्दिरो में मूर्ति रूप स्थापित हो-हो कर पूजे जाने लागेंगे ।

मेरे प्यारे युवकों ! दुनियाँ वालों के फेर में मत पड़ो । थोड़ा भी सूझ-बूझ से काम लो। सदानन्द के निन्दा से कुछ मिलने-जुलने को नहीं है। जब मिलेगा तो सदानन्द के बात को स्वीकार-ग्रहण कर रहने-चलने पर ही मिलेगा। शारीरिक सुखभोग व्यसन वाला कर्मचारी-अधिकारी नेता नहीं अपितु महापुरुष-सत्पुरुष बनने से आप की गाथाएँ बनेगी । भोगी-व्यसनियों की तो कहानी ही नहीं बन पाती--गाथाएँ कहाँ से बनेगी ?

सद्भावी सत्यान्वेषी युवा बन्धुओं ! यह बहुत-बहुत-बहुत ही सावधानी बरतने की है कि प्रायः सब योगी-साधक अथवा आध्यात्मिक महात्मा या महापुरुष जीव का ही आत्मा और आत्मा को ही परमात्मा; जीव को ही ईश्वर और ईश्वर को ही परमेश्वर; जीव को ही ब्रम्ह और ब्रम्ह को ही परमब्रम्ह; सेल्फ को ही सोल(डिवाइन लाईट) और सोल या डिवाइन लाईट को ही गॉड; रूह को ही नूर और नूर को ही अल्लाहतआला; 'हम' जीव-सूक्ष्म शरीर को ही सहज प्रकाश और सहज प्रकाश या परम प्रकाश को ही गॉड; अहम् को ही सोऽहँ-हँ्सो और हँ्सो को ही परमहंस; स्वाध्याय को ही स्वाध्याय पद्धति को ही योग या अध्यात्म की पद्धति और योग-अध्यात्म की साधना और आध्यात्मिक-साधना को ही तत्त्वज्ञान या भगवद्ज्ञान या सत्य

ज्ञान; योग पद्वति या अध्यात्म पद्धति को ही विद्यातत्त्वं पद्धति, ब्रम्हानन्द-चिदानन्द को ही सच्चिदानन्द; आनन्दानुभूति मात्र को ही शान्ति और आनन्दानुभूति-दोनों और शान्ति और आनन्दानुभूति को ही परमशान्ति और परम आनन्द से युक्त मुक्ति और अमरता का बोध; अनुभूति को ही बोध; स्वरूपानन्द को ही आत्मानन्द और आत्मानन्द को ही परमानन्द-सदानन्द (शाश्वत् शान्ति और शाश्वत् आनन्द); स्वाध्यायी पुरुष को ही योगी-आध्यात्मिक-महात्मा और आध्यात्मिक महात्मा को ही अवतारी (परमात्मा के अवतार); महापुरुष को ही परमपुरुष या सत्पुरुष तथा स्वाध्यायी गुरु को ही योगी या आध्यात्मिक गुरु और योगी या आध्यात्मिक गुरु को ही तात्त्विक सद्गुरु आदि घोषित करते-कराते हुए अपने और अपने अनुयायियों द्वारा इसी मिथ्या अधूरा एवं भ्रामक जानकारी का प्रचार-प्रसार करते-कराते हुए भगवान् के अवतार रूप सद्गुरु बन कर पूजा-पाठ आदि करवाने लगते हैं । यह बात मात्र आज के ही योगी-साधक आध्यात्मिकों में ही नहीं अपितु प्राचीन काल से ही ऐसी ही बात रही और चली आ रही है, जब--कि यह बिल्कुल ही भ्रामक, अधूरा एवं मिथ्या है । ऐसा होना नहीं चाहिए; कदापि ऐसा नहीं होना चाहिए। जनमानस को सदुपदेश देना चाहिए । कभी भ्रामक उपदेश-मिथ्या-झूठा उपदेश देकर भरमा-भटका कर अपने मिथ्या महत्वाकांक्षा के पूर्ति हेतु जनमानस का धन-धरम दोनों का दोहन-शोषण भी करते हैं और उन्हें भगवत् प्राप्ति और मुक्ति-अमरता की प्राप्ति से बंचित भी करते कराते हैं । भोले-भाले भगवद् जिज्ञासु भरम भटक कर इन्हीं झूठे गुरुओं में सट-चिपकर धर्मच्युत हो रहे हैं।

इन भरमे-भटके भगवत् प्रेमीजनों के रक्षा आन्दोलन में आप सच्चे बन्धुओं मेरा साथ-सहयोग नहीं देना चाहिए ? देना चाहिए । अवश्य ही देना चाहिए फिर देर क्यों? आइए और परमपुनीत कार्यरूप धर्म-धर्मात्मा-धरती रक्षा कार्य में जुड़कर महापुरुष-सत्पुरुष बनें ।

भोगी-व्यसनियों में देखो तो सही और वृद्धों से पूछ कर भी पता तो करो कि दादा के दादा का नाम कितने को पता है ? पता चलेगा कि लाखो-करोड़ो में शायद कोई हो जिसे पता होतो क्या इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि पोता के पोता होने तक आप सभी का नामों निशान तक नहीं रह पायेगा सब कुछ ही आजके अपनों द्वारा ही खारिज-दाखिल के रूप में मिटा दिया जायेगा । आप सवका सर्वनाश हो जाता है मगर भक्त सेवकों को भगवान् नाश नहीं होने देता-अमरत्व देता है । गरुण नारद- ध्रुव-प्रहलाद-हनूमान-सेवरी-जटायू- काकभुसुण्डी- उद्धव-अर्जुन -कुब्जा- गोपियाँ- तुलसी-मीरा आदि आदि प्रायः समस्त भगवद् भक्त-सेवकों-प्रेमियो सन्त- महात्माओं-

मूसा-यीशु-मुहम्मद आदि-आदि प्राफेट-पैगम्बरों आदि-आदि को भी देख लो ।

इसलिए आप युवा बन्धुजन भी भोग-व्यसन वाला जीवन त्याग कर भोग-व्यसन वाले जीवन से बहुत-बहुत-बहुत ही ऊपर उठकर मुझसे मिलकर तत्त्वज्ञान के माध्यम से भगवद् समर्पित-शरणागत होता हुआ संसार-शरीर-जीव-आत्मा (ईश्वर-ब्रम्ह-ज्योति शिव) चारों की ही पृथक्-पृथक् उत्पत्ति-स्थिति और लय-विलय प्रलय को साक्षात् दर्शन सहित सुनिश्चित और सुस्पष्ट यथार्थतः जानकारी प्राप्त करते हुए परमात्मा-परमेश्वर-परमब्रम्ह-खुदा-गॉड-भगवान् गीता वाले विराट पुरुष का भी बात-चीत सहित सद्ग्रन्थों द्वारा सत्प्रमाणित रूप में साक्षात् दर्शन प्राप्त करते हुए सारी धरती से ही असत्य-अधर्म-अन्याय-अनीति को समाप्त करते हुए उसके स्थान पर सत्य-धर्म-न्याय-नीति को पुनः स्थापित करना-कराना है । इसी को दूसरे रूप में धर्म-धर्मात्मा-धरती रक्षार्थत्व पिरमप्रभु के परमपुनित कार्य में लग-गला कर अपने को ध्रुव-प्रहलाद-गरुण-नारद-लक्ष्मण-हनूमान-सुग्रीव-विभीषण- उद्धव-अर्जुन-गोपियाँ-कुब्जा और भगवद् भक्त-सेवक सन्त कबीर-तुलसी-नानक-मीरा आदि-आदि। महात्मगण- महावीर-बुद्ध-मूसा-दाऊद-इब्राहिम-यीशु-मुहम्मद आदि प्राफेट्-पैगम्बर बनते-होते हुए भगवत् कृपा से विवेकानन्द जैसे ही महापुरुष-दिव्य-पुरुष और सत्पुरुष बन कर पूर्व की तरह वर्तमान में भी स्थिति-स्थापित होवें । मैं (सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस 'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्', श्रीहरिद्वार आश्रम, रानीपुर मोड़ रेलवे क्रासिंग से उत्तर-हिल बाई पास रोड़ पर पास ही--हरिद्वार-उत्तरांचल फोन नं० १३३४-२२४५८०) आप सभी को हर प्रकार के सहयोग के साथ ही साथ पूर्ति-कीर्ति-मुक्ति पूरी-पूरी जिम्मेदारी जो ले रहा हूँ । फिर तो सोचना-समझना-विचार करने की बात ही कहा रह गई । इसे अपनाने के लिए तुरन्त ही आगे बढ़ना चाहिए--आगे बढ़ना ही चाहिए-बिल्कुल ही तुरन्त ही आगे बढ़ना चाहिए ही । ऐसे परम लाभ देने वाले परमशुभ अवसर को जानने ही देना चाहिए; तुरन्त ही स्वीकार करना चाहिए मानव जीवन की सार्थकता-सफलता भी तो यही है--बिल्कुल ही यही ही है; अन्यथा सब व्यर्थ है ।

महापुरुष-सत्पुरुष दोनों के अन्तर को जानें !

युवा बन्धुओं ! यह बात भी सत्य ही है कि आखिरकार समाज किसको आध्यात्मिक महापुरुष माने तथा किसको तात्त्विक सत्पुरुष या परमपुरुष या भगवदवतारी या सद्गुरु माने । फिलहाल समय पाकर सब हल होगा, क्योंकि आज जो कुछ भी हो रहा है, वह बिल्कुल ही नया नहीं है बल्कि जब-जब भी अवतार बेला या अवतार का समय घोषित होता है, ऐसा ही जाने-अनजाने भी अपने को अवतारी

एवं भगवान् घोषित कर-करा कर वास्तविक अवतार से पहले ही विशालकाय धन-जन के मालिक बन कर उन्हीं धन-वैभव या आश्रम-अट्टालिकाओं तथा अनुयायियों का विशाल भरमार देखकर उसी गुमान में अवतारी (नकली एवं भ्रामक तथाकथित भगवान्) बन-बन कर समाज को गुमराह करते रहे हैं, आज भी कर रहे हैं, परन्तु अब असल का पता चलने में विशेष देर नहीं लगना है।

सद्भावी सत्यान्वेषी युवा बन्धुओं ! यहाँ पर बात पुनः दुहरा देना चाहता हूँ कि आप अपने दिल-दिमाग से ही बिल्कुल निकाल कर बाहर और बहुत दूर फेंक दे कि आप आध्यात्मिक महापुरुष और तात्त्विक सत्पुरुष नहीं बन सकते है तथा अपने दिल व दिमाग में निश्चितता पूर्वक यह स्थापित करें कि आप आसानी से यानी सुगमतापूर्वक आत्मा-ईश्वर के सम्पर्क से आध्यात्मिक महापुरुष और परमात्मा-परमेश्वर के सम्बन्ध से सत्पुरुष बन या हो सकते है; मात्र श्रद्धा-विश्वास एवं निष्ठापूर्वक निष्कपटता के साथ आत्मा-ईश्वर तथा परमात्मा-परमेश्वर के प्रति अनन्य भाव से समर्पित और शरणागत होकर ही आगे बढ़े । आप बहुत्त्व या मिथ्यात्त्व के चक्कर में न पड़े । आप को अपने जीवन यापन या विकास के लिए जितने श्रम-एवं साधन को लगाने-जुटाने की आवश्यकता पड़ती है, बिल्कुल ही उसके समक्ष श्रम एवं साधना तथा श्रद्धा-विश्वास-निष्ठा के साथ निष्कपटता पूर्वक समर्पण भाव में ही आप अपने लक्ष्य को हासिल कर-करा सकते हैं । यह सोचना और कहना सरासर गलत बात है कि आप महापुरुष तथा सत्पुरुष नहीं बन सकते हैं।

हम तो यही कहेंगे कि आज दुनियाँ में थोड़ा सा पैसा या छोटे से पद के लिए नेता-अधिकारियों की जितनी झूठी चापलूसी एवं जी हुजुरी करनी पड़ रही है, तथा नेता जी व अधिकारी जी के आदेश-निर्देशानुसार जितना चापलूसी और कुकर्म करना पड़ता है, उसमें से ईश्वर तथा उस परमब्रम्ह या परमेश्वर या परमात्मा के शरण में बिल्कुल ही किसी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, न तो चाटुकारिता की और न तो दुष्कर्म की । दोनों में से किसी की भी नहीं । बल्कि उसके स्थान पर समाज में सर्वत्र आदर-सम्मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त कराने वाले मात्र-सद्भाव, सद्विचार, सद्व्यवहार एवं सत्कार्य की ही आवश्यकता होती है तथा परमात्मा के साथ नित्य-प्रति अपने प्रेम को बढ़ाते हुए एकमात्र परमात्मा-खुदा-गॉड-भगवान् का ही होकर रहा-चला जाय, तो हमारा सत्य एवं दृढ कथन है कि आप को महापुरुष और सत्पुरुष ही बनने चाहिए जिससे 'लोक-लाभ परलोक-निबाहू' दोनों ही प्राप्त होता है।

यदि आप सच्चे हिन्दू हों, तो वेद-पुराण-रामायण-गीता-पुराण हाथ में लें; यदि

आप सच्चे जैनी हैं तो अरिहन्त एवं निवोण सिद्धान्त देखें; यदि आप सच्चे बौद्ध हैं, तो बुद्ध दर्शन हाथ में लें; यदि आप इसाई है तो बाइबिल को हाथ में लें; आप यदि सच्चे मुसलमान हैं, तो कुर्आन को हाथ में लें; यदि आप सच्चे सिक्ख हैं तो गुरुग्रन्थ साहब को हाथ में लें और आप लोग सदानन्द का अपने-अपने सद्ग्रन्थों के साथ शान्तिमय ढंग से जानते-जनाते हुए परीक्षण करें तो असलियत का पता चलेगा कि यह सदानन्द सबका है और सबके लिए है । सभी का ही सहायक और पूरक है, विरोधी और शोषक किसी का भी नहीं। यही सभी का ही परम हितेच्छु है ।

'सदानन्द' किसी का भी निन्दक-आलोचक नहीं है । पूरे भूमण्डल पर किसी का भी निन्दक-आलोचक नहीं है बल्कि 'सत्य- धर्म' का संस्थापक और सभी धर्मोपदेशकों का भी पोषक-सहायक और संरक्षक है। इसमें कोई 'सदानन्द' की अहंकारिक बात नहीं है, अपितु भगवत् कृपा अथवा तत्त्वज्ञान का प्रभाव ही ऐसा है कि वास्तविक सच्चाई को सबके समक्ष कहना-लिखना पड़ रहा है । इसमें जिस किसी को भी अहंकार महसूस हो रहा हो, हमारे यहाँ तो सद्ग्रन्थीय आधार पर किसी के लिये भी जाँच-परख की खुली छूट है, मगर मनमाना नहीं, सद्ग्रन्थीय आधार पर आवश्यकता पड़ने पर प्रायौगिक आधार पर भी मगर भगवद् समर्पण-शरणागत के शर्त पर ही ।

गायत्री वालों से मुझे कहना है कि....

गायत्री छन्द मात्र में उद्धृत होने के नाते ॐ-देव मन्त्र (ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।') के अभीष्ट ॐ-देव को समाप्त कर उनके स्थान पर झूठी व काल्पनिक देवी को स्थापित कर प्रचारित करना-कराना क्या देव द्रोहिता नहीं हैं ? असुरता नहीं है ? क्या यह मन्त्र देवी (स्त्रीलिंग) प्रधान है या ॐदेवस्य (पुलिंग) प्रधान ? जब यह मन्त्र ॐ-देव (पुलिंग) प्रधान है तब यह देवी (स्त्रीलिंग) कहाँ से आ गयी? क्या प्यार पाने के लिये पिता जी को माता जी कहकर बुलाया जाय और उनके फोटो-चित्र को स्त्री रूपा बना दिया जाय ? यही आप सबकी मान्यता है? यही 'देव संस्कृति' संस्थापन कहलायेगा ? जिसमें मन्त्र के अभिष्ट ॐ-देव को ही समाप्त करके उसके जगह पर झूठी व काल्पनिक देवी को स्थापित कर दिया जाय ? क्या यह देव द्रोहिता नहीं है ? निः संदेह यही देव द्रोहिता और यही असुरता भी है ! क्या कोई भी मेरे इन बातों को गलत प्रमाणित करेगा ?

सोऽहँ और सोऽहँ वाले

सोऽहँ की साधना करने वालों को बतला दूँ कि सोऽहँ-परमात्मा तो है

ही नहीं, विशुद्धतः आत्मा भी नहीं है । यहाँ तक कि यह कोई योग की क्रिया भी नहीं है, बल्कि सोऽहँ तो श्वाँस और निःश्वाँस के मध्य सहज भाव से होते -रहने वाला आत्मा का जीवमय पतनोन्मुखी सहज स्थिति है, जो बिना कुछ किए ही होते रहता है। यह आत्मा (ज्योतिर्मय सः) का जीव (सूक्ष्म शरीर अहम् मय) बिना किए ही अनजान जीवित प्राणियों में जीवनपर्यन्त सहज ही होते रहने वाली स्थिति मात्र ही है--योग की क्रिया भी नहीं है क्योंकि क्रिया तो वह है जो करने से हो । जो बिना किए ही सहज ही होती रहती हो, उसे क्रिया कैसे कहा जा सकता है ? और सोऽहँ का श्वाँस-निःश्वाँस के मध्य होते रहने वाली आत्मा की जीवमय तत्पश्चात् इन्द्रियाँ (शरीरमय) होता हुआ परिवार संसारमय होते हुए पतनोन्मुखी यानी विनाश को जाते रहने वाली एक सहज स्थिति है । योग भी नहीं है तो उसे ही तत्त्वज्ञान कह देना-मान लेना तो अज्ञानता के अन्तर्गत घोर मिथ्याज्ञानाभिमान ही हो सकता है, 'तत्त्वज्ञान' की बात ही कहाँ ?

जब सब ही भगवान् के अवतार हैं तो सद्गुरु कैसा ?

सोऽहँ वाले बन्धुजनों से एक बात पूछनी है कि क्या ऐसा कोई भी जीवित शरीर है, जो सोऽहँ की न हो ? और जब सोऽहँ ही खुदा-गॉड-भगवान् है, तब तो सब के सब मनुष्य ही भगवान् के अवतार हैं, फिर तथाकथित गुरु जी-सद्गुरुजी ही क्यों ? भगवान् भी अज्ञानी जिज्ञासुओं वाला और 'ज्ञानी' गुरुजी-तथाकथित सद्गुरुजी वाला दो प्रकार का होता है क्या ? एक भगवान् अज्ञानी और दूसरा भगवान् ज्ञानी ? यह कितनी मूढ़ता और मिथ्याहंकारिता है ? घोर ! घोर !! घोर !!! मूढ़ता है ।

जब पूर्व में एक ही एक तो अब सब ही ?

पूरे सत्ययुग में एकमात्र श्रीविष्णु जी ही, पूरे भू-मण्डल पर ही एकमात्र केवल एक ही भगवान के अवतार थे, ठीक वैसे ही त्रेतायुग में पूरे भू-मण्डल पर ही एकमात्र एक ही श्रीराम जी और पूरे द्वापर युग में पूरे भू-मण्डल पर ही एकमात्र एक श्रीकृष्ण जी ही केवल भगवान के अवतार थे और आजकल-वर्तमान में सब ही मनुष्य ही सोऽहँ वाली शरीर होने के कारण भगवान् के अवतार हो गये ? कितनी हास्यास्पद बात है ! यह तो घोर अज्ञानता और मूढ़ता होता है ।

सत्ययुग-त्रेता-द्वापरयुग में ऋर्षि-महर्षि, ब्रम्हर्षि आदि और नारद-व्यास- शंकर

जी आदि देववर्ग भी जो पतनोन्मुखी सोऽहँ नहीं, बल्कि उर्ध्वमुखी हँसो वाले भी थे, वे जब भगवान् के अवतार मान्य व घोषित नहीं हुए। तो आज-कल पतनोन्मुखी सोऽहँ वाले भगवान् के अवतार हो जायेंगे ? यदि कोई भी गुरु जी एवं तथाकथित सद्गुरु जी गण सोऽहँ मात्र के आधार पर ही भगवान् के अवतार मान व घोषित कर रहे हों, तो थोड़ा भी तो सोचो कि क्या यह घोर मिथ्या और हास्यास्पद नहीं है ? बिल्कुल ही मिथ्या और हास्यास्पद ही है । सोऽहँ वाले चेला जी भी भगवान् और सोऽहँ वाले गुरु जी भी भगवान् जी ! अरे मूढ़ थोड़ा चेत ! थोड़ी भी तो चेत कि यह कितनी बड़ी मूर्खता है !!

जीव और आत्मा (ईश्वर) का अवतार नहीं होता!

यहाँ पर मुख्य बात तो यह है कि अवतार -- जीव (रूह-सेल्फ) और आत्मा (ईश्वर-ब्रम्ह-नूर-सोल-स्पिरिट-डिवाइन लाइट-दिव्य ज्योति-ज्योतिर्विन्दु रूप शिव) का नहीं होता है। संसार में सारे गृहस्थ शरीर स्तर के; सारे के सारे स्वाध्यायी जीव (रूह-सेल्फ) स्तर के; सारे के सारे योगी-साधक-आध्यात्मिक-अध्यात्मवेत्ता सन्त-महात्मागण आत्मा (ईश्वर-ब्रम्ह-नूर- सोल-स्पिरिट-डिवाइन लाइट-दिव्य-ज्योति-ज्योति विन्दु रूप शिव) स्तर के; और तत्त्वज्ञानदाता-तात्त्विक- तत्त्ववेत्ता परमतत्त्वम्रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप परमात्मा-परमेश्वर-परमब्रम्ह-खुदा-गॉड-भगवान् स्तर के होते हैं । इन चारों स्तरों में क्रमशः पहले तीन(शरीर एवं जीव और आत्मा-ईश्वर-शिव) स्तर वालों का अवतार नहीं होता है । एकमात्र केवल एक चौथे स्तर (परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप अलम् रूप गॉड रूप खुदा-गॉड- भगवान् का ही अवतार होता है । यह अवतार ही सद्गुरु भी होता है । यह ही सत्य है।

सोऽहँ वाले साधक भी नहीं, तो ज्ञानी कैसे ?

संसार में तत्त्वज्ञान एवं योग-अध्यात्म रहित जितने भी गैर साधक के शरीर हैं और जीवित हैं वे सबके सब सोऽहँ की ही शरीर तो हैं । सोऽहँ व शरीर वाले गैर साधक होते हैं --साधक भी नहीं । तो जो साधक नहीं है वह तो योगी-आध्यात्मिक ही नहीं, तत्त्वज्ञानी होने की बात ही कहाँ ? अतः सोऽहँ आत्मा का जीवमय पतनोन्मुखी श्वाँस-निःश्वाँस के बीच होते रहने वाली योग (अध्यात्म)

विहीन गैर साधक की यथार्थतः सहज स्थिति है। सोऽहँ आत्मा भी नहीं है तो परमात्मा होने की बात ही कहाँ ? अवतार तो एकमात्र एकमेव "एक" परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप भगवत्तत्त्वम् रूप अलम् रूप शब्द (बचन) रूप गॉड रूप परमात्मा-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान् का ही होता है, अन्य किसी का भी नहीं। सोऽहँ वालों ! थोड़ा भी तो अपने जीवन के मोल को समझो अन्यथा सोऽहँमय बना रहकर पतन होता हुआ विनाश को प्राप्त हो जायेंगे। नहीं सम्भलोगे तो विनाश ही होगा ।

आप मनमाना जबर्दस्ती जिद्द-हठ वश सोऽहँ को ही भगवान् और सोऽहँ वाले झूठे और पतन और विनाश को ले जाने वाले गुरु को ही अवतार मान लोगे तो इससे आप अपने को ही धोखा दोगे । आप ही परमतत्त्वम् रूप परमसत्य से बंचित रहेंगे। हम लोग तो परम हितेच्छु भाव में आप सबको बतला दे रहे हैं-- समझना-अपनाना-जीवन को सार्थक-सफल तो आप को बनाना-न-बनाना है । आप चेतें-सम्भलें और सत्य अपना लें । यह सुझाव निःसन्देह आप के परम कल्याण हेतु है। कहता हूँ मान लें । सत्यता को जान लें । मुक्ति-अमरता देने वाले परमप्रभु को पहचान लें ।।

सोऽहँ तो मात्र अहंकार बढ़ाने वाला

आप सोऽहँ वाले बन्धुओं से एक बात पूछूँ कि क्या सोऽहँ-अहंकार को बढ़ाने और पतन और विनाशको ले जाने वाली सहज स्थिति मात्र ही नहीं है ? और है तो अपने लिये ऐसा क्यों करते हैं ? आप स्वयं देखें कि सः रूप आत्म शक्ति जब अहं रूप जीव को मिलेगी तो बढ़ेगा 'अहंकार' ही तो। यह प्रश्न आप सब अपने आप से क्यों नहीं करते? आप में यदि अहंकार और मिथ्याभिमान नहीं बढ़ा है तो आप सभी के सोऽहँ और तथाकथित सोऽहँ क्रिया को बार-बार ही अहंकार को बढ़ाने और पतन-विनाश को ले जाने वाला चुनौती के साथ समर्पण-शरणागत करने-होने के शर्त पर कहा जा रहा है तो मेरे इस कथन-चुनौती भरे कथन को गलत प्रमाणित करने को तैयार होते हुए मेरे समक्ष उपस्थित होकर जाँच-परख ही क्यों नहीं कर-करवा लेते ? सच्चाई का -- वास्तविकता का सही-सही पता चल जाता कि सोऽहँ क्या है ? सोऽहँ जीव है कि आत्मा है कि परमात्मा है ?

सोऽहँ जीव एंव आत्मा और परमात्मा तीनों में से कौन?

सोऽहँ वाले गुरुओं को तो यह भी पता नहीं है कि सोऽहँ का 'सो' कहाँ से आकर श्वाँस के माध्यम से प्रवेश करता है और 'हँ' निःश्वाँस के माध्यम से कहाँ को जाता है। यह भी बिल्कुल ही सच है कि उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि सोऽहँ दो का संयुक्त नाम है या एक ही का या तीन का नाम है? यदि वे दो कहते हैं तो फिर सोऽहँ माने आत्मा कैसा जबकि आत्मा तो एक ही है । यदि एक ही आत्मा का नाम मानते हैं, तो जीव और परमात्मा का नाम क्या है ? सोऽहँ ही परमात्मा है तो जीव और आत्मा का नाम क्या है ? धरती का कोई भी आध्यात्मिक गुरु यह रहस्य नहीं जानता कि इसकी वास्तविकता क्या है ?

अन्ततः आप की चाहत क्या है ?

अन्ततः अब निर्णय आप पर है कि आप सोऽहँ साधना से अपने अहंकार को बलवान बनाते हुए पतन को जाते हुए विनाश को जाना चाहते है, अथवा मुझ (सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस) से तत्त्वज्ञान रूप भगवद्ज्ञान प्राप्त करके भगवद् भक्ति-सेवा में रहते-चलते हुये पूर्ति-कीर्ति-मुक्ति तीनों को अथवा सर्वोच्चता-यश-कीर्ति और पूर्ति सहित मोक्ष पाना चाहते हैं । दोनों में से जो भावे आप वही अपनावें ।

वर्तमान में पूरे भू-मण्डल पर ही असल तत्त्वज्ञानदाता कौन

यहाँ एक बात मैं अवश्य कह देना चाहता हूँ कि यह तत्त्वज्ञान जिससे 'सम्पूर्ण' ही सम्पूर्णतया उपलब्ध हो सके, वर्तमान में पूरे धरती पर ही अन्य किसी के भी पास नहीं है! यदि कोई कहता है कि मेरे पास ऐसा 'तत्त्वज्ञान' हैं, तो जनमानस के परम कल्याण को देखते हुए मुझे यह कहना पड़ेगा कि वह सरासर झूठ बोलता है । समाज को धोखा देता है। अब यदि कोई मेरे इस बात को निन्दा करना, शिकायत करना, नीचा दिखाना या अहंकारी होना कहे, तो जनकल्याणार्थ मुझे आपसे यह पूछना पड़ेगा कि आप ही बतावें कि सच्चाई यदि ऐसी ही हो तो मैं कहूँ क्या ? क्या समाज को धोखा में पड़े ही रहने दूँ ? समाज को सच्चाई से अवगत न कराऊँ? नही! ऐसा नहीं हो सकता । आप मिलकर तो देखें।

पुनः कह रहा हूँ कि यह 'तत्त्वज्ञान' अन्य किसी के भी पास नहीं है! यदि कोई कहता है कि मेरे पास है तो उसकी इस घोषणा को सप्रमाण प्रैक्टिकली (प्रायौगिक

रूप से) भी गलत प्रमाणित करने के लिये तैयार भी तो हूँ और इस बात का बचन भी तो देता हूँ कि मैं अपने उपर्युक्त कथन को गलत प्रमाणित करने वाले के प्रति समर्पित-शरणागत हो जाऊँगा । मगर सही होने पर उसे भी समर्पित-शरणागत करना-होना होगा ।

अन्ततः कह दूँ कि वास्तव में मैं किसी का भी आलोचक या निन्दक या विरोधी नहीं हूँ, अपितु सभी का ही सहायक और सहयोगी हूँ । शान्तिमय ढंग से मिल बैठ कर सप्रमाण वार्ता कर जाँच कर लें । मगर हाँ, सत्य बोलना मेरा सहज स्वभाव और कर्त्तव्य भी है, जो हमेशा करता रहूँगा । चाहे किसी को बुरा लगे या भला । जीवन को सार्थक-सफल बनावें ! भगवत् कृपा रूप भगवद् ज्ञान (तत्त्वज्ञान) को अपनावें ! मिथ्या-महत्त्वाकाँक्षी गुरुओं के पीछे नहीं, बल्कि भगवान् को पहले अपने आप 'हम' जीव और आत्मा-ईश्वर-शिव को भी पृथक्-पृथक् तीनों को ही जान-देखें तत्पश्चात् भगवान् को भी साक्षात् बात-चीत करते-पहचानते हुए जानें-देखें और भगवान् के प्रति ही समर्पित-शरणागत होवें-रहें। इसी में जीवन का सार्थक-सफल होना है , अन्यथा नहीं । समय रहते समझें-बूझें-चेतें!

कहता हूँ मान लें, सत्यता को जान लें । मुक्ति-अमरता देने वाले परमप्रभु को पहचान लें ।। जिद्द-हठ से मुक्ति नहीं, मुक्ति मिलती 'ज्ञान' से । मिथ्या गुरु छोड़ो भइया, सम्बन्ध जोड़ो भगवान् से ।।

वास्तविकता तो यह है कि मेरे पास एक ऐसा 'ज्ञान (तत्त्वज्ञान)' है जो परमसत्य है और जिसमें किसी की भी निन्दा-शिकायत नहीं, अपितु सभी की ही यथार्थ स्थिति का खुलासा है। मैं यह बार-बार ही कह रहा हूँ कि पूरे भू-मण्डल पर ही मेरा किसी से भी कोई विरोध है तो मात्र असत्य- अधर्म, अन्याय और अनीति से है । आश्चर्य है कि सभी का ही सहयोगी रहने पर भी कहा जा रहा हूँ विरोधी । जो खुलासा है, उसे गलत क्यों नहीं प्रमाणित किया जा रहा है ? मेरे द्वारा देय तत्त्वज्ञान को गलत प्रमाणित क्यों नहीं कर दिया जा रहा हैं ? कर दिया जाता तो मैं भी अपने को ही गलत मान लेता । किन्तु यह सत्य ही, परम सत्य ही है तो कोई गलत प्रमाणित कैसे कर सकता है ? नहीं कर सकता ।

ऐसे गुरुजन-सद्गुरुजन और तथाकथित भगवान् जी लोगों को कैसे समझाया जाय कि हम सभी को ईमान और सच्चाई से एक बार आत्म निरीक्षण की आवश्यकता है क्योंकि आप -हम कोई भी माने या न माने, खुदा-गॉड-भगवान् का पूर्णावतार इस धराधाम पर हो चुका है और वह पूरे भू-मण्डल से ही, चाहे जैसे भी हो--असत्य-अधर्म

को मिटाकर सत्य-धर्म स्थापित करेगा ही । करने में लग गया है । आवश्यकता है-- सबके लिये ही महती आवश्यकता है । उन्हें जान-देख-परख-पहचान कर धन-जन-आश्रम मान-सम्मान के अहंकार-अभिमान को छोड़-त्याग करते हुए ऊपर उठकर कर उन्हीं, एकमात्र उन्हीं एकमात्र परमात्मा-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान् के शरणागत हो-रह कर चलनें की । इसी में ही सभी का ही कल्याण है । जाँच परख हेतु आगे तो बढ़ें। सब भगवत् कृपा ।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस
'श्रीहरि द्वार आश्रम', रानीपुर मोड़, रेलवे क्रासिंग से उत्तर समीप ही, हिल बाई पास रोड, हरिद्वार पिन- २४९ ४०१ (भारत) दूरभाष : ०१३३४-२२४५८०

उठो साथियों समय नहीं है

उठो साथियों समय नहीं है शोभा और श्रृगार का,
आज चुकाना ऋण है सबको परमप्रभु जी के प्यार का ।।टेक।।
जान हथेली पर ले कर के चलना है मैदान में,
फर्क नहीं आने देना है परमप्रभु जी के शान में ।
सत्य के पीछे मर मिट जाना धर्म यही इन्सान का (आज चुकाना०)
अत्याचार अनीति झूठ पाखण्डी जनों से लड़ना है,
दैहिक दैविक भौतिक कष्ट को धीरज पूर्वक सहना है ।
टूट पड़े मैदान जंग में खड़ग सम्भाले ज्ञान का (आज चुकाना०)
प्रभु सेवा सिद्धान्त का पालन करो सभी ज़ी जान से,
मौत का संकट राह में आये डरो नहीं तूफान से ।
कभी न भूलें याद करें हम प्रभु जी के एहसान को ।(आज चुकाना०)
ज्ञान क्रान्ति का बजा बिगुल बन्दर अंगद हनुमान बनो,
पाँचजन्य श्री कृष्ण का बोला, बीर अर्जुन बलवान बनो ।
ग्रन्थ पुराण करें सत्चर्चा प्रभु सेवक वीर महान का (आज चुकाना०)
व्रत ले पीछे जो हटता है कायर हिजड़ा कहलाता है,
जाहिल बुझदिल कहे लोग वो घोर नरक में जाता है,
सपथ साथियों हम सबको है प्रभु मनमोहन सरकार का
उठो साथियों समय नहीं है शोभा और श्रृंगार का,
आज चुकाना ऋण है हम को सद्गुरु जी के प्यार का ।।

प्रेम से बोलिये-- श्रीसद्गुरुदेव जी महाराज की .... जय !

विद्यातत्त्वम् पद्धति

सबको रहे संदेश सुनाय

'तत्त्व' को देख-परख लीजै

सबको रहे संदेश सुनाय 'तत्त्व' को देख-परख लीजै ।।टेक।।
खुदा-गॉड-भगवान् प्रभु जी शब्दरूप लो जान ।
युग-युग में इस शब्दरूप में प्रकट होय भगवान् ।।
बाइबिल-वेद पुराण बताय 'तत्त्व'को देख-परख लीजै।। सबको रहे ...

सत्ययुग में श्रीविष्णु रूप में 'तत्त्व' प्रकट भयो आय ।
नारद गरुण तत्त्व पहचानो रही यश कीरति छाय ।
आपको सत्य कहूँ समझाय 'तत्त्व' को देख परख लीजै ।। सबको रहे ..

श्रीराम रूप में तत्त्व प्रकट भयो त्रेता युग दरम्यान ।
लक्ष्मण सेवरी हनूमान ने 'तत्त्व' करो पहचान् ।
दीनी सुवर्ण लंक जलाय 'तत्त्व' को देख परख लीजै ।। सबको रहे ....
द्वापर में श्रीकृष्ण रूप में 'तत्त्व' लियो अवतार ।
पारथ वीर तत्त्व पहचानो है गीता में सार ।
प्रभु ने दियो विराट दिखाय 'तत्त्व' को देख परख लीजै ।। सबको रहे .

कलियुग प्रभु सदानन्द रूप में 'तत्त्व' प्रकट भयो आय ।
तत्त्वज्ञान भक्तों को देकर अलम-गॉड-आत्मतत्त्वम् को सबको दियो दिखाय ।
तब ही जनम-मरण मिट जाय 'तत्त्व' को देख परख लीजै ।। सबको रहे

.... *प्रेम से बोलिये-- श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की ..... जय !*

विश्व समाज को आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड से बचाने और सत्य-परमसत्य से जोड़ने हेतु निन्दा-प्रशंसा रहित सद्ग्रन्थीय सत्प्रमाणों के आधार पर सत्यता प्रधान चुनौतीपूर्ण अभियानान्तर्गत प्रकाशित

(हिन्दी मासिकी) **"सबकी वास्तविकता"**

प्रकाशन स्थल : 'पुरुषोत्तम धाम आश्रम' पुरुषोत्तम नगर,
सिद्धौर- बाराबंकी(उ० प्र०) पिन-२२५४१३,
दूरभाष : ०५२४४-२२२३२७,

धर्म-ग्रन्थों की सूची

असत्य-अधर्म विनाशक तथा सत्य-धर्म संस्थापक एवं संरक्षक परमपूज्य सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस द्वारा

(संस्थापक, संचालक एव संरक्षक-- सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्) द्वारा विरचित पूरे भू-मण्डल का एकमात्र सबसे प्राचीन, सम्पूर्ण व अनोखा 'ज्ञान' वाले पुष्पिकाओं की सूची इस प्रकार है--

१. स्वप्न और जागरण पर सदानन्द 'मत' -- पुष्पिका-१ (वर्तमान में इस प्रकाशन को बन्द कर दिया गया है ।)
२. वास्तविक सत्य पर सदानन्द 'मत' -- पुष्पिका-२
३. ज्ञान-क्रान्ति का उद्घोष -- पुष्पिका-३
४. ऐसा ही हो तो मैं कहूँ क्या, आप न अपनायें तो मैं करूँ क्या?-पुष्पिका-४
५. धर्म रक्षक बनों महान--भक्तों बनों अर्जुन-हनुमान -- पुष्पिका-५
६. शीघ्रता से अपनायें अन्यथा पछतायें -- पुष्पिका-६
७. असल भगवदवतारी की पहचान कैसे ? -- पुष्पिका-७
८. श्रीराम जन्म-भूमि समस्या और उसका सार्वभौमिक समाधान--पुष्पिका-८ ९. सबकी वास्तविकता -- पुष्पिका-९
१०. What Should I Say if it is True -- पुष्पिका-१०
११. सफल जीवन हेतु भगवद् संदेश -- पुष्पिका-११
१२. "चुनौती भरा सत् सन्देश" -- पुष्पिका-१२
१३. " सच्चा धर्मो पदेशक कैसे पहचानें ?' पुष्पिका-१३
१४. "विद्यातत्त्वम् पद्धति" -- पुष्पिका--१४
१५. 'प्रेम भरा प्रस्ताव'--पुष्पिका-१५, १६ आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड मिटाने जीव-ईश्वर-परमेश्वर-दिखाने..... पुष्पिका-१६, १७ सबकी वास्तविकता (हिन्दी मासिकी पत्रिका)

टिप्पणी :- (१) सत्यान्वेषी बन्धुजन ग्रन्थों को प्राप्त करने के लिये अपने निकटस्थ आश्रमों या केन्द्रों, जिनके पते अग्रलिखित हैं, से सम्पर्क करें अथवा 'वितरण- अधिकारी, 'सदानन्द तत्त्वज्ञानपरिषद्' परमधाम आश्रम,

महुअर-किरावली, आगरा पिन- २८३ १२२ दूरभाष : ०५६२-२७८०२३९ से पत्र-व्यवहार करें। (२) आगामी ग्रन्थों की जानकारी हेतु 'वितरण अधिकारी' से ही पत्र-व्यवहार करें या ईमेल :: Sadgranth@Paramdham.net पर सूचित करें।

परमपूज्य सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस द्वारा संस्थापित, संचालित एव संरक्षित-- 'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्' के प्रमुख आश्रमों/केन्द्रों के पते इस प्रकार हैं---

'सत्पुरुष धाम आश्रम', बँगरा (बथना कुटी), नरहवाँ शुक्ल, कुचाय कोट, जनपद-गोपालगंज (बिहार) पिन-८४१ ५०१ (भारत) (प्रस्तावित)

'श्रीहरि द्वार आश्रम', रानीपुर मोड़, रेलवे क्रासिंग से उत्तर समीप ही, हिल बाई पास रोड, हरिद्वार पिन- २४९ ४०१ (भारत) दूरभाष : ०१३३४-२२४५८०

'भगवद् धाम आश्रम', महनगा-सिद्धार्थ नगर, (उ० प्र०) पिन-२७२ २०३ (भारत)

'परमपुरुष धाम आश्रम', ठकुरापुर-शिवपति नगर, सिद्धार्थ नगर (उ० प्र०) पिन-२७२ २०६ (भारत) (प्रस्तावित)

'परम धाम आश्रम', महुअर-किरावली, आगरा (उ० प्र०) पिन-२८३ १२२ (भारत) दूरभाष : ०५६२-२७८०२३९

'मोक्षदाता धाम आश्रम', घाटमपुर, (रोहनिया से ३ किमी० उत्तर-पश्चिम), वाराणसी (उ० प्र०) पिन-२२१ १०७ दूरभाष : ०५४२-२२५५७२२

'पुरुषोत्तम धाम आश्रम', पुरुषोत्तम नगर, सिद्धौर-बाराबंकी (उ० प्र०) पिन-२२५ ४१३ (भारत) दूरभाष : ०५२४४-२२२३२७, फैक्स: ०५२४४-२२२५४९

'परमभाव धाम आश्रम', मझवारा-मायंग, सुल्तानपुर (उ० प्र०) पिन-२२८ १२१ (प्रस्तावित)

'परमतत्त्व धाम आश्रम', बी-६, लिबर्टी कालोनी, सर्वोदय नगर, लखनऊ-२२६ ०१६ दूरभाष :०५२२-२३४६६१३

'सनातन पुरुष धाम आश्रम', ललुआपुर-रुदौली, फैजाबाद (उ० प्र०) पिन-२२५ ४११ (भारत) दूरभाष:०५२४१-२४३७८२

'मुक्तिदाता धाम आश्रम', जल-श्रोत बगिया, किटहा, जनपद-सतना (म० प्र०) पिन-४८५ २२१ (प्रस्तावित)।

'तत्त्वज्ञान दाता धाम आश्रम', सी-१७, न्यू आचार्य कृपलानी मार्ग,

विद्यातत्त्वम् पद्धति

आदर्श नगर, दिल्ली-११० ०३३ दूरभाष : ०११-२७६७८७६०
विराट पुरुष धाम आश्रम, नया बाजार, रंगेली रोड, सीसबनी अहंदा, जिला-मोरंग कोशी अंचल, नेपाल दूरभाष : ००९७७-२१-५२७९५०

नोटः- इस संस्था के नाम पर किसी को भी किसी भी प्रकार का चन्दा-दान- भेंट-चढ़ावा आदि कुछ भी कदापि न दें ।

विशेष नोटः- कोई भी भूखा-दूखा-अनाथ व्यक्ति चाहे वह जिस किसी भी लिंग-जाति वर्ग-सम्प्रदाय का क्यों न हो, भेद-भाव रहित रूप में 'पुरुषोत्तम धाम आश्रम' में शरण पा सकता है अथवा १५ दिन तक के लिए राशन अथवा अन्य अपेक्षित सहायता प्राप्त कर सकता है । श्रम करना अनिवार्य नहीं, मगर संयम अनिवार्य है। बच्चों के लिये निः शुल्क शिक्षा तो सभी के लिये अनिवार्य है, मगर स्वाध्याय, अध्यात्म और तत्त्वज्ञान चाहत अथवा जिज्ञासा पर । खाना-कपड़ा-कापी-किताब-दवा आदि सहित प्रायः समुचित सुविधाओं से युक्त आवासीय व्यवस्था भी सभी के लिए ही उपलब्ध है ।

'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्'

पुरुषोत्तम धाम आश्रम, पुरुषोत्तम नगर-सिद्धौर बाराबंकी -२२५४१३ उ० प्र० (भारत) दूरभाषः ०५२४४-२२२३२७, फैक्सः ०५२४४-२२२५४९

(संस्था का मुख्यालय बाराबंकी-जैदपुर-सिद्धौर मार्गपर सिद्धौर पहुँचने से ३ किमी पहले ही डीहा-पुलिया से दाहिने तरफ (दक्षिण तरफ) डीहा गाँव से होते हुये लगभग ३ किमी दूरी पर स्थित है अथवा भिटरिया से देवी गंज से सिद्धौर आकर पुनः सिद्धौर-जैदपुर मार्ग पर सिद्धौर से ३ किमी पर स्थित डीहा-पुलिया से बायें तरफ (दक्षिण तरफ) डीहा गाँव से होते हुये लगभग ३ किमी दुरी पर मुख्यालय स्थित है ।)

On Internet, Web Sites to visit :

http://www.BhagwadavatariSadanandji.net
http://www.SabkiVastvikta.net
http://www.MereSadgurudev.net
Official Email: Sadanandtp@Paramdham.net
Administrative Email: Admin@Amarlok.net

आवरण पृष्ठ ३ का शेषाँश.....

आत्मा-ईश्वर-ब्रम्ह-नूर- सोल-स्पिरिट- ज्योतिर्मय शिव है या कि 'हम' परमात्मा-प रमेश्वर-परमब्रम्ह- खुदा-गॉड- भगवान् है? यानी हन तीनों में से वास्तव में असल 'हम' कौन है ? ऐसे 'ज्ञान-तत्त्वज्ञान' वाला ही वास्तव में सत्य होगा और उपर्युक्त सम्पूर्ण की प्राप्ति ही वास्तव में 'सत्य' की वास्तविक आकलन पद्धति है ।'ज्ञान' ही गुरु-सद्गुरु की पहचान पद्धति होता है ।

सच्चे भगवदवतारी की पहचान 'तत्त्वज्ञान' से

आप सभी को ही एक बात कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि प्रारम्भ में जब धर्म को स्वीकार करने चले थे या चलने लगे थे तब हम लोगों का लक्ष्य धन-जन एकत्रित करने के लिये, बढ़िया से बढ़िया आश्रम बनवाने के लिये अथवा खूब प्रचारित-प्रसारित होने और काफी मान-सम्मान आदि-आदि पाने के लिये हम सभी गुरुजन-सद्गुरुजन, तथाकथित भगवानजी लोग और अनुयायी-शिष्यगण (धर्म-प्रेमी- धर्मात्मागण) नहीं आये थे। आप सभी 'ज्ञान-तत्त्वज्ञान' पाने के लिये -- आप अपने निज रूप यानी 'हम' जीव-रूह-सेल्फ को जानने-देखने और पहचानने तत्पश्चात् आत्मा-नूर-सोल-ज्योतिर्मय शिव को अलग-अलग जानते-देखते हुये परमात्मा-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान् का भी बात-चीत सहित साक्षात्-दर्शन पाने के लिये, साथ ही साथ मुक्ति और अमरता का साक्षात् बोध पाने के लिये ही 'धर्म' को स्वीकार किये थे ! क्या यह 'सच' ही नहीं है? फिर आज धन-जन-आश्रम-मान- सम्मान आदि-आदि झूठे मायावी चकाचौंध के पीछे अपने 'मूल उद्देश्य' से क्यों भटक गये ?

आप सबके पास कितना धन हो गया है जो अपने मूल उदेद्श्य भगवत् प्राप्ति व मुक्ति-अमरता के साक्षात् बोध से ही भटक गये ? क्या कुबेर से भी अधिक धन हो गया है? नहीं ! कदापि नहीं !!

कितना जन (अनुयायी शिष्यजन) आप बना लिये हैं ? क्या ३३ करोड़ वाले देवराज इन्द्र से भी अधिक है ? नहीं! कदापि नहीं!!

आप कितनी क्षमता-सिद्धि हासिल कर लिये ? क्या सभी के ही मृत्यु रूप यमराज और सृष्टि के संहारक शंकरजी से भी अधिक? नहीं ! कदापि नहीं !!

कितने आश्रमों की रचना (निर्माण) कर-करा लिये हैं ? क्या सृष्टि के रचयिता विश्वकर्मा और ब्रम्हा जी से भी अधिक ? नहीं! कदापि नहीं!!

कुल कितने अनुयायी-शिष्य आपके पीछे-पीछे रहते-चलते हैं? क्या दस हजार अनुगामी के साथ चलने वाले दुर्वासा से भी अधिक? नहीं ! कदापि नहीं!!

जब तैंतीस करोड़ देवताओं का राजा इन्द जी भी भगवान् नहीं हैं ;--जब सभी को

मौत (मृत्यु) देने वाला यमराज जी भी भगवान् नहीं हैं; --उमा-रमा-ब्रम्हानी जी भी जब भगवान् नहीं है; सभी सिद्धियों के अधिष्ठाता सृष्टि संहारक शंकर जी भी भगवान् नहीं है तो एक बार आप अपने को तो देखिये ! धन(कुबेर)-जन(इन्द्र)-आश्रम(ब्रम्हा) मान-सम्मान (महादेव-महेश) भी भगवान् या भगवदवतारी नहीं हैं तो आप कौन और कितने में हैं ? देखिये तो सही ! झूठी मान्यता कब तक ठहर पायेगी ?

जब ये उपर्युक्त कुबेर-इन्द्र- यमराज-शंकर जी- विश्वकर्मा-ब्रम्हा जी-दुर्वासा आदि-आदि भगवान्- भगवदवतार नहीं बने, अपने को ऐसा घोषित नहीं किये-कराये तो आप लोग ऐसा क्यों बनने-करने में लगे हैं? अपने को ही क्यों घोषित करने-करवाने में लगे हैं ? क्या ये लोग ॐ वाले नहीं थे ? सोऽहँ-हँसो वाले नहीं थे ? क्या ये सिद्ध-शक्ति-सत्ता- सामर्थ्य-योग-साधना-अध्यात्म वाले नहीं थे? क्या ये तथाकथित गायत्री-क्षमता वाले नहीं थे ? क्या ये ज्योति बिन्दु रूप शिव वाले नहीं थे ? एक बार थोड़ा अहंकार- अभिमान से अलग-ऊपर-परे होकर तो अपने को देखने का प्रयास कीजिये, समझ में आने लगेगा। ॐ-सोऽहँ- हँसो-ज्योति विन्दु रूप शिव न कभी भगवान् था, न है और न होगा। ॐ का पितामह और सोऽहँ-हँसो का पिता सम्पूर्ण शक्तियों सहित आत्मा-ईश्वर-नूर- सोल-दिव्य ज्योति-ज्योति विन्दु रूप शिव का भी पिता व सम्पूर्ण सृष्टि का उत्पत्ति-स्थिति-संहार कर्त्ता रूप परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप अलम्-गॉड रूप परमेश्वर ही खुदा-गॉड-भगवान् था, है और रहेगा भी । उन्हें स्वीकार कर लेने में ही सभी का कल्याण है । परम कल्याण है ।

भगवान् और भगवदवतार बनने-बनाने का पद नहीं होता । भगवदवतार ब्रम्हाण्ड का एक अकेला व शाश्वत पद है जिसके सम्बन्ध में सद्ग्रन्थों में सुनिश्चित और सुस्पष्ट विधान है। इस सर्वोच्च, सर्वोत्कृष्ठ एवं सर्वोत्तम् पद के मर्यादा को अपने-अपने क्षमता शक्ति भर स्थित रखना और उत्तरोत्तर इनको प्रचारित करना-कराना हमारी-आपकी मुख्य भूमिका होनी चाहिए। "आप-हम सभी को इस सर्वोच्च मर्यादित पद को तुच्छ निहित स्वार्थों एवं मिथ्या महात्त्वाकाँक्षा हेतु अमर्यादित नहीं करने-होने देना चाहिए । सत्य प्रधान ही होना-रहना-चलना ही परमलाभ है।" इसी में ही सबकी भलाई है । एक बनें। नेक बनें ।

ईमान-सच्चाई-संयम सेवा । यही है सबसे सुन्दर मेवा ।।
अपनाना हो तो अपना लो भाई । भगवन् रहेंगे सदा सहाई।।
नही समझोगे, नहीं सम्भलोगे। जग में होगी तेरी हँसाई ।।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

आध्यात्मिक महात्मनों से आग्रह

बहुतायत धन-वैभव, बहु संख्यक शिष्य-अनुयायी आश्रम भवन अटालिकांए और व्यापक प्रचार-प्रसार न तो कभी अवतारी की पहचान रहा है और न तो वर्तमान में ही हो सकता है। भगवदवतार की एकमात्र पहचान परम सत्यता-सर्वोच्चता सम्पूर्णता वाला तत्त्वज्ञान ही रहा है और आज भी है।

आप समस्त वर्ग-सम्प्रदाय-पन्थ-ग्रन्थ के समस्त गुरुजन-सद्गुरुजन व तथाकथित भगवानों और अनुयायी-शिष्यगण से मुझ सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस का स्पष्टतः आग्रह है कि आप अपने लौकिक मान-सम्मान एवं भौतिक विस्तार-फैलाव से ऊपर उठकर वैचारिक, आध्यात्मिक और तात्त्विक स्तर पर अपने ऊँचाइयों और उपलब्धियों का आकलन करें । महात्मा- धर्मात्मा एवं भगवदवतारी की दृष्टि स्थूल अथवा भौतिक मात्र ही नहीं होनी चाहिए जैसे कि ''हमारे अनुयायी जनों की संख्या बहुत अधिक है अथवा हमारी संस्था बहुत बड़े विस्तार को प्राप्त हो चुकी है अथवा बहुत बड़े सम्मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त हो चुकी है, इसलिये हम 'सत्य' हैं''--यह कोई 'सत्य' की आकलन-पद्धति नहीं है। 'सत्य' तो सदा-सर्वदा एक ही रहा है, एक ही है और एक ही रहेगा।

हम सभी को अपने मूलभूत सिद्धान्तों को देखना चाहिए और सद्ग्रन्थीय प्रमाणिकता के आधार पर अपने उँचाई, महत्ता एवं उपलब्धियों का आकलन करना चाहिए, क्योंकि शरीर व संस्था का तथा इनका भौतिक विस्तार और लौकिक मान-सम्मान की उपलब्धि कभी भी 'धर्म' की कोई मौलिक मान्यता नहीं रही है। ये सब धर्म की कभी भी कसौटी नहीं रहीं है। धर्म की वास्तविक कसौटी अथवा 'सत्य' की वास्तविक पद्धति जीव-रूह-सेल्फ एवं आत्मा-ईश्वर -ब्रम्ह-नूर- सोल- स्पिरिट- ज्योतिर्मय शिव और परमात्मा-परमेश्वर- परमब्रम्ह- खुदा- गॉड- भगवान् (अहं-ॐ के पितामह और सोऽहँ का पिता रूप परमतत्त्वम्) -- तीनों का ही क्रमशः स्वाध्याय (Self Realization) एवं योग-अध्यात्म (*Yoga or* Spiritualization) और तत्त्वज्ञान रूप सत्य ज्ञान (True, Supreme & Perfect KNOWLEDGE) के आधार पर होना चाहिये जिसमें तीनों का ही पृथक्-पृथक् बात-चीत सहित स्पष्टतः दिखलाई दे कि 'हम' जीव-रूह-सेल्फ है कि 'हम' शेषाँश आन्तरिक पृष्ठ १५७, १५८ पर देखें

'सत्यं वद ।' 'धर्मं चर !!'
ॐ तत्सत्
'श्रम एव जयते ।' "भगवत् कृपा हि केवलम्-Only the Mercy of GOD- بسم الله الرحمن الرحيم" 'सत्यमेव विजयते !!'
ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ! (ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !)- No Salvatioln without KNOWLEDGE

सच एक है--एक रहेगा

सच एक है - एक रहेगा, शेष सब बकवास है !
सच 'एक' अवतरित हुआ है, बकवासों का अब नाश है !!

(१) सच्चा हिन्दू वह है जो "दूषित भावनाओं से हीन हो, अर्थात् जो 'दोष रहित' सत्य प्रधान उन्मुक्त अमर जीवन विधान वाला हो ।"

(२) सच्चा जैनी वह है जिसे 'अरिहंत' की प्राप्ति और 'निर्वाण' का यथार्थतः ज्ञान प्राप्त हो । जो 'सत्य तत्त्व' को जान लिया हो वही जैनी है ।

(३) सच्चा बौद्ध वह है जिसे 'बोधिसत्त्व का सच्चा-सम्यक् बोध' हो ।

(४) सच्चा यहूदी वह है जो 'यहोवा (परमेश्वर)' के प्रति विश्वास और भरोसा रखते हुये 'यहोवा' मात्र के ही आज्ञाओं में रहता-चलता हो, अन्य किसी के नहीं।

(५) सच्चा ईसाई वह है जो यीशु (जीवन-ज्योति) और यीशु के पिता 'शब्द' (गॉड) (बचन) रूप 'परमेश्वर' के प्रति विश्वास और भरोसा सहित समर्पित और शरणागत हो ।

(६) सच्चा मुसलमान वह है जो मुसल्लम ईमान से 'अल्लाहतआला' अथवा दीन की राह (धर्म -पथ) के प्रति जान-व-माल सहित कुर्बान हेतु सदा ही समर्पित-शरणागत रहे ।

(७) सच्चा सिक्ख वह है जो 'सद्गुरू' से माया और परमेश्वर तथा उनकी कृपा आदि सब कुछ ही पाना-परखना 'सीख (जानकर)' १ॐ कार-सत्सीरी अकाल के प्रति समर्पित-शरणागत रहे ।

अतः सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस का कहना है कि वास्तव में जो सच्चा हिन्दू है, वह ही सच्चा जैनी भी है; जो सच्चा जैनी है, वह ही सच्चा बौद्ध भी है; जो सच्चा बौद्ध है, वह ही सच्चा यहूदी भी है; जो सच्चा यहूदी है, वह ही सच्चा ईसाई भी है; जो सच्चा ईसाई है, वह ही सच्चा मुसलमान भी है; जो सच्चा मुसलमान है, वह ही सच्चा सिक्ख भी है; जो सच्चा सिक्ख है, वह ही सच्चा हिन्दू भी है; क्योंकि भगवान्-अरिहंत- बोधिसत्त्व-यहोवा-गॉड (परमेश्वर)-अल्लाहतआला और १ॐकार -सत्सीरी अकाल भिन्न-भिन्न और पृथक्-पृथक् नहीं, बल्कि सब के सब ही एकमेव 'एक' का ही नाम अनेक है। फिर भेद कहाँ और कैसा ?

भेद-भाव घोर अज्ञानता मूलक भरम है जिससे भटकाव होता है और यह भटकाव ही सभी दंगा-फसाद, लूट-मार-काट का मूल है । सच्चा होने-रहने हेतु भेद भाव से ऊपर उठें। हम सभी 'एक' ही परमप्रभु के बन्दे या कृपा पात्र हैं । आपस में सभी ही एक ही परिवार के हैं । आपस में अपनत्त्व लायें। भटकाव से बचें, क्योंकि सच एक है एक रहेगा, शेष सब बकवास है। सच 'एक' अवतरित हुआ है । बकवासों का अब नाश है । सब भगवत कृपा ।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

'श्रीहरि द्वार आश्रम', रानीपुर मोड़, रेलवे क्रासिंग से उत्तर समीप ही, हरिद्वार पिन- २४६ ४०१ (भारत) दूरभाष : ०१३३४-२२४५८०

WebSites: http://www.BhagwadavatariSadanandji.net http://www.SabkiVastvikta.net